स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 13, ISSUE-2(1) (FEBRUARY 2021) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, जे.एम.सी.),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एल–एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक (हिन्दी विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

प्रशासनिक सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
जवाहर नगर,
श्रीगंगानगर-335001 (राजस्थान)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

प्रधान सम्पादक :
डॉ. अन्जूबाला
गुरू तेग बहादुर खालसा
कॉलेज, दिल्ली।

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग,कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार, हरियाणा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. पार्वती गोंसाई
सरदार पटेल वि.वि.,
गुजरात।

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र
बिहार।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

***सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।**

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/– रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	**पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)**
खाता धारक का नाम	:	**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी**
बैंक खाता संख्या	:	**1182000109078119**
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	8–8
2.	लेखिका शीला झुनझुनवाला की आत्मकथा 'कुछ कहीं कुछ अनकहीं' : एक अध्ययन	वर्षा नागोराव मोरे, डॉ. आर.एम. जाधव	9–11
3.	नारी सशक्तीकरण : राजलक्ष्मी स्वयंवर के विशेष संदर्भ में	वर्षा रानी	12–15
4.	The Dark Voice of the Sea	Kiran Miglani	16-23
5.	Shaikh Ahmad Abdul Haq Rudaulvi : His Personality and Mysticism	Daud Ibrahim	24-31
6.	श्री नरेश मेहता के उपन्यासों में मानवीय संवेदना	Sujitha Lakshmi S.G.	32-34
7.	द्रोणवीर कोहली के उपन्यास 'चौखट' में बदलते सांस्कृतिक मूल्य	Dr. Sajitha J,	35-42
8.	पलासी और बक्सर के युद्ध का बंगाल और भारत पर राजनीतिक प्रभाव	Manjula Singh	43-45
9.	अब्दुल कलाम का भारत विकास मिशन : एक विवेचन	दशरथ राम	46–49
10.	हिंदी साहित्य में नारी–चेतना	रीना कुमारी	50–52
11.	अब्दुल कलाम का बौद्धिक युग सापेक्ष शैक्षिक विचार	दशरथ राम	53–56
12.	कर्पूरी ठाकुर का राजनीतिक सफरनामा : प्रबल नेतृत्व से समर्थन–क्षरण तक	अफजल इकबाल	57–59
13.	अजन्ता के भित्ति चित्रों में भाव–सौन्दर्य	डॉ0 नीता शाह	60–65
14.	समकालीन बिहार की राजनीति पर कर्पूरी ठाकुर का प्रभाव : एक विश्लेषण	अफजल इकबाल	66–69
15.	मध्यकालीन भारतीय ग्रंथ चित्रण परम्परा	डॉ. राकेश कुमार किराड	70–73
16.	बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार : फूलचंद गुप्ता	हिना एस. राठोड	74–77
17.	ਪੰਜਾਬੀ ਔਰਤਾਂ ਦੇ ਸਾਂਗ–ਤਮਾਸ਼ੇ : ਇੱਕ ਸਰਵੇਖਣ	Amandeep Kaur	78–87
18.	मानव विकास : संक्षिप्त अवलोकन	डॉ. शिवानी सिंह	88–90

19.	इक्कीसवीं सदी की कविता में स्त्री प्रतिरोध के स्वर	रूपरत्न कुमारी, प्रो.संजय.एल. मादार	91–95
20.	समकालीन कहानियों में चित्रित स्त्री जीवन के संदर्भ	संतोष, प्रो. संजय एल. मादार	96–99
21.	समकालीन उपन्यासों में चित्रित बुद्धिजीवी वर्ग का अस्मिता-बोध (स्त्री संदर्भ में)	श्रीजा थोमस, प्रो. संजय एल मादार	100–103
22.	निर्मला पुतुल की कविता में आदिवासी स्त्री संवेदना : 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा!' के संदर्भ में	शमीम पी	104–106
23.	सत्य अहिंसा और करूणा के प्रतीक- गुरू घासीदास	दासरथी जांगड़े	107–110
24.	उत्तराखण्ड के होली गीतों का गायन क्रम	डॉ. पंकज उप्रेती	111–114
25.	भारतीय कृषक और कृषि समस्या समाधान	डॉ. जगदीश प्रसाद मौर्य	115–122
26.	वेद पुराण उपनिषद में राष्ट्रीय भावना	डॉ. राजेन्द्र सिंह बिश्ट	123–125
27.	वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और ईश्वरचंद्र विद्यासागर	इबरार खान	126–130
28.	विद्यासागर स्त्री अधिकारों के संरक्षक : पत्र पत्रिकाओं के विशेष सन्दर्भ में	लिली साह	131–133
29.	मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा की अनिवार्यता (राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रारूप 2019 के सन्दर्भ में)	चन्द्रशेखर नाथ झा	134–136
30.	आदिवासियों की सच्ची संघर्ष गाथाओं में समाज की चिंता	डॉ. सुरेखा जवादे	137–139
31.	लोक भाषा संवर्धन में नाथपंथ का योगदान	डॉ. आरती सिंह	140–142
32.	जयशंकर प्रसाद की कहानियों में स्त्री विमर्श	डॉ. ज्योति मौलेखी	143–145
33.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नैतिक मूल्य और उच्चतर शिक्षा एवं भाषा	कमल भूरिया	146–149
34.	सामाजिक असमानता और समकालीन हिन्दी कविता	डॉ. अनिता एस कर्पूर 'अनु'	150–155
35.	सुनीता जैन कृत 'बोज्यू' उपन्यास का पारिवारिक आयाम	श्रीमती राजश्री सुब्रमणयम	156–157
36.	वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी भाषा का स्वरूप	डॉ. मधु बाला सांखला	158–161
37.	मनुस्मृति में महिलाओं की स्थिति : लिंग समानता के पहलू	डॉ. शुभमय पाहाड़ी	162–166

सम्पादकीय-

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 9-11

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लेखिका शीला झुनझुनवाला की आत्मकथा 'कुछ कहीं कुछ अनकहीं' : एक अध्ययन

–वर्षा नागोराव मोरे, शोधकर्ता
–डॉ. आर.एम. जाधव, शोध निर्देशक
अनुसंधान केन्द्र : पीपल्स कॉलेज, नांदेड़, महाराष्ट्र।

हिंदी साहित्य में वर्तमान में आत्मकथा साहित्य आज संख्या और विषय की दृष्टि से समृद्ध दिखाई देता है। लेखक के साथ–साथ आज लेखिकाओं की भी आत्मकथाएं बड़ी संख्या में पढ़ी जाती है। लेखिकाओं प्रमुख रूप से मैत्रेयी पुष्पा की दो आत्मकथा के खंड –'कस्तुरी कुंडल बसैं' और 'गुड़िया भीतर गुडिया', रमणिका गुप्ता के आत्मकथा के दो खंड – 'हादसे' और 'आपहुदरी', मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी', प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या', शीला झुनझुनवाला की 'कुछ कहीं कुछ अनकहीं' आदि आत्मकथाओं के नाम आते हैं।

लेखिका शीला झुनझुनवाला की आत्मकथा 'कुछ कही कुछ अनकही' का प्रकाशन सन २०१२ में किताबघर प्रकाशन से हुआ है। लेखिका ने इस आत्मकथा को दस शीर्षकों में और अनेक उपशीर्षकों को विभाजित किया है। आत्मकथा की शुरूवात लेखिका के बचपन की यादों से होती है। जिसमें वह उत्तर प्रदेश कानपुर व्यावसायिक नगर के वातावरण के बारें में, वहाँ की संस्कृति, बोलचाल, रहन–सहन, व्यापार, भौगोलिक वातावरण के बारें में लिखती है। लेखिका ने अपने बचपन की कहानी भी बताई है जो एक जुलूस में जाति के कारण हुए झगड़े में कुछ लोगों की मृत्यु होती है तब लेखिका और उसका छोटा भाई किस तरह फैसे थे। परिवार का परिवेश भी इसमें आता है। जिसमें स्कूल जाने से लेकर छोड़ने तक का वर्णन है। अपने माँ द्वारा हनुमान चालीसा गाना जिससे लेखिका पर धार्मिक संस्कार अपने आप होते गये। छः भाइयों में अकेली बहन लेखिका थी। अपने लड़की होने के बारे में लेखिका लिखती है, "लड़की होना मानो जंजीरों में जकड़े रहना। लड़के और लडकी एक रेखा के दो छोर–लड़कों पर सारा प्यार–दुलार लुटाया जाए, वह पढ़े नहीं तो टीचर रखा जाए। मैं नहीं पढूं तो किसी को कोई वास्ता नहीं। क्या फायदा ज्यादा पढ़–लिखकर। आखिर, मुझे तो चूल्हा ही झोंकना है।"[१] अर्थात यह वह जमाना था जब लड़कियों के मामले में समाज शिक्षित नहीं था।

आंदोलनों में हिस्सा न लेने के कारण लेखिका को अफसोस भी होता है कि, मैं लडकी क्यों हुई? देश भक्ति से संबंधित वे सारी तत्कालीन खबरे पढ़ती है। जिसमें गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, नेहरू की खबरे पढ़ती थी। भगतसिंह, चन्द्रशेखर आझाद, गणेश शंकर विधार्थी की कहानियाँ वह पहले ही पढ़ चुकी थी। अर्थात इसमें लेखिका ने देश की आजादी में दिया छोटा सा योगदान भी वर्णित किया है। एक बिन माँ की बच्ची के मनोदशा का वर्णन इसमें आता है। लेखिका का प्रेमविवाह हुआ था। जो घर के चार–दीवारों के बाहर नहीं निकल सकती उसका प्रेम विवाह होना थोड़ी बड़ी बात थी। इस विवाह के लिए लेखिका को संघर्ष भी करना पड़ता है। एक प्रेम विवाह की उलझने इसमें देखने को मिलती है।

लेखिका ने इस आत्मकथा में अपना आत्मिक वर्णन कम किया है। पति और उनके नौकरी के संबंध में चित्रण हमें ज्यादा मिलता है। लेखिका के पति एक इनकम टैक्स आफिसर थे। इस वजह से आत्मकथा में आयकर विभाग के

छापों का चित्रण और उस संबंधित तान–तनाव, परिवार और एक पत्नी की चिंता, उसमें बदली से घर छोड़ने और नए शहर में जाकर बसने के किस्से इसमें आते है। लेखिका ने आत्मकथा में एक उपशीर्षक में 'बंबई का प्रवास' नाम से उस शहर की इनके यादों को इसमें समेटा है। अर्थात इस आत्मकथा में लेखिका की जीवन अनुभव ज्यादा आया है। लेखिका ने अपने आत्म को उद्‌घाटित करने के बजाए अपने परिवार सगे–संबंधियों के बारे में ज्यादा लिखा है। अपने पति से बहुत ही ज्यादा प्रेम करने वाली लेखिका अपने संसारिक जीवन का लेखा–जोखा इस आत्मकथा में देती है। जिसमें पति का चरित्र स्पष्ट रूप में उभरकर आया है। "तलाशियों के आधार पर छापे सफल हो जाते, तो उस दिन सबके चहरे बड़े खिले–खिले दिखाई देते। नाकामयाबी होती, तो चेहरों का रंग ही उतर जाताद्य तब मैं समझाती इन्हें, भाग्य का भी तो खेल होता है, असफलता–सफलता में से एक ही तो हासिल होगी? अगर सफलता तुम्हें मिली है, तो असफलता, निराशा, कौन सहेगा? फूल लेना है, तो कांटे भी लेने ही पड़ेंगे।"[२]

लेखिका ने अपने लेखन के शुरूआती दिनों के अनुभव भी इसमें बताये है। जिसमें 'धर्मयुग' साप्ताहिक पत्रिका जिसके मुख्य संपादक डॉ. धर्मवीर भारती थे। उनके उनके साथ किये कार्यों और अनुभवों का वर्णन भी इस आत्मकथा में आता है। "भारती जी के विश्वास की यह चमक मेरे अंतर में शक्ति का संचार कर गई–एक आत्मविश्वास, एक चेतना, एक दृढ़ता भर गई। मैंने नमस्ते की और कहा, मैं कल से आ जाऊंगी।"[३] लेखिका ने 'अंगजा' के पहले अंक के प्रकाशन के समय तत्कालीन वित्तमंत्री मोरारजी देशाई को आमंत्रित किया गया था। मोरारजी ने अपने भाषण में 'अंगजा' के बारे में बहुत कुछ अच्छी बातें भी कही। मोरारजी के शब्द – "अंगजा स्त्री को निर्भय बनाने के काम में लगी रहेगी, तो मुझे बड़ी खुशी होगी। मैं तो ऐसा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि जिस उद्देश्य से शीला बहन ने 'अंगजा' को शुरू किया है, वह उद्देश्य परिपूर्ण होगा।"[४] लेखिका 'धर्मयुग', 'अंगजा' के बाद हिन्दुस्थान टाइम्स व्दारा निकलने वाली 'कादम्बिनी' मासिक पत्रिका में सहायक संपादक के रूप में भी कार्य किया है। लेखिका ने राजस्थान क्लब के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य किया है। आत्मकथा में लेखिका ने सन १९७० के पाकिस्तान के पहले आम चुनाव का वर्णन, फिल्म सिटी और वहां के कलाकारों के संबंध में अनुभव भी लिखे है।

लेखिका के पति की मृत्यु के बाद उन्हें बहुत दुःख होता है। अपने प्रेमी पति के दूर चले जाने के बाद विरह में व्याकुल हो जाती है। उनके अधूरे काम को पूरा करती है। 'अनजाने लोग' इस फिल्म का अधुरा कार्य पूरा करके उसे प्रदशित किया जाता है। टी.पी. झुनझुनवाला फाउन्डेशन की स्थापना करती है। जो सामाजिक कार्य करती है। विकलांग दृष्टिविहीन लोगों की मदत और रोजगार का साधन बन जाती है। इसके साथ ही अनेक सामाजिक परिवार मिलकर काम कर रहे थे। "मेरे और मेरे ठाकुर के स्वप्न की पूर्णता को, वह अभी चाहे कुछ ही अंशों में प्राप्त हुई हो, निरंतर गति मिल रही है। इस यात्रा में सहभागी है हमारा परिवारद्य हमारा एक और बड़ा परिवार है–'राजस्थान क्लब', 'राजस्थान रत्नाकर' और 'प्रियदर्शिनी' का परिवार, अनेक मित्र, परिजन बन्धु, सखा। 'एकला चलो' के मूल–मंत्र को लेकर साहसपूर्वक जिस यात्रा का आरंभ किया था, उसमें आज अनेक हाथ, अनेक पग साथ हो लिए हैं और यात्रा को अविराम गति मिल रही है।"[५] जो लेखिका पति के साथ मिलकर काम करती थी। पति के मृत्यु के बाद अकेले कार्य को संभालती है। जीवन की कर्म यात्रा के साथ जीती भी है।

अंतः इस आत्मकथा को हम एक सुलझी हुई और लेखिका के और उसके पति के जीवन हम एक साथ पढ़ते है। लेखिका ने अपने व्यक्तित्व के साथ साथ अपने पति के जीवन और व्यक्तित्व को अत्यंत बारीकी से आंका है। लेखिका का पूरा जीवन उनके पति के साथ आता है। अपनी आत्मकथा के अंतिम कुछ पन्ने छोड़ दिया जाए तो सभी उनके पति के साथ मिलकर आता है। इस आत्मकथा में आत्मतत्व जरुर लेखिका का हैद्य लेकिन मुख्य रूप से चरित्र उनके पति का उभकर आया है। इसलिए शायद रवीन्द्र कालिया ने कहाँ है, "...कहानी, संस्मरण, यात्रा–वृत्तांत, पत्र, डायरी आदि अनेक विधाओं से साक्षात्कार कराती एक अत्यंत पठनीय पुस्तक।"[६]

मर्यादाशील प्रेम और जीवन का चित्रण जो लेखिका के व्यक्तित्व का हिस्सा है। आत्मकथा का कथानक विवरण रोचक, प्रवाहपूर्ण और तथ्यपरक है। महानगरों में रहने वाले मध्यवर्गीय लोगों के जीवन के दिन–प्रतिदिन की ऊहापोह और जिजीविषा का चित्रण। आयकर विभाग के छापें, अधिकारियों की दक्षता, संघर्ष और कार्य को पूर्णता की ओर लेने जाने की ललक को इसमें चित्रित किया है। समसमायिक राजनीति, शासन तंत्र के अनुभव और उसके साथ सटीक टिप्पणियों को भी इसमें दिया गया है। पत्रकारिता और पत्रकारिता के जीवन अनुभवों को भी इसमें पढ़ने को मिलते हैं। आत्मकथा में गृहस्थ जीवन के अंतरंगता, आत्मिक क्षणों पढ़ते हुए लगता है जैसे हम उपन्यास पढ़ रहे है। लेखिका का सर्वसाधारण जीवन जो अपने पति के साथ मिलकर आता है। यह आत्मकथा लेखिका के प्रेम विवाह और विवाह के बाद के जीवन का जीवंत दस्तावेज है। एक ईमानदार सरकारी अफसरों के परिवार को अनेक हादसों से गुजरना पड़ता है। इसका जीवंत चित्रण लेखिका ने इसमें किया है। आयकर विभाग में रूचि रखनेवाले पाठकों के लिए यह आत्मकथा रोचक घटनाओं का भंडार है। काला धन और कालाबाजार करनेवाली की छोटी–छोटी घटनाओं का वर्णन इसमें लेखिका ने किया हुआ है। यह आत्मकथा 'आत्मिक' कथा कम और सामाजिक कथा ज्यादा लगती है। लेखिका ने अपनी इस आत्मकथा में 'स्वं' का उद्‌घाटन कम करते हुए पारिवारिक एवं पति व्यवसाय के बारें में विस्तार से लिखा है।

सन्दर्भ सूची :-

1. कुछ कहीं कुछ अनकहीं : शीला झुनझुनवाला – पृ. २१
2. वही पृ. १३४
3. वही पृ. १६१
4. वही पृ. २३६
5. वही पृ. ३७५
6. कुछ कहीं कुछ अनकहीं : शीला झुनझुनवाला – पृ. अंतिम पृष्ठ कवर पेज

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 12-15

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी सशक्तीकरण : राजलक्ष्मी स्वयंवर के विशेष संदर्भ में

-वर्षा रानी

संस्कृत शोध छात्रा, दयालबाग शिक्षण संस्थान, दयालबाग, आगरा।

महिला सशक्तीकरण का अर्थ है :-

सबलता, सुयोग्यता, आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास[1]। महिला सशक्तीकरण का अर्थ है, महिलाओं को भी विकास के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए, उन्हें भी मनचाही शिक्षा प्रापत करने का अधिकार देना तथा घर परिवार व समाज के बारे में स्वतंत्र निर्णय लेने का हक देना। महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है कि महिलाएं स्वयं ही अपने व अपने परिवार के मामलों में निर्णय लें, अपने फैसलों को अमल में लाएं और उन्हें सामाजिक स्वीकृति भी मिले। भारतीय समाज में युगो युगो से पुरूष की प्रधानता रही है। भारतीय परंपरा में जैविक व लैंगिक अंतर के आधार पर महिला–पुरूष में अंतर किया जाता है और यहीं अंतर जीवन के लगभग सभी पक्षों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

इसी अंतर के कारण परिवार एवं सामाजिक स्तर पर महिलाओं एवं पुरूषों के लिए अलग–अलग मानदंड बनाए गए हैं, महिला सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है कि उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में समानता का अधिकार दिया जाए और उनके अस्तित्व को सच्चे मन से स्वीकार किया जाए[2]। युगो युगो से नारी का कार्यक्षेत्र घर के परिवेश तक ही सीमित रहा है, परंतु स्वतंत्रता के पश्चात परिस्थितियां नवीन सांचे में ढलने शुरू हो गई, और नारी गरिमा के उद्घोष सुनाई देने लगे एक ओर तो इतिहास के झरोखे से उसका गौरवशाली चित्र प्रस्तुत किया जाने लगा, तो वही दूसरी ओर पाश्चात्य प्रभाव से उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने का आग्रह करने लगा। आज की नारी घर बाहर की दोहरी एवं जटिल जिंदगी का निर्वाह कर रही है। इस दोहरी भूमिका का निर्वाह वह कहां तक कर सकती हैं।

इसका सजीव चित्रण आधुनिक युग के महाकाव्यों, कहानियां, गद्य–पद्य रचनाओं उपन्यासों आदि के साथ–साथ सरकार द्वारा राज्य एवं केंद्रीय स्तर पर आयोजित कार्यक्रमों, योजनाओं और संविधान द्वारा प्राप्त विशेष अधिकारों के प्रति स्वयं जागृत होती महिलाओं के द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में स्वयं की उपस्थिति को अनिवार्य बनाने के साथ–साथ दिन प्रतिदिन महिलाओं की उन्नति के हो रहे चर्चों के माध्यम से लगाया जा सकता है।[3]

राजलक्ष्मी स्वयंवर :-

पंडित श्रीराम दवे द्वारा रचित राजलक्ष्मी स्वयंवरम एक आधुनिक राजनीतिक स्थिति पर आधारित महाकाव्य है। यह पूर्णतया कवि कल्पित महाकाव्य है। इस महाकाव्य में कवि ने आधुनिक राजनीतिक स्थिति को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। लोकतंत्र के नाम पर सत्ता आसीन जननायकों के द्वारा ही शोषित जनता, भोग विलास, भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने की नीति का व्यंग्य के माध्यम से विरोध जताया है, चुनावी प्रचार व प्रसार के दौरान राजनीतिक दलों के द्वारा भोली–भाली जनता से अनेकों प्रकार के कभी भी न पूरे होने वाले वायदे किए जाते हैं और चुनाव जीतने के पश्चात् सभी बातों को भुला दिया जाता है, इस प्रकार कवि ने काव्य के माध्यम से जाति–पाती, छोटे–बड़े, दलित, अल्पसंख्यक आदि

सभी समूह के नागरिकों को उनके उचित मतदान करने एवं सही प्रत्याशी का चुनाव करने की ओर प्रेरित किया है कवि के इस प्रयास के माध्यम से राजनीतिक पक्ष को काफी मजबूत और अच्छे राष्ट्रीय निर्माण के लिए सुशिक्षित एवं जागरूक जनता का एक छोटा सा उदाहरण सभी पाठकों को मिला है किस प्रकार अनेकों प्रलोभन देकर भोली भाली जनता को अपने पक्ष में मत देने के लिए प्रेरित किया जाता है और अपने मतलब के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसी क्रम में राजनीतिक क्षेत्र में नारी की भूमिका, उसके अधिकार आदि के प्रति उसको जागरूक किया गया है।

शैक्षिक सशक्तीकरण :-

शैक्षिक सशक्तिकरण से तात्पर्य है कि शिक्षा के स्तर को मजबूत बनाना, चुनावी वादों के तहत अध्येय महाकाव्य में प्रत्याशी उम्मीदवारों के द्वारा अपने पक्ष में वोट डालने के लिए मतदाताओं को उनके बच्चों के उज्जवल भविष्य के लिए नवीन विद्यालयों की स्थापना एवं शिक्षा के साथ–साथ भोजन संबंधित सामग्री वितरण योजनाएं, स्कॉलरशिप योजनाएं तथा आरक्षण के आधार पर छूट दिए जाने के वायदे किये जाते हैं। इतना ही नहीं जो युवा मतदाता है उन्हें रोजगार का प्रलोभन देकर अपने–अपने पक्ष में मतदान करने के लिए कहा जाता है। आज के इस युग में देव भाषा संस्कृत की उपेक्षा हो रही है, और पाश्चात्य संस्कृति को बढ़ावा मिल रहा है।

पौराणिकाः सुरगिरः सरसाः सुपुत्राः,
लोकस्य धर्मपरिपालनबोधका ये।
तेऽप्यद्य धर्मविमुखे खलु शासनेऽस्मिन्,
वृत्तिं विहाय कणकिंकरतामुपेताः।।8।। राजलक्ष्मी – 12–118

आज इस देश में सभी भाषाओं की जननी, सरस, सरल, अनंत ज्ञान की सागर संस्कृत भाषा की उपेक्षा की जा रही है यही भाषा लोगों को धर्म का पालन करना सिखाती है और जब भाषा की ही उपेक्षा हो रही है तो लोग धर्म से स्वता ही विमुक्त होते नजर आ रहे हैं, पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से तत्वज्ञान के मर्मज्ञ, कला मर्मज्ञ, काव्यकाविदों का इस भारत भूमि पर अभाव होता जा रहा है आज यह व्यापक चिंता का विषय है कि अमृत प्रदान करने वाली देववाणी मृत भाषा से संबोधित की जा रही है। संस्कृत भाषा की दिन प्रतिदिन हो रही उपेक्षा के प्रति कवि ने शिक्षा के क्षेत्र में नैतिक मूल्यों और भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देते हुए विश्व भाषा जननी, अनंत ज्ञान का भंडार, सुरभारती संस्कृत के प्रति पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। आज विश्व का पोषण करने वाली अन्नपूर्णा भारत भूमि अभाव से ग्रस्त है इसलिए कवि ने अपने काव्य के माध्यम से शैक्षिक सशक्तिकरण को बढ़ाने और शिक्षा के क्षेत्र में नवीन नीतियां लाने, नए शैक्षिक कार्यक्रमों का आयोजन करने, शिक्षक नियुक्ति में उचित मानदंडों का प्रयोग करने, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को समृद्ध एवं पुनर्जीवित करने के लिए संस्कृत भाषा का पुनः पाठ्यक्रम में लागू करने का आग्रह किया है। बालिका शिक्षा एवं बालिकाओं के प्रशिक्षण कार्यों को बढ़ाने का प्रयास किया है।

सामाजिक सशक्तीकरण :-

सामाजिक सशक्तीकरण एक ऐसा कदम है जिसके माध्यम से किसी भी देश की प्रगति एवं उन्नति का अनुमान लगाया जा सकता है। आज के इस वैज्ञानिक युग में दिन प्रतिदिन हो रहे विकास एवं प्रयत्नों के आधार पर सामाजिक क्षेत्र में भी अनेक नए बदलाव देखने को मिलते हैं। यही सामाजिक बदलाव हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक स्थिति के परिचायक होते हैं। समाज व्यक्तियों का वह समूह है जो पूर्णतः देश के चौमुखी विकास को प्रभावित करता है। आज का समाज पाश्चात्य सभ्यता से काफी प्रभावित है, कहीं सकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है तो कहीं अपनी

ही सभ्यता एवं संस्कृति के साथ खिलवाड़ नजर आता है। यदि हम सकारात्मक पक्ष को देखते हैं तो कहीं अपनी ही सभ्यता एवं संस्कृति के साथ खिलवाड़ नजर आता है। यदि हम सकारात्मक पक्ष को देखते हैं तो वह हमारे देश की उन्नति एवं प्रगति के लिए काफी सहायक है, सर्वप्रथम समाज में बालिका शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है, स्त्रियों को रोजगार, वेतन, भत्ता आदि में पुरूष के समान ही अधिकार प्रदान किए गए हैं। परंतु कुछ पक्ष ऐसे भी हैं, जहां महिलाओं को आज भी सामाजिक स्तर पर प्रताड़ित किया जाता है दहेज, बलात्कार, अपहरण जैसी समस्याएं आज समाज को नीचे देखने पर मजबूर कर देती है।

वृथैव शासनारूढा जनरक्षणगर्विताः।
एतेषां पश्यतामेव जायन्तेऽपहृताः स्त्रियः।।69।। राजलक्ष्मी0–11–69

सत्तासीन शासकों पर व्यंग करते हुए कहां है कि यह व्यर्थ में ही लोगों की सुरक्षा करने के वादे करते हैं, जबकि इनके सामने ही बालिकाओं का अपहरण किया जाता है, फिरौती ना मिलने पर उनकी हत्या कर दी जाती है और यह सत्तासीन अपनी आंखे मूंदे बैठे रहते हैं। राष्ट्र की रक्षा के लिए कवि ने अपने महाकाव्य के माध्यम से सामाजिकों को निर्वाचन के समय दिये जाने वाले प्रलोभन से बचने के लिए अपनी बुद्धिमता का सदुपयोग करने और कर्मठ, सच्चे ईमानदार एवं नेक प्रत्याशी का चुनाव करने का आग्रह किया है।

राजनीतिक सशक्तीकरण :–

राजनीतिक सशक्तीकरण का अर्थ है राजनीति के स्तर पर आम जनता एवं देश को मजबूत बनाना। स्वतंत्रता सेनानियों के प्रयासा एवं बलिदान से स्वतंत्रता का सूर्य उदित हो गया है सामंतों का शासन भी समाप्त हो गया, अब जना भी मत प्रजातंत्र प्रकट हो गया है, परंतु राज्येषणा से प्रेरित कई नए नए राजनीतिक दल उदित होने लगे हैं और राजनीति को इन लोगों ने अपना व्यवसाय बना लिया है, कवि ने सर्वप्रथम शासनस्थ दल के नेता के स्वरूप का वर्णन किया है और उनके कार्यों से रूष्ट परेशान जनता की व्यथा का वर्णन किया है। राजनीतिक क्षेत्र में कुछ बदलाव लाने के लिए इस बार राजनीतिक सशक्तीकरण पर जोड़ दिया गया है। सामाजिक एवं शैक्षिक स्तर पर महिलाओं की बढ़ती भागीदारी को देखते हुए आधुनिक युग में महिलाओं को भी राजनीतिक दल के प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़ने एवं अपनी पार्टी के समर्थन के लिए आगे लाने का प्रयास किया गया है। यह प्रयास राजनीतिक क्षेत्र में महिला सशक्तीकरण के लिए किसी वरदान से कम नहीं है, क्योंकि हर कार्य क्षेत्र में महिलाओं की समस्याओं को एक महिला से बेहतर कोई नहीं जान सकता। कवि ने अपने काव्य में एक बहुत ही सुंदर उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम भारत की महिला प्रधानमंत्री के रूप में निर्वाचित श्रीमती इंदिरा गांधी को एक सशक्त राजनीतिक नेता के रूप में प्रस्तुत किया है। राजनीतिक व महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में उनके कार्यों की भूरी–भूरी प्रशंसा की है।

अद्यापि कुरूते चित्ते, जाडयक्लैब्यजुषामपि।
अद्भुतं शौर्यसंचारं भुजेषु स्फुरणं तथा।।2।। राजलक्ष्मी0–8–2

आज भी शासनस्थ कांग्रेस दल के द्वारा इंदिरा के शासन व्यवस्था, उपलब्धि, साहस एवं वीरता की गाथा गाई जाती है। गांधी के द्वारा पंजाब की रक्षा व्यवस्था को बनाए रखते हुए पाकिस्तानी आतंकवादियों को मुंह तोड़ जवाब देना, अपने शासन की उपलब्धि में भौतिक प्रगति, महिला उद्धार के साथ–साथ युद्ध के समय इंदिरा द्वारा युवकों के प्रति राष्ट्रीय उद्बोधन आज भी उनमें साहस भरता है। जो कार्य बड़े–बड़े सूरमा न कर पाए वह कार्य इस दुर्गा स्वरूपा इंदिरा देवी ने कर दिखाया था। इस प्रकार पंडित श्री राम दुबे द्वारा कृत राजलक्ष्मी स्वयंवरम महाकाव्य शैक्षिक, सामाजिक,

राजनीतिक, आर्थिक सभी पक्षों से नारी सशक्तीकरण के लिए नई दिशा प्रदान करता है। यह सभी पक्ष महिलाओं की आधुनिक युग की आवश्यकताओं को पूरा करता है हर क्षेत्र में नारी को समान अधिकार प्रदान कराने के लिए प्रेरित करता है आज के इस भौतिकवादी युग में शताब्दियों से चली आ रही सभी पुरानी मान्यताएं विश्रृंखलता का शिकार हो गई है, नैतिकता और सामाजिकता के सभी पुराने मूल्य नई परिस्थितियों के सामने टिक ही नहीं पाए।

आज परिस्थितियां बिल्कुल विपरीत है, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का अभूतपूर्व योगदान रहा है देश के राजनीतिक परिदृश्य में महिलाओं की प्रभावी भूमिका सुनिश्चित करने की दृष्टि से विभिन्न स्तरों पर महिला आरक्षण का प्रावधान रखा गया है। आज महिलाएं राजनीति के क्षेत्र में भी अपनी योग्यता और परिश्रम से अपना मानक स्थापित कर रही है। आज की नारी शिक्षा, स्वास्थ्य, कार्यालय, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, खेलकूद, सिनेमा प्रत्येक क्षेत्र में अपना गौरव, अपना अस्तित्व और अपनी उपस्थिति को अनिवार्य बना रही है। आज देश की प्रगति के प्रत्येक कार्य में वह पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर तरक्की की सीढ़ियां चढ़ती जा रही है अध्येय महाकाव्य में कवि ने जीवन के प्रत्येक पहलू में नारी के सशक्त स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत किया है। जो आने वाली पीढ़ियों को राजनीति के क्षेत्र में इंदिरा जैसी कुशल राजनीतिज्ञ के जैसा संचालन करने के लिए प्रेरित करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चंद्रभान यादव (सितंबर, 2011) ''बालिका शिक्षा से ही होगा देश का विकास'' कुरूक्षेत्र वर्ष 57 अंक 11 पृष्ठ क्रमांक 24।
2. डॉ. निशांत सिंह (2011) स्त्री सशक्तीकरण एक मूल्यांकन खुशी पब्लिकेशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 11, 12
3. नवी दशक की हिंदी कहानियों में नारी परिकल्पना–डॉक्टर संगीता व्यास, मिलिंद प्रकाशन 4–3–178/2 कंदास्वामी बाग सुल्तान बाजार हैदराबाद।
4. माडयूल 11 महिला विकास एवं सशक्तीकरण–महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट जिला सतना मध्यप्रदेश।
5. राजलक्ष्मी स्वयंवरम–पंडित श्री राम दवे, हंसा प्रकाशन 57 नाटाणी भवन, मिश्राराजाजी का रास्ता, पांडुपोल बाजार, जयपुर 302001

मो0–9671904323

vasu14rani@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 16-23

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Dark Voice of the Sea

-Kiran Miglani,

Assistant. Professor, Govt. College, Hisar, Haryana.

Abstract :-

The sea in American poetry appears in varying hues. Its presence in American poems assumes roles of various colours and shades. The sometimes is dreadful, threatening and malevolent. But sometimes it appears energetic, consoling and sympathetic. From poet to the sea looks different in posture. From Dickinsen to Whitman and from Longfellow to Frost, the sea varies in its postures and moods. In some poets like Melville and Crane the sea assumes dreadful role while in poets like Longfellow it looks amiable and friendly. No doubt, the sea is always mainly looked at as a destructive force. However, in Whitman it assumes individual personality and takes on the poet's own identity. Being a powerful instrument of nature's force, the sea plays very significant role. Yet it remains buoyant and acts energetically wherever it is portrayed. However, the sea for all the American poets takes upon itself the role of omnipresent divinity. In the poetry of all the American poets it treats man as the centre of all spirituality. Man opposite to the sea, is the only centre of life and a man alone is the clue to the universe and its puzzling nature. (A theme in modern American poetry)

"Whether the sea appears as the destructive element or a unifying pathway, as chaotic experience or the creative imagination, as eternity or isolated mortality, it seems one of the strongest, most diversified motifs in American poetry", says Dennis Welland. Truly so, The various aspects of the sea appealing variously to create various moods of the poets have been variously interpreted. Sometimes it is its mysteriousness that haunts a poetic mind, while at another moment its ferocity compels him to hold it in awe. At moments it looks illimitable and its emptiness irks a poet's sensibility. Let the mood change and its deceptivity enthralls the poetic imagination. In fact the sea assumes variety of forms presents varying shapes and impresses a poet with its changing colours, teeming graces and buoyant beauty. It may look destructive and creative simultaneously, may prove frigid and fluent at the same time. It may emerge eternal, sink to shallowness, annoy us with its isolating effect and make us jubilant with its murky music. The sea with its most diversified notes and myriad motifs is always an attraction, an obsession and an instinct with the American poets. They seems to enter into a pact with the sea That the sea has always been in the American poet's mind whether in a friendly form or an inimical shape is suggested by the following lines by Emily Dickinson :

I never saw a moon
I never saw the sea
Yet know I how the heather looks
And what a billow be.

And the billow that Dickinson refers to is neither the billow in the Hudson bay nor the surf in the surging sea

of salt. It is only the billow in an imagined sea, stimulating the poet for an encounter with the sea of immortality. Unlike Dickinson who is a land-locked poet. we have sea-faring poets like Elizabeth. B. Harrod who, instead of being thrilled by the sea sounds, hears the pounding waves and bursts out, saying

Alien by virtue of our breaths
We must shut out with many tears
The surging voices in our ears
Or in sea-song be drowned to death.

But the same forbidding sound of the sea ceases to be ominous and stops to be threatening when we hear it as a source of song in H.W. Longfellow. This American poet of the nineteenth century whose delicate versification is highly admired by F.O Matthiesen sings of the themes of the sea and the night. For him the sea is neither an ugly monster of inhumanity nor a symbol of force, destructive or creative, but only a convenient source of imagery through which the poet quickens the imagination of his readers. One will surely relish the following lines from 'Sea weed' not for any moral didacticism for which Longfellow is reputed in his 'Psalm of Life' but for the analogy for working with imagination for which the sea image is applied :

So when storms of wild emotions
Strike the ocean
Of the poet's soul, erelong
From each cave and rocky fastness
In its vastness,
Floats some fragrance of a song.

This fragrant note of the sea finds a more welcome reception in another poem 'The Tide Rises and the Tide falls'. Here the poet has his keen eyes fixed on the object. The sermonizing tone of a priest that urges man to leave his footsteps on the sands of time in 'The Psalm of Life' is converted into a cautious injunction when the poet draws our attention to the dark call of the sea which, perhaps, threatens to erase the footprints left on the sands of time. Longfellow sings thus :

Darkness settles on roofs and walls,
But the sea, the sea in the darkness calls;
The little waves, with their soft, white hands,
Efface the footprints in the sands,
And the tide rises, the tide falls.

In the lines above we see a clear streak of the sea's sullen hostility to man; but they are not the least characterized by the inhumanity or male violence in which Melville's sea-poetry is so sadly soaked. For Herman Melville the sea is man's enemy. It is cruel in its doings and always poses an evil. It is gruesome in its posture. Its instruments of storms and the tempestuous winds, its sweeping and surging waves, its dreading icebergs and its ruining rocks always deal death blows. Mark how Melville describes an ice-berg that wrecks a ship in the sea :

Hard Berg (me thought), so cold, so vast,
With mortal damps self-overcast,
Exhaling still thy darkish breath-
Adrift dissolving, bound for death.

Melville's emphasis on the inhuman sea supported by such poets as Allen Tate and Robert Bly strengthens the belief of many other poets who see no other relation but that of antagonism between man and the sea. Whenever the sea is mentioned the first image that appears before our eyes of imagination is the image of its destructive power to sink ships, drown swimmers, erode the coastline and shipwreck the passengers who find their watery graves in the bubbling, boiling bottomless sea. We see such scenes of ship wreck in Tate, in Crane and the sea's cruelty in Robert Lowell. In Allen Tate's 'The Death of Little Boys' we witness a ceaseless and unending fight of man against shipwreck in the form of a vital image. The sea is presented as a devouring devil, as a cemetery of our ancestors whose bones lie crunching in the depth of briny caves. The sea is still howling and its ever increasing appetite for its human victim is unsatisfied. Observe the following lines from Allen Tate's 'The Mediterranean':

Let us lie down once more by the breathing side
Of Ocean, where our live forefathers sleep
As if the known Sea still were a month-wide-
Atlantis howls but is no longer steep.

In Stephen Crane the theme of ship wreck demonstrating its malignity for man assumes intensity from the poet's personal experience which is unlocked in his short story 'The Open Boat' which begins with

A man adrift on a slim spar
A horizon smaller than the rim of a battle
Tented waves rearing lashy dark points
The near whine of froth in circles.
God is cold.

The seething sinking waves of the sea, with its crushing grin and whining foam emitting fury find their outlet in the form of the divine purpose in Lowell's 'The Quaker Graveyard in Nantucket'. The sea's inhumanity which is proverbially silent in other poets becomes gloomily garrulous in Robinson Jeffers. In his poem 'The Eye' the Atlantic is seen as a 'stormy moat' and the Mediterranean as a monster swollen with the 'drunk sacrifice/ of ships and blood' The ocean as presented in 'Apology For Bad Dreams' is compared with a sharply cut shining stone that stands beautiful but adamant like a rock, demanding human sacrifice.

"Then the ocean
Like a great stone someone has cut to a sharp edge and polished to shining".

Beauty is mixed with cruelty when the sea's beautiful coast is compared with a siren asking for sacrifice
'This coast crying out for tragedy like all beautiful places'.

However, Jeffer's mysterious Pacific does not suggest the hostile and desolate world which is oppressive in its inhumanity. It is rather indifferent to man's instruments of destruction which he uses in barbaric wars against himself. Although the Pacific has been called 'the staring unsleeping/ Eye of the earth' yet it is totally unconcerned in its deep meditative calm and 'what it watches is not our wars.

From Jeffers to Robert Frost there is not much of the difference of degrees as both were contemporaries. Sea for Frost is an object of attraction for people who love it more than they love the land. Frost makes it very clear in the opening lives of 'Neither Out Far Nor In Deep'

'The people along the sand
All turn and look one way.

They turn their back on the land
They look at the sea all day.
And again,
The land may vary more
But wherever the truth may be-
The waters come ashore,
And the people look at the sea.

Unlike Jeffers, Robert Frost finds the Pacific as a living thing that

'thought of doing something to the shore
That water never did to land before'.

In Frost we find a different attitude towards the sea in a typically short and witty way, For example Frost touches upon our weak nerve when he makes the sea assume threatening tone in the following lines:

"There would be more than ocean water broken
Before God" last PUT OUT THE LIGHT was spoken".

Very different from Jeffers and Frost in his attitude to the sea Wall Whitman sees in the sea an identity of himself. The sea drift in his poems is reminiscent of his tryst with divinity. Whitman finds in the murmuring waters of the sea currents the same sense of self-reproach that disturbs his own heart.

"You oceans both, I close with you
We murmur alike reproachfully rolling sands and drift
Knowing not why,….."

In Whitman the sea is not an image of inhumanity. Far from being an enemy of man it appears as a preserver of life. Whitman glorifies the animal would and the world of vegetation which the sea maintains and looks after. We have a glimpse of this in his poem. 'The World Below the Brine' where Whitman sings in praise of the things and inhabitants of the sea. His attitude to the sea is based on his sympathetic understanding of the watery world. He sees a vast similarity between the sea and the Almighty. In his poem 'On the Beach At Night Alone' he refers to this aspect of the sea Standing on the beach he thinks that

"A vast similitude interlocks all
All nations, colours, barbarisms, civilization, languages
All identities that have existed or may exist in this globe or any
globe."

In Whitman the Pacific is more a stage that witnesses the advancement of man's spiritual progress than a mysterious & silent watcher of man's onslaught on time as in Jeffers

"Passage to India!
Struggles of many a captain, tales of many a sailor dead."

The note of melancholy that is heard in Dickinson's association with the sea finds its somewhat perverted echo in Daniel G. Hoffman's, 'The Seals In Penobscot Bay'. The seals are warned against the danger of being killed by man's guns but the seals ignore the warning which is issued through the sounds of the engines of a destroyer.

Hadn't heard of the atom bomb,

So I shouted a warning to them.

The sea in which the seals swim across the watery troughs is like a mirror that reflects the slipping creatures.

Each looked at the Atlantic as
though it were her looking glass

The warning issued to the seals is ignored as the seals are in their merry mood. The result may be their merciless killing.

When this boom, when the boom, when the boom
Of guns punched dark holes in the sky.

The sea that nurtures the fish proves at last that the cradle may turn into a grave. In the poem "The Goose Fish" by Howard Nemerov, the male lover in embrace with the female one is seen enjoying the love on the moonlit shore :

On the long shore, lit by the moon
To show them properly alone
Two lovers suddenly embraced
And for a little time they prized
Themselves emparadised.

But the sea witnesses the death of the fish with the same attitude of unconcern with which it sees his birth loving and merry-making. The sea is portrayed as indifferent and perhaps dark in its designs. Again in Richard Ebehart the seals face mortality in the same way in which we mortals face it.

The seals at play off Western Isle
In the loose flowing of the summer tide
And burden of our strange estate.

Their fear of death is akin to our fear. They have more fear of man's nature than of natural elements of air and water in which they live.

The seals in Penobscot Bay may be less aware of the atom bomb than the poet but they are not the least less vulnerable to it than man who has perpetrated horrible tortures on the sea inmates by carrying out nuclear tests in the seas and the oceans.

In Levertov's 'The Sharks' there is the depiction of the innocent beauty of the sharks swimming in the depth of the sea. The evil, is however recognized but it is not imbibed. The sea's beauty distills the intensity of its power of destruction. But the dread of its waves lurks beneath. Mark the lines:

Well, then, the last day the sharks appeared
Dark fins appear, innocent
As if in fair warning. The sea becomes
Sinister, are they everywhere?

In Stevens Wallace the sea assumes several forms and presents several shapes. The every-changing colours of the glassy waters, sometimes become grinding and sometimes keener sounds. The same sea that is portrayed as bronze shadows heaped on high horizons' is also pictured as tragic-gestured and ever-hooded'.

The sea in Stephen Crane is directly linked with the morbid sea of Allen Poe and Melville But it is not barbarous as it is in Allen Tate's 'The Mediterranean'. "Westward, Westward till the barbarous brine. Whems us

to the tired land."

Whitman's sea is a witness of man's glorious deeds, his achievements, his spiritual quest and his sublime destiny. In 'Song For All Sea, All Ships' Whitman refers to this ennobling aspect of the sea

"Flaunt out O sea your separate flags of nations
Flaunt out visible as ever the various ship, signals!
A spiritual woven signal for all nations, emblem of man
Elate above death.
Token of all brave captains and all intrepid sailors
And all that went down doing their duty,…."

The idea of the sea in Whitman is finally sublimated into the idea of it as a bridge that gaps the nations of the world. In 'Passage To India' we have the glimpse of this when Whitman sings

"Again Vasco do Gama, sails forth
Again the knowledge gained, the mariner's compass,
Lands found and nations born,…."

With a single leap we enter the present century with 'The Yachts' by William Carlos Williams 'The Yachts' open with a deceptive impression of the glorious colourful picture of the sea whose surface displays the graceful yachts sailing on it. However the sea soon assumes a dreadful look when the poet introduces it as

"an ungoverned ocean which when it chooses
Tortures the biggest hulls, the best man knows
To pit against its beatings, and sinks them pitilessly."

Quite clear is the violence of the sea which is pitted adamantly against man. It is the repetition of Hemingway's Santiago who faces the wrath of the sea with courage and fortitude but loses the battle with it. However, Williams' 'Yachts' stand and steer clear of the frothful fury of the sea. The yachts which represent the romantic youth seem to be threatened by the sea which

is moody, lapping their glassy sides, as if feeling.
for some slightest flaw but fails completely.

There seems to be present in this poem a race a mad race between the yachts which flutter in the fashion of butter flies and laugh to scorn the sea's defeat and the sea that suffers from the self-inflicted disgrace. Willian Carlos Williams allies beauty with awe when he makes his yachts ridicule the sea in a challenging tone for its failure in sinking them. The yachts aglow with their voice of victory over the helplessness of the sea seem to feel line in their triumph. It is the sea, not the yachts that is defeated

"….. Broken
beaten, desolate, reaching from the dead to be taken up
they cry out, failing, failing! Their cried rising
in waves still as the skillful yachts passover.

In Emily Dickinson the sea is strange, silent and deep. Its silence suggests the silence of Death; it also suggest some-thing horrible which being invisible is all the more frightening. The silence of the sea in the following lines from 'I Years Had Been From Home' is like the silence of the haunted house in Walter De La Mare's poem 'The Listeners.'

" I fumbled at my nerve,
I scanned the windows near'
The silence like an ocean rolled,
And broke against my ear."

And the sea's annihilating power is also suggested in the last two lives of the following poem :

I started early, took my dog,
And visited the sea;
The mermaids in the basement
Came out to look at me.
And bowing with a mighty look
At me, the sea with drew.

The sea as we see it in Hart Crane is cruel and heatless. Advising the urchins playing on the shore the poet cautions us all against the faithless sea.

"…… but there is a line
Too lichen faithful from too wide a breast
The bottom of the sea is cruel."

Throughout the poem "Voyages II" where the sea is called 'the great wink of eternity' it is the capacity of its destruction which has been made felt through such lines as

"Take this sea, whose diapason knells,
On scrolls of silver snowy sentences
The sceptred terror of whose session rends
As her demeanors motion well or ill,"

Throughout this poem the sea has been contrasted in its eternity will the mortality of man. Although its physical charms and beauty are highly praised yet there is hidden underneath its beauty the power of destruction which is always associated with beauty

"Mark how her turning shoulders wind the hours,
And hasten while her penniless rich palms
Pass superscription of bent foam and wave,-
Hasten, while they are true,- sleep, death, desire,
Close round one instant in one floating flower."

The beauty of the sea in Hart Crane is the killing beauty as beauty always is. This sea-beauty in Crane reminds us of the following lines

"Beauty, like white powder, makes no noise
And still the hypocrite destroys.

In the poems of 20th century American poets we neither hear the nostalgic notes as in English poet's poem 'Sea Fever' nor feel dreading pulse beating heavily like that of the 'Ancient Mariner'. We rather gloat joyously over the waves striking against the shores of the Botany Bay.

The dark voice of the sea in American poetry is, no doubt, dark in tone and tune but sometimes this darkness is thrilling as it is sometimes chilling and malevolent. Emerson, Hawthorne, Melville and even Whitman

are primarily divergent in their sea-dealing but they are prevailingly optimistic.

However, common to all the American poet is the profound sense of the human predicament. The basic premise in all the American poetry is, in the words of Geofrey Moore, "that man is the spiritual centre of the universe, and that in man alone can we find the clue to nature (sea), history, and ultimately the cosmos itself."

References :

1. Background to American Literature… R.W. Horton & H.W. Edwards.
2. Literary Criticism in American… A.D.V. Nostrend (ed.).
3. Understanding Poetry… Cleanth Brooks.
4. The Liberal Imagination… Lionel trilling.
5. Hound and Horn… Allen Tate.
6. The Didactic Muse; Scenes of instruction in contemporary American Poetry… Willard Spiegelman.
7. The Native American Oral Tradition; Voices of the Spirit and soul… Einhorn Lois J.
8. Poets in Progress, Critical Prefaces to thirteen Modern American Poets… Hungerford, Edward.
9. Critical Guide to Leaves of Grass… Miller, James E.
10. Ships Going into the Blue… Simpson, Loius.

Postal Adress: K.L. Miglani H.No. 115 M.C. Colony Hisar, Haryana Pin code- 125001
Ph. 9017439245, 9466614356
Email: mukiluhaniwal@gmail.coms

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 24-31

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Shaikh Ahmad Abdul Haq Rudaulvi : His Personality and Mysticism

-Daud Ibrahim,

Research Scholar, CAS, Department of History, AMU

Awadh has been a center of attraction for Sufis since the entry of Tasawwuf in India. Among these early Sufis, Shaikh Qiwam-u'd-din Awadhi (Lucknow), Shaikh Hisam-u'd-din Fatehpuri (Barabanki), Shaikh Sarang (Manjhganwa, Barabanki), Shaikh Makhdum Ashraf Jahangir Simnani (Kichhauchha, Ambedkarnagar), Shaikh Ahmad Haq Rudaulvi (Faizabad), and Shaikh Shah Mina Lucknowi, Shaikh Mubarak Gopamuvi (Hardoi), Shaikh Sa'ad-u'd-din (Khairabad, Sitapur) etc., had established Khanqah at various places in the Awadh region and devoted themselves to human service. The Sufi to whom the credit goes for spread ofChishtiya Sabiriya Silsilah in Awadh region was Shaikh Ahmad, the Khalifah of Shaikh Jalal-u'd-din Panipati. In fact, if it is said that the credit for establishment of the historic Sabiriya Khanqah first goes to Shaikh Ahmad Abdul Haq, it would not be wrong. This Khanqah was established at that time of shaikh Ahmad, but later on the Central-System of Chishtiya Silsilah had fallen in Delhi. Independent Khanqahs were being established in different Subas of Hindustan. Rudauli Khanqah soon became a popularKhanqah of North India.Many famous Sufis were associated with this Khanqah, who not only made Chishtiya Sabiri Silsilah popular at Pan India level but also at the international level.

Keywords : Haq, Khanqah, Ma'arifat, Malfuzat, Pir, Sama, Shari'at, Ulema, Zikr,

Shaikh's early life and desire for spiritual knowledge :-

Shaikh Dwood , the grandfather of Shaikh Ahmad, migrated from Balkh to India, fed by the instability caused by the invasion of Halaku. During the reign of Ala-u'd-din Khilji (1296-1316), he was given a piece of land in Awadh a Ma'as . Thus,his grandfather departed towards Awadh and made Rudauli his place of residence. Shaikh Dawood's son Shaikh Omar had two sons, the eldest son of him, Shaikh Taqi-u'd-din, a great scholar of his time, made Delhi his residence. The second son was Shaikh Ahmad, who detested materialist world and kept himself away from this mundane life. Shaikh Ahmad was given the title of Abdul Haq by his Pir(spiritual master) Shaikh Jalal-u'd-din Panipati . Since childhood, hewas fascinated by the existence of god, he found himself lost in the worship of God. Shaikh Ahmad's Malfuzat(discourses of Sufi) 'Anwar-u'l-Uyoon', iscompiled by his grandson Shaikh Muhammad's Khalifah(spiritual successor), Shaikh Abdul Quddus Gangohi (d.1537), wrote that when he was seven years old he just woke up at night to offer Namaz of Tahajjud with his mother. His mother did not know about it. One day his mother saw him offering Namaz. Then, she said to her son that at this young age you are performing Tahajjud, when even it is not necessary for you to offer compulsory Namaz. For this, his mother stopped him, but the love of Allah inside Shaikh was so strong that he finally left his house and went tohis brother Shaikh Taqi-u'd-din inDelhi. According to Akhbar-u'l-Akhyar, he wasonly twelve years old when he left hishome.

Even after Shaikh's arrival in Delhi, the fire in his heart towards God was not reduced,because the knowledge imparted by his brother was insufficient to satisfy histhirst of spiritual knowledge. In the end, Shaikh Taqi-u'd-din took him to the famous Ulema of Delhi and the Ulema brought before him an Arabic grammar book called 'Mizan-u's-Sarf' but this book did not influencedthe Shaikh either. Finally, Shaikh came in rage and read the following Sher which means-

مخدوما عمر بخواندن میزان بگز شت

صرف مگر روز قیامت خوابی کرد

(Oh Ulema! You have finished your life reading grammar; will you taste the spirituality on the day of judgement (Qayamat)?)

That is, you teach me something bywhich I can reach God and apart from that I would not keep anyone as my friend. Atlast, on the advice of the Ulema, Shaikh Taqi-u'd-din left them on their status.

For few years, he wandered here and there in search of a true Pir(spiritual master), that would quench his thirst for divine knowledge (Ma'arifat). Finally, he reached Panipat and attended Shaikh Jalal-u'd-din's service and surrendered himself to him and became his disciple. For a few days, he stayed in the Khanqah of Shaikh and did austerities and prayers. Shaikh Jalal-u'd-din Panipati was so much influenced by his lifestyle and severe penance that he entrusted the education of his sons to him with the task of initiation.

After the death of Shaikh Jalal-u'd-din, once Shaikh Ahmad went to Panipat and gave spiritual guidance to his sons. This is the reason why the descendants of Shaikh Jalal-u'd-din still receive KhilafatNama (spiritual representation letter)fromthe descendants of Shaikh Ahmad. After spending few days in Panipat, at the behest of Shaikh Jalal-u'd-din, Shaikh Ahmad reached Sunam but at the same time, Timur attacked (1398 AD) on Sunam, which led Shaikh toreach Pandua in Bengal via Badayun. In Pandua, Shaikh stayedat a Kotwal's house and from there; Shaikh reached the Khanqah of Shaikh Noor i-Qutb i-Alam . Shaikh Abdul Quddus Gangohi mentions a thrilling event that took place at Pandua in Anwar-u'l-Uyoon.

"One night, the contemporary emperor disguised as a Faqir and went out to visit the city. He saw a group of Faqirs preparing to have food, the king sat near them. Those people told the king to flee from there, saying that you are focusing on our food. The king said, I am a poor man, what a mess of a master like you, you should eat. But those Faqirs eventually drove the king away from there. The king got up from there and reached another place where a group of Hindu saints were sitting. They were also preparing to eat. They gave food to the emperor as well. The king said, I am a poor stranger, how can my share be equal to all of you. The Yogis said, this is our practice, if the dog is present, then also take-out food for it, even though you are a human being. When the emperor returned to his palace, he ordered that all the Dervish and Qalandar be removed from the city.

The Faqirs of the city started getting caught by the soldiers and they were put on a boat and taken to some other place. When Shaikh Ahmad received this information, he reached out to the Emperor's palace with a Majzub (one who is attracted to the truth) who was his neighbor and put a lot of dust on his head. And sat waiting for someone to tell them something but nobody said anything to them. He said that the emperor is not taking out the Dervishes and Qalandars, but excluding the ignorant and pretenders."

In the end, Shaikh decided to go to his native place. When Shaikh reached Bihar, he met two Majzub there. One was named as Sultan Ala-u'd-din who was always naked and the other was known as AbdullahLangoti because he used to hang the loincloth on the front of his body and lay bare from behind. Suddenly, he met Shaikh

Ala-u'd-din, a Darvish, who took him aside and said three times, Baba why do you cook but leave when the food is ready to eat! After saying this to him, Shaikh Ala-u'd-din heleft. Then,Shaikh met Abdullah who said again,the same thing. These Majzub had a great effect on Shaikh's heart and Shaikh thought that perhaps all these pointing to me that you are going to get your objective. This thought further increased the fire of love towards God within Shaikh. Finally, Shaikh reached Rudauli and engaged himself in the most difficult Sufi exercises.

Sufi Tazkirahs describe many miracles related to Shaikh. There is no doubt that most of the miracles have been exaggerated by his followers, because the Shaikh himself believed that a Wali Allah(friends of Allah) should hide,from the general public ,of his secret. This is the reason that Shaikh has called Mansour Hallaj (d.922) as a child,because Mansour had revealed all his secrets.

Such a description,no doubt ,reflects his spiritual revelation. Along with this, following the Shari'at by the Shaikh and disciples of Shaikh, they often kept themselves busy in Zikr. Sama was also held in Shaikh's Khanqah, which Shaikh considered as the main means of his spiritual progress. One day at the Sama event, Shaikh told his maid, "go in and bring something and give it to the Qawwals but Shaikh's wife sent the maid back,saying that there is nothing inside. On this, Shaikh gave the maid as a gift to the Qawwals in the same condition of Wajd(spiritual ecstasy). One he was reading a Sher in a state of Wajd which meant :-

"Even if there is a wind storm in the whole world,
the lamp of the worshiper of Allah does not extinguish under any circumstances."

On reading this verse, Shaikh said to his disciples, just as the lamp of Shaikh Ishaq Gazruni is still burning and will keep burning till the Qayamat, in the same way, I will set a food Deg (kind of vessel) on fire and people from that Deg will always eat and will continue to benefit from it. The chain of this vessel continued for three consecutive days and the food of that vessel was not diminishing. In the end, the idea came inside Shaikh that it was becoming a means of my fame, which is a cause of trouble for a Sufi. As soon as this idea came, Shaikh raised the slogan of Allahu Akbar and broke the vessel on the ground.

Explaining the secret of Tauhid i-Wajudi to one of his disciples Mukhlis , Shaikh filled water in a vessel in front of him and put some pebbles in it. Shaikh said to Bahram, do it out of water, Shaikh Bahram immediately put his hand in water and took out the pebbles. After this, Shaikh Ahmad dissolved the soil in that water and said, now take it out. Shaikh Bahram put his hand in but could not find the soil as the soil had dissolved. Shaikh Bahram said, Shaikh soil is completely dissolved. Then, Shaikh replied, when you want to meet your Mashooq (beloved) in search of Allah, just be like this soil, give your name and identity and live forever with the eternal power of God. If you come to me,be like that soil, otherwise you should go somewhere else,because it is the work of men and not of eunuchs.

Another practice was very prevalent in Shaikh's Khanqah, and that was- Haq Haq Haq. These three times 'Haq' used by the Shaikh and Shaikh's disciples in almost all their works. For example, before and after the Namaz, while Salam (saluting), while selling and purchasing, at the beginning of writing letters, walking on the road and even at the time of his death, through the use of word Haq he used to remember of Allah. In relation to this, Shaikh Ahmad said that Allah has no name nor address, whatever the name given to him, there is no other name better than Haq. This gives a glimpse of the beauty of God. The people who called it against the Shariah have been called ignorant by Shaikh Abdul Quddus Gangohi and he completely refuted them.

Shaikh'srelation with the ruling class :-

As far as the subject of Shaikh's relation with the ruling class is concerned, he followed the tradition of Chishti Silsilah in his entire life. He has been a contemporary of Sharqi Sultan Ibrahim Shah Sharqi. Attempts were made to give himJagir and gifts many times,but Shaikh always refused to take any of them. A description of an incident related to this subject is found in Anwar-u'l-Uyoon.

"One day, Ibrahim Shah Sharqi stayed in Basuli village. Shaikh wondered why not bring the Sultan on the path of Allah. Shaikh proceeded towards the Sultan's camp, with that intention. Qazi Raji, an important Qazi of the Sharqi Sultanate, when he received this news, proceeded to welcome the Shaikh, and made him sit on his equal. The Qazi appeared in front of the Sultan and told the Sultan that a Faqir has come, who is Wali Allah and Qutub of his time,Sultan said should I meet him? Qazi said, it does not seem right to meet him now because he is a Wali Allah, do not know whether there will be your kingship or not,after meeting him. Therefore, he should be tested first. The Sultan said what to do then. The Qazi said, Sultan should offer certain property etc., in the name of his Khanqah forever. If he does not accept it,then he is a true Faqir and there is no harm from his meeting. But if he accepts it, then it would not be good to meet him at all.

The Sultan summoned Munshi and immediately wrote the names of the four villages and thousands of Bigha land as a gift for Khanqah. The Qazi appeared in the service of Shaikh with Jagirs and some others gifts on behalf of the Sultan and told the Shaikh that the Sultan has given you such kindness which he rarely does, on anyone else. On being asked by Shaikh, the Qazi said that for the living of your sons, this is some Jagir which is handed over to Khanqah by the Sultan and also the Qazi took out the royal decree and put it in front of the Shaikh. Shaikh said, Qazi read Kalma, you have become Qafir at this time. Qazi said what I have done that I was infuriated. Shaikh said, are you and Sultan not making godly claims by giving this livelihood. The god, who provides a means of livelihood to Ibrahim Shah and his horses and elephants, to you and your servants, will not give livelihood to my children. Qazi tried hard that Shaikh accepts the gifts. Shaikh looked at him with a heavy eye and did not take anything and from there he cameback to his Khanqah."

Similar is the one incident, in which, Muhammad khan, the local ruler of Rudauli, come to meet Shaikh. Shaikh's son-in-law asked Shaikh's disciple Shaikh Burhan-u'd-din to ask Shaikh to recommend some land for us in which I could farm and earn a living. Shaikh said to Muhammad Khan exactly as his son-in-law said. But in the end, the Shaikh also tore out the paper which had been given by Muhammad Khan as a land certificate to the Shaikh's son-in-law. The detail of this incident is mentioned in Anwar-u'l-Uyoon.

It is clearly written in Shaikh's Malfuzat that after this incident, nobody offeredand discussed about worldly things in the presence of Shaikh Ahmad. Shaikh Abdul Quddus Gangohi writes that it has been fifty years since Shaikh's death and today his third generation is engaged in the service of Khanqah but no one has any relation with the contemporary ruler.

Shaikh Sahib left this world in 837 AH/1434 AD at the age of 120 after living a life of sacrifice and being absorbed in the meditation, penance and worship of God and merged in his Mahboob (Allah).

From the study of many Tazkirah and Malfuzat of Shaikh Ahmad, the light it sheds on the life of the Shaikh, clearly shows that he practiced the toughest form of worshiping the God in his whole life, following the Shariah, with only one aim- To please God and serve humanity. He used to sweep the Jama Masjid of Rudauli every Friday for about forty to fifty years, but he was so involved in the remembrance of God that while walking towards the

mosque he did not even know the way to the mosque. With Shaikh's disciples walking with him and raising the voice of Haq, Shaikh would get a hint on which side he had to go now. He had contact with the Sufis, Qalandars and Yogis of all ideologies during the journey from Rudauli to Bengal. Bengal was the main stronghold of the NathpanthiYogis at that time, so it was natural for him to be influenced by their thoughts. The atmosphere of his Khanqah was very similar to that of Baba Farid Ganj i-Shakar's Khanqah. For example, he also used to insist on such difficult exercises like Baba Farid's, Chillah i-Maqus , Shaikh Ahmad kept himself in the tomb for six months. In Shaikh's Khanqah, Hindavi was also used to explain Sufii practices like the Khanqah of Baba Farid; especially Awadhi language was also used.

Descendants and Khalifah of Shaikh Ahmad :-

It is clear that Shaikh Ahmad took the Sabiriya Silsilah to its zenith. After him, his sons, disciples and caliphs played an important role in the propagation of this process. Shaikh Ghulam Sarwar writes that Shaikh Ahmad's disciples and Khalifah propagated his education and Silsilah, in different parts of Indiaas well as outside India. Thus, it is clear from the study of various sources that Shaikh Ahmad did not easily and quickly make anyone a disciple. If someone tried too hard to include himself in his Khanqah, Shaikh Ahmad would take his tough test and only after passing it he used to join the circle of disciples. Some of his disciple who used to be with Shaikhvery often, like Shaikh Bakhtiyar, Shaikh Miyan Mukhlis and Shaikh Jamal Gujjari Chishti, etc., are notable. As far as the Khilfat is concerned, only two of their caliphs got fame. One was his son Shaikh Muhammad and the other was Miyan Qaddu.

1. Shaikh Dawood was a disciple and Khalifah of Shaikh Nasir-u'd-din Chirag i-Dehalvi (d.1356). He was also a Sufi of his time but kept his Sufi life hidden from the public. His tomb is also located in Rudauli.; Shaikh Abdul Quddus Gangohi, Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, Urdu trans. Chaudhary Khalil-u'r-Rahman, Matba Mujtabai, Lucknow, p.138; Shaikh Abd-u'r-Rahman Chishti, Mirat-u'l-Asrar, Urdu trans. Maulana Ilhaj Kaptan Wahid Bakhsh Siyal Chishti, Hamid Jamil Printers, Lahore, 1993, p.1141
2. Religious grant
3. Mirat-u'l-Asrar, op. cit.,p.1141; Mufti Ghulam Sarwar Lahori, Khazinat-u'l-Asfiya, Urdu trans. Iqbal Ahmad Faruqi, vol-2, Maktaba i Nabviyyah, Lahore, 2001, p.276
4. His name was Khwaja Muhammad, and the title was Shaikh Jalal-u'd-din. He was the disciple and Khalifah of Shaikh Shams-u'd-din Panipati. Shaikh Jalal-u'd-din's childhood was contemporary to Shaikh Bu Ali Shah Qalandar and Bu Ali Shah loved him very much. Often Shaikh used to visit Jalal-u'd-din also at his house. He used to practice hardest Sufi exercises. He was always engrossed in the remembrance of God. He always kept his body hungry. The result of this was that at his last time he had a situation that he could not do any work apart from offering Namaz. After the Namaz, they were lost by meditating on God again.
5. Shaikh's father was a rich man. Shaikh Jalal-u'd-din lived in his early life with great pride and passion. One day, riding on an Arab horse wearing beautiful and fine clothes, Shaikh was passing in front of Shaikh Shams-u'd-din Panipati's Khanqah. Shaikh Shams-u'd-din had a spiritual eye on him and attracted him like himself. Shaikh Jalal-u'd-din immediately got down from the horse and fell at the footsteps of Shaikh Shams-u'd-din and became his disciple. Shaikh Jalal-u'd-din sifted from worldly life and set himself on the path of God. After much of worship and penance, Shaikh Shams-u'd-din appointed him as his spiritual successor.

6. According to Muhammad Akram Barasvi, A book on Tasawwuf was also written by him, named Zad-u'l-Abrar. Shaikh never made a distinction between Shari'at andTariqat. He believed that Shariah is the foundation of Tariqat. Shaikh had forty Khalifah but his Silsilah extended beyond Shaikh Ahmad and which continues till today.; Mirat-u'l-Asrar, op. cit., pp.1036-43; Muhammad Akram Barasvi, Iqtibas-u'l-Anwar, Urdu Trans. Maulana Ilhaj Kaptan Wahid Bakhsh, Hamid Jameel Printers, Lahore, 1993, pp.527-45
7. Khazinat-u'l-Asfiya, op. cit., p.277-78
8. Tahajjud, also known as the 'night prayer', is a voluntary prayer performed by followers of Islam. It is not one of the five obligatory prayers required of all Muslims, although the Islamic prophet, Muhammad was recorded as performing the tahajjud prayer regularly himself and encouraging his companions too.
9. Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., p.13-14; Mirat-u'l-Asrar, op. cit., p.1142;Iqtibas-u'l-Anwar, op. cit., p.556
10. Shaikh Abdul Haqq Muhaddis Dehalvi, Akhbar-u'l-Akhyar,Urdu trans. Maulan Subhan Mahmud and Maulana Muhammad Fazil, Akbar book sellers, Lahore, 2004, p.395
11. Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., p.15; Akhbar-u'l-Akhyar, op. cit., p.395; Iqtibas-u'l-Anwar, op. cit.,p.557; Mirat-u'l-Asrar, op. cit., p.1142
12. Shaikh Ghulam Sarwar has described this incident in an interesting way in his book Khazinat-u'l-Asfiya. He writes that when Shaikh Jalal-u'd-din came to know about the arrival of Shaikh Ahmad in a spiritual way, he asked his disciples and servants to cook the best dish today and decorate the permissible and forbidden food on the food table and also tied horses with the Zeen (horse saddle) equipped outside the Khanqah. He told his Murids(disciple) that a guest is coming to take his exam. When all arrangements were made and Shaikh Jalal-u'd-din was about to eat, then Shaikh Ahmad appeared at his doors. Seeing all this, Shaikh Ahmad thought that this person is living very gratefully and living a worldly life, and then what does it mean by divine love. Seems like I have come to a wrong place and he went back from there. He walked all day and it became night, he asked one person which place is this? He said Panipat. Then he proceeded in the next morning and continued till evening, when he looked at one place, Panipat was written there too. This contin ued for three consecutive days but he could not get out of the city of Panipat. Finally reached a forest and forgot the way, a man was sitting with his on top of the dry branch of the tree, he asked him from where is the way out. The person replied, you have forgotten the way. You have forgotten the right way through Shaikh Jalal-u'd-din's door, where will you go now? If you do not believe my point then look at two people coming there and ask them. Both of them also gave same answer. Now Shaikh was convinced that I had made a mistake and now I am being guided spirituality. Shaikh immediately returned as Shaikh's Khanqah and at tended Shaikh Jalal-u'd-din's service. Shaikh Jalal-u'd-din was wrapping his turban around the tomb of Shaikh Shams-u'd-din Panipati and placed the that turban on the head of Shaikh Ahmad Abdul Haq and included him among his favorite disciples.; Khazinat-u'l-Asfiya, op. cit.,p.274-75; Iqtibas-u'l-Anwar, op. cit., p.535-36
13. Mirat-u'l-Asrar, op. cit., p.1143
14. His name was Shaikh Ahmad and later he got the title of Nur-u'd-din and Nur-u'l-haq. He was the son and Khalifah of Shaikh Ala-u'l-Haq. He was a one of the famous Chishti Nizami Sufis of India. His simplicity and hard austerity was to such an extent that he used to give hot water and wash the clothes of the Sufis and

Darvish of his father's Khanqah as per their requirement. Shaikh Hisamu'd-Din Manikpuri's Malfuzat Rafiqou'l-Arifin has written that Shaikh Nur-u'l-Haq used to carry fuel in his Shaikh's Khanqah for eight consecutive years. Earlier, the work of cleaning the toilet was also entrusted to him. It is written in Shaikh's Malfuzat, that some people asked Shaikh, what is the secret of shaking hands (Musafaha) of Sufis after prayers? He replied that when a passenger comes back from the journey, he shakes hands with his acquaintance. And when Darvish offering the Namaz, he gets lost in it with a passion that he forgets himself as well, and when he finishes the Namaz, he realizes his presence. This is the reason why Sufis shake hands with each other after the Namaz. One of his Khalifah Shaikh Hisam-u'd-din, who became very famous Sufi and among his Khalifah also came to know the names of very famous Sufis, who established their Khanqah in Manikpur (during the reign of Sharqi dynasty, it was annexed into the Allahabad Suba during Akbar's time) of Awadh province and spread the Chishti Silsilah.

15. His Maktubat (letters) have also been compiled which throw a significant light on the Chishti practice of Bengal. According to the Akhbar-u'l-Akhyar, he died in 813AH/1410-11AD, but it is written in Mirat-u'l-Asrar that he took his last breath in 818AH/1416AD. His tomb remains a center of reverence for the devotees even today, near the tomb of his father in Pandua in Bengal.; Akhbar-u'l-Akhyar, op. cit., p.326-32; Mirat-u'l-Asrar, op. cit., p.1167-74; Shaikh Muhammad Ghausi Shattari Mandvi,Gulzar-i-Abrar, Urdu trans. Fazal Ahmad Jevri, Darul Nafais, Lahore, 1427 AH/ 2006 AD, pp.104-05
16. Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., p.30-33; Mirat-u'l-Asrar, op. cit., p.1143
17. Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., pp.37-39; Iqtibas-u'l-Anwar, op. cit., pp.559-60,; Mirat-u'l-Asrar, op. cit., pp.1144-45
18. Mirat-u'l-Asrar, op. cit., p.1145
19. Iqtibas-u'l-Anwar, op. cit., p.575
20. Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., pp.89-90; Mirat-u'l-Asrar, op. cit., p.1153
21. Mirat-u'l-Asrar, op. cit., pp.1153-54; Iqtibas-u'l-Anwar, op. cit., pp.574-75; Akhbar-u'l-Akhyar, op. cit., p.398; Khazinat-u'l-Asfiya, op. cit., p.278
22. His name comes in the dear disciples of Shaikh Ahmad. He also served for sometimes in the service of Firoz Shah. He was always present in the service of the Shaikh, even he used to bring both the meals for the Shaikh from his home, but Shaikh Ahmad never asked who you are and where you come from. When six months passed in this way, the Mukhlis felt in my heart that if I had done so much service even with a stone, I might have served my purpose. Immersed in this thinking, the Mukhlis reached his home. Shaikh Ahmad also followed him back to his house and Shaikh Ahmad said to Mukhlis, "What problem do you have with me, but Mukhlis remains absolutely calm." Mukhlis fed him and fell at his feet. Shaikh Ahmad returned to Khanqah. Mukhlis also followed behind. Shaikh Ahmad asked, do you have any children? Mukhlis said I have a son and a daughter. Shaikh said go get them married first and then come to me. Mukhlis did exactly that and came back again. After this, Shaikh made him his disciple and in a few days he joined Shaikh's favorite disciples. He died in Shaikh's life. The Khirqa given by Shaikh Ahmad was also buried with him in his grave.; Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., pp.94-102
23. Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., pp.96-97
24. Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., pp.123-24; Akhbar-u'l-Akhyar, op. cit., pp.398; Mirat-u'l-Asrar,

op. cit., p.1139

25. Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., pp.43-45
26. Ibid, pp.48-51
27. Mirat-u'l-Asrar, op. cit., p.1158; Iqtibas-u'l-Anwar, op. cit., p.584; Shaikh Wajih-u'd-din Ashraf, Bahr i-Zakhkhar, Urdu trans. Maulana Dr. Muhammad Asim Azmi, vol-1, Kamal Book Depot, Ghosi, 2018, p.595
28. Khazinat-u'l-Asfiya, op. cit., p.277
29. Chillah-i-Makus means that a man should tie a rope round his feet and suspending himself downwards in a well, worship God for forty days or forty nights.
30. Bahr i-Zakhkhar, op. cit.p.594
31. Khazinat-u'l-Asfiya, op. cit., p.275-76
32. Shaikh Jamal Gujjari Suharawardi was a disciple of Shaikh Muzaffar Balkhi or Salah Darvish but lived in the company of Shaikh Ahmad. They were very dear to Shaikh. They are called Jamal Auliya. It was his habit that he used to bring Khichadi on his head to the hungry. One day, Shaikh said that I traveled from Bhakkar to Pandua but I did not meet any Muslim but saw a child (Muslim) in Awadh and Shaikh pointed towards Jamal. When Shaikh Ahmad was staying in Awadh, he kept a bitch. One day he gave the bitch to the children; Shaikh gathered all the Umara(plural of Amir) of the city and had a dinner. Few days later, Shaikh Jamal met, and then Shaikh Jamal said. "Why did Shaikh food cooked at your house and I was not invited?" Shaikh replied that the feast was of a dog, so all the dogs of the city were called and if you are involved in such thing as I am, then how would you be invited to the feast of dogs. Shaikh Jamal had many eminent Khalifahs, including Shaikh Bhikha (Palhari village in Unnao), Shaikh Rajjab (Ram Diha village in Ambedkarnagar), Shah Haal and Shah Darvesh (Gorakhpur).; Akhbar-u'l-Akhyar, op. cit., pp.399-400; Anwar-u'l-Uyoon fi Asrar-u'l-Maqnun, op. cit., pp.19,41-42,; Mirat-u'l-Asrar, op. cit., p.1146; Bahr i-Zakhkhar, Vol-2, p.457

Email- daudi0408@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 32-34

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्री नरेश मेहता के उपन्यासों में मानवीय संवेदना

-Sujitha Lakshmi S.G.

Govt. College for Women, Vazhuthacadu, Trivandrum, Kerala
University of Kerala, Trivandrum

श्री नरेश मेहता भारतीय चिंताधारा को संपूर्णता में आत्मसात करने वाले महान रचनाकार है। आपके साहित्य में हमारे समाज का संपूर्ण पक्ष चित्रित हुआ है। आजादी के बाद विशेषकर वैज्ञानिक संसाधनों ने समाज के जिन पक्षों को प्रभावित किया उनमें मानवीय संबंध भी अछूते नहीं रहे। नारी जगत की शिक्षा और जागरण ने भी मानवीय संबंधों को प्रभावित किया उनमें मानवीय संबंध भी अछूते नहीं रहे। नारी जगत की शिक्षा और जागरण ने भी मानवीय संबंधों को प्रभावित किया। इस रूप में पारिवारिक संबंधों में भी व्यापक परिवर्तन दिखाई देता है। इन परिवर्तनों की गूँज मेहता जी के साहित्य में सर्वत्र परिलक्षित होती है।

आधुनिकता और अंधानुकरण की दौड़ में आज हमारे समाजिक और पारिवारिक संबंधों का भी बरबादी हो रहा है। एक ओर जहाँ लोग अपने परिवार से उस आत्मीयता से नहीं जुड़े रह पा रहे हैं वहीं इसका असर सामाजिक ताने बाने पर भी पड़ रहा है। स्वार्थ–लालच और अधिक से अधिक पा लेने की लालसा के चलते लोग अपने संबंधों को भी उसी मापदंड़ पर परख रहे हैं। रिश्तों के बनने–बिगड़ने का खेल भी इसी से तय हो रहा है। कौन किस के लिए कितना उपयोगी है यह सबसे अधिक मायने रखता है। इसी के चलते संबंधों की विश्वास भी ठंड़ी पड़ रही है। व्यक्ति समाज से पहले अपना सोच रहा है और उसका संपूर्ण कर्म अपने निहित स्वार्थों के इर्द–गिर्द ही घूमता रहता है। संबंधों में आया यह बदलाव श्री नरेश मेहता के उपन्यासों में भी मिल सकते हैं।

श्री नरेश मेहता जी अपनी रचनाओं में मानवीय संवेदना को विभिन्न परिप्रेक्ष्य में आँकने का प्रयास किया। मेहता जी के उपन्यासों में पारिवारिक विघटन को दिखाया गया है। समाज के अंदर अनेक सामाजिक समस्याएँ विद्यमान हैं। उन्हीं समस्याओं के कारण भी पारिवारिक विघटन का संकट पैदा होता है। प्रथम फाल्गुन, यह पथ बन्धु था, धूमकेतुः एक श्रुति उत्तर कथा खण्ड एक और दो उपन्यास में भी लेखक ने पारिवारिक विघटन और परिवार के सदस्यों के बीच के मनुमुटाव का चित्रण किया है। 'प्रथम फाल्गुन' उपन्यास में गोपा की पिता नाथबाबू द्वारा दूसरी शादी करने के पश्चात् श्रीमती नाथ और दूसरी पत्नी के बीच वैचारिक भिन्नता का चित्रण किया गया है। स्वार्थवृत्ति और सहनशीलता के अभाव में विघटित परिवार का चित्रण 'यह पथ बन्धु था' उपन्यास में मिल सकते हैं। 'यह पथ बन्धु था' उपन्यास के बारे में डॉ. कैलाश उपाध्याय का कथन है कि "दूसरी ओर श्रीधर के माता–पिता, पत्नी एवं बच्चे श्रीधर के चले जाने के बाद पूरा परिवार बिखर जाता है। दोनों भाई आपसी स्वार्थ के कारण घर से अलग हो जाते हैं। पूरा हरा–भरा संयुक्त परिवार तीन भाग में बँट जाता है।"[१] 'धूमकेतुः एक श्रुति' उपन्यास में भी लेखक ने संयुक्त परिवार टूटने का चित्रण किया है। मेहता जी ने यहाँ परिवार टूटने का मुख्य कारण बताए हैं – आर्थिक स्वार्थपरक दृष्टि और नियति का खेल।

नरेश जी की साहित्यिक रचना अपने देशकाल से अछूती नहीं है। अब समाज की अनेक सामाजिक समस्याओं में नाजायन संतान की समस्या भी बड़ी गंभीर समस्या मानी जाती है। 'प्रथम फाल्गुन' उपन्यास में नरेश जी ने गोपा के चरित्र के माध्यम से समाज में फैली नाजायन संतान की समस्या का वर्णन किया है। गोपा के पिता नाथबाबू यह जानते हैं कि गोपा उसकी बेटी नहीं है फिर भी सामाजिकता को बचाने के प्रयत्न करते हैं।

मेहता जी अपने समकालीन परिवेश से भलीभाँति परिचित रचनाकार हैं। अपने समय के हर बदलाव और उसके स्वरूप से वे अवगत हैं। बाल मनोविज्ञान का व्यक्त चित्रण मेहता जी ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। 'धूमकेतुः एक श्रुति' तथा 'नदी यशस्वी है' का बालक और मुख्य नायक उदयन अपने बालमानस में उठते सवालों से परेशान है। जीवन की छोटी–छोटी परिस्थितियाँ किस प्रकार बाल मन को प्रभावित करती है और उसके विकास को दिशा देती है। पुत्र के मानसिक प्रभाव की देन माता की देन है। इसका अभाव यहाँ व्यक्त करते हैं।

आज की युवा पीढ़ी अपने प्रेम को चाहे वह क्षणिक दो या दीर्घकालिक को लेकर इतनी संवेदनशील और व्यग्र है कि उसे पा लेने और न पा लेने के बीच के क्षणों को वह अपने जीवन–मरण का प्रश्न बना लेती है। वे कहते हैं कि पारिवारिक संबंध हो या सामाजिक रिश्ते–नातों में आज वो सरल और उदात्त प्रेम कहीं दिखाई नहीं देता। 'डूबते मस्तूल' नरेश मेहता का प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास में नायिका रंजना के माध्यम से आधुनिक मध्यवर्गीय नारी की समस्या चित्रण किया गया है। इसमें पिता–पुत्री संबंध, मित्रता के संबंध, विवाहेतर स्त्री–पुरुष संबंध आदि व्यक्त करते हैं। रंजना जिस उम्र में लड़कियाँ गुड्डियों का ब्याह रचती हैं, रंजना अपना ब्याह सैयद से रचाती है। यहाँ आधुनिक मानव के उपभोगवादी संस्कृति के कारण बढ़ती लालच का विकराल रूप प्रदर्शित कर रहे हैं।

'यह पथ बंधु था' उपन्यास में श्रीधर गाँव का होकर भी शहर की चमक–दमक और आधुनिकता के मोह में फँसकर माता–पिता और अपनी गाँव की पत्नी तक को भूल जाता है। अब उनके पास अपनों से बात करने के लिए विषय तलाशने पड़ते हैं। श्रीधर पारिवारिक संकीर्ण वातावरण को छोड़कर इन्दौर और बाद में काशी चला नाता है। अपने परिवार के टूटने की अवस्था में भी वह रुकता नहीं। यह एक विडम्बना से अधिक कुछ नहीं लगता। उपन्यास के अंत में वह मानव का इतिहास लिखने लगता है और लिखता है– "मानव युद्ध का पर्याय है। नीति, धर्म, अवतारी पुरुष, राजनीति, विज्ञान सब युद्ध भाव को, युद्ध कौशल को, विभिन्न नामों से विभिन्न युगों में संक्षिप्त करते आए हैं। इसलिए युद्ध हमारे रक्त, माँस, मज्जा का अनिवार्य, अविभाज्य अंग है।"[२]

वर्तमान पीढ़ी की नारियाँ शहरी चमक–दमक से आज प्रभावित हो रही हैं। उन्हें आधुनिक सुख–सुविधाओं से अत्यधिक लगाव होता है। इनके लिए वे गरीब नौजवान से ज्यादा अधेड़ उम्र के डॉक्टर, इंजीनियर से रोमांस और शादी भी करती हैं। भारतीय संस्कृति में विवाह प्रथा को धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग और जीवन का अभिन्न हिस्सा तक माना गया है। इसे पवित्र बंधन के रूप में स्थान दिया गया है। आदर्श, गृहस्थ जीवन के अनेक दृष्टांत और आदर्श स्थापित किये गये। लेकिन यह सब कुछ यदि वर्तमान परिदृश्य के संदर्भ में हम देखें को वही अंतर मिलेगा जो आदर्श और यथार्थ के बीच में पाया जाता है।

चारित्रिक पतन ने पुरुष और स्वच्छंदता की आकांक्षा ने स्त्री के जीवन और उनके आदर्शों में परिवर्तन ला दिया है। यहाँ वैवाहिक जीवन में पति–पत्नी के बीच संघर्ष, विवाह के लिए दहेज लोभी माता–पिता, बने–बनाये खांचों और रूढ़ परंपराओं से बाहर निकलती स्त्री द्वारा किये जा रहे अंतर्जातीय विवाह और अविवाहित स्त्री द्वारा विवाह पूर्व संबंध बनाने की पश्चिमी संस्कृति और उसमें अपनी आजादू ढूँढ़ती मॉर्डन युवती भी है। 'दो एकान्त' उपन्यास के दोनों

पात्र–विवेक और वानीरा की मानसिक स्थिति में जो द्वंद्व चल रहा है वह वस्तुतः दाम्पत्य जीवन की अपेक्षा और उपेक्षा के कारण उत्पन्न हुई है। दोनों परस्पर स्नेह और विवाह से जुड़े हुए हैं। किन्तु स्नेह से वंचित वानीरा को मनःस्थिति बदल गयी। विवेक की मनरूस्थिति उसकी सोच से झलक रही है– "कितना अच्छा होता कि क्लाइड़ से परिचय तक न होता, तब वे डिब्रूगढ़ न जाते और डिब्रूगढ़ न जाते तो मेजर आनंद से परिचय न होता और तब न इलाहाबाद आते। कितना बदल गया है सब। वानीरा आज कितनी दूर हो गयी है, क्या पूरी में ऐसा थी? क्या फिर भी नैकदय संभ है?"[३]

संक्षेप में कह सकते हैं कि नरेश मेहता ने उपन्यासों में समग्रतया मानव जाति की सभी संवेदनात्मक वृत्तियों का आकलन भिन्न–भिन्न चरित्रों के माध्यम से प्रकट किया है। लेखक स्वयं कवि हृदय होने के परिणाम स्वरूप उनके उपन्यासों में उजागर संवेदनात्मक अनुभूति आम पाठक के हृदय पर गहरा प्रभाव डालती है।

संदर्भ :-

१. डॉ. कैलाश उपाध्याय – नरेश मेहता के उपन्यासों में चरित्र – सृष्टि, पृ.सं. ७५
२. श्री नरेश मेहता – यह पथ बंधु था, पृ.सं. ५६४
३. नरेश मेहता – दो एकान्त, पृ.सं. १४७

Address W/o Harsharardhana Kumar-V-R
Haridwara
Near Railway Station] Edacadu]
Nemom P-O-] Tvpm – 695 528
Kerala
Mobile No & 6282070586
Whats app & 6282070586

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 35-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

द्रोणवीर कोहली के उपन्यास 'चौखट' में बदलते सांस्कृतिक मूल्य

-Dr. Sajitha J,

Asst. Professor (Hindi), Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Coimbatore, Tamilnadu.

1. संस्कृति की अवधारणा और स्वरूप :-

''संस्कृति वह समष्टि है, जो किसी जाति, समाज या देश के उद्देश्यों एवं आदर्श को निश्चित करती है। यह मन संस्कार और जीवन को परिष्कृत, शुद्ध एवं पवित्र बनाती है।''[1]

किसी समाज, राष्ट्र व देश की श्रेष्ठतम उपलब्धियों को संस्कृति कहा जाता है। ''भारतीय संस्कृति की धारा वैदिक काल से लेकर आज तक सत्ता प्रवाहित हुई है। इसकी गति में व्यवधान आया है और न ही यह क्षीण हुई है। आगम, बौद्ध, जैन, नाथ, द्रविड़, आभीर, मुस्लिम, अंग्रेज़ी आदि कितनी ही संस्कृतियों का संगम एवं टकराव इससे हुआ है। लेकिन संस्कृति की धारा अन्य संस्कृतियों के सम्मिश्रण पर भी अपना स्वरूप बनाए हुए है।''[2]

दूसरी संस्कृतियों से प्रवाहित होकर भी इसमें अंतर नहीं आया है। इसकी पवित्र पावनी नदी इतनी प्रबल है कि बरसाती नदी नाले के रूप में निजी अन्य संस्कृतियों को भी स्वच्छ करके अपना गांगेय प्रदान किया है। वे सभी इसी में मिलकर भारतीय संस्कृति के रूप में एकाकार हो गई हैं।

2. संस्कृति की अवधारणा और स्वरूप :-

संस्कृत भाषा में 'सम्' उपसर्ग तथा 'कृ' धातु के योग से संस्कृति शब्द निष्पन्न हुआ है। जिसका मूल अर्थ साफा या परिष्कार करना है। आधुनिक युग में संस्कृति शब्द को अंग्रेज़ी के कल्चर शब्द का पर्याय मान लिया गया है।

संस्कृति क्या है? इस बिन्दु पर अनेक विद्वानों–विचारकों ने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से विचार–मंथन, चिंतन–मनन किया है परंतु कोई भी विद्वान संस्कृति की अवधारणा को, इसके स्वरूप को भली–भाँति स्पष्ट नहीं कर पाया है। वैसे भी भारत सांस्कृतिक रूप से संपन्न देश है। यहाँ रंग, वेश, भाषा, गायन–वादन, आचार–विचार, मंदिर–मस्ज़िद, रहन–सहन आदि की विभिन्नता होते हुए भी भारत एकता के सूत्र में बंधा हुआ है। इस विभिन्नता को एकता के सूत्र में बांधने वाली 'संस्कृति' है। संस्कृति देशज होती है। इस कारण भारतीय संस्कृति की भी अपनी विशेषता है। देशों की सभ्यता समान हो सकती है, धर्म भी समान हो सकता है, लेकिन संस्कृति हमेशा भिन्न होगी।''[3]

भारत में प्राकृतिक एवं भौगोलिक भिन्नता के साथ–साथ संस्कृति के अनेक रूप मिलते हैं। जैसे – उत्तर भारत की संगीत एवं नृत्यकला, दक्षिण भारत से भिन्न होगी। बृज बिहारी निगम के शब्दों में – ''संस्कृति किसी भी देश की विशिष्ट काल की जीवन पद्धति, उसके आदर्श तथा उनके प्राप्त करने की विधियां एवं इस प्रक्रिया में होने वाले बाह्य एवं आंतरिक परिवर्तनों का लेखा–जोखा है। जीवन की समग्रता का धर्म, दर्शन साहित्य, कला, स्थापत्य, विज्ञान, सामाजिक व्यवहार आदि में प्रगतिशील आदर्शों का अध्ययन संस्कृति कहलाता है।''[4]

संस्कृति के विकास में आदान–प्रदान का भी महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि पारस्परिक संपर्क से ही संस्कृति का विकास होता है। भारत की संस्कृति इसका प्रमाण है। भारत में अनेक जातियाँ आईं, जिनके संपर्क में भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ। ग्रहणशीलता भारतीय संस्कृति की विशेषता है, अतः संस्कृति सामूहिक होती है और एक समूह ही इसके स्वरूप का निर्माण करता है, अकेला व्यक्ति नहीं।

3. संस्कृति की परिभाषाएँ :-

संस्कृति एक व्यापक जटिल शब्द है। इसकी सर्वमान्य परिभाषा देना अत्यंत दुष्कर कार्य है। वस्तुतः जो शब्द या विषय अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है, उसकी व्याख्याएँ और परिभाषाएँ भी अनेक प्रकार से की जाती है। जितने भी व्यक्ति उस पर विचार–मनन करते हैं, उतनी ही उसकी परिभाषाएँ होती जाती हैं। भारतीय वाङ्मय में संस्कृति को अतिपुरातन में ही सर्वप्रथम संस्कृति की सविस्तार व्याख्या होती है। ऐसी विशिष्ट संस्कृति का भारतीय विद्वानों ने इस प्रकार शब्दांकित किया है –

3.1. भारतीय विचारक :-

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार – ''जीवन की विभिन्न और घनिश्ठ समस्याओं पर हुआ चिंतन और उसकी अभिव्यक्ति ही संस्कृति है।''

राहुल सांस्कृत्यायन के अनुसार – ''एक पीढ़ी आती है, वह अपने आचार–विचार, रुचि–अरुचि, कला–संगीत, भोजन–छाजन या किसी और दूसरी आध्यात्मिक धारणा के बारे में कुछ स्नेह की मात्रा अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाती है। इस पीढ़ी के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी और आगे बहुत सी पीढ़ियाँ आती–जाती रहती हैं और सभी अपना प्रभाव या संस्कार अगली पीढ़ी पर छोड़ती जाती हैं। यही प्रभाव (संस्कार) संस्कृति है।''[5]

डॉ. गुलाबराय के अनुसार – ''यद्यपि संस्कृति का मूल आधार मानवता है, तथापि देश–विशेष के वातावरण की विशेषता के कारण वह उस देश के नाम से जैसे–भारतीय संस्कृति, ईरानी संस्कृति अंग्रेज़ी संस्कृति आदि नामों से विहित होने लगती है। संस्कृति का एक ही मूल उद्देश्य मानते हुए भी हम यह कह सकते हैं कि संस्कृति देश–विशेष की उपज होती है, उसका संबंध देश के भौतिक वातावरण और उसमें पालित–पोषित एवं परिवर्तित विचारों का होता है।''[6]

रामधारीसिंह 'दिनकर' के अनुसार – ''संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।''[7]

रवीन्द्रनाथ के मतानुसार – ''संस्कृति मस्तिष्क का जीवन है।''[8]

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार – ''संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है। संस्कृति मानवीय जीवन की प्रेरक शक्ति है। वह जीवन की प्राणवायु है, जो उसके चैन्यभाव की साक्षी होती है। संस्कृति विश्व के प्रति अनन्त मैत्री भाव की भावना होती है।''[9]

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – ''संस्कृति मानव–जीवन की अवस्था है जहाँ उसके प्राकृत राग–द्वेषों का परिमार्जन हो जाता है।''[10]

गौरीशंकर भट्ट के अनुसार – ''मनुष्य के लौकिक, पारलौकिक, सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचार–विचार ही संस्कृति है।''[11]

3.2. पाश्चात्य विचारक :-

ई.वी. टेलर के अनुसार – ''संस्कृति एक जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं का समावेश है, जिन्हें कि मनुष्य समाज के सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।''12

बेकन के अनुसार – ''संस्कृति को मानवता का वह प्रयत्न कहा जा सकता है, जिसमें वह अपने आंतरिक स्वतंत्र अस्तित्व को प्रभावपूर्ण ढंग से स्थापित करती है।''[13]

जेम्स हैस्टिंग्स के अनुसार – ''संस्कृति मानव के आध्यात्मिक जीवन के विविध पक्षों को प्रकाशित करती है। इसमें देश विशेष की विभूतियों के गहनीय विचार और भावनाएँ निहित रहती हैं।''[14]

फिलिप बैम्बी के अनुसार – ''मानव–व्यवहार के समस्त विशिष्ट रूप संस्कृति के अंतर्गत आ जाते हैं। व्यवहार आन्तरिक भी हो सकते हैं और बाह्य भी।''[15]

हर्सकोविट्ज के अनुसार – ''पर्यावरण का मानवकृत अंग ही संस्कृति है।''[16]

क्रोबर के अनुसार – ''प्रत्येक व्यक्ति इससे सहमत है कि संस्कृति में पद्धति में ढले हुए अथवा चुने हुए व्यवहार–रूपों, प्रतिमानों और मूल्यों–संबंध, विचारों तथा उनकी अभिव्यक्ति करने योग्य व्यवहार–पद्धतियों का प्रवाह तो निश्चय ही सन्निविष्ट रहता है।''[17]

विद्वानों द्वारा दी गई उपर्युक्त परिभाषाओं पर दृष्टिपात करने के उपरांत कहा जा सकता है कि ''संस्कृति मानव के गतानुगातिक संस्कारों का वह सफल रूप है, जिससे उसके सामाजिक आचार–विचार, पर्व–त्यौहार, रहनी–करनी, रीति–रिवाज़, नीति–धर्म, अध्यात्मिक–कला आदि की प्रतीती होती है। संस्कृति मानव की एक तरफा तो विद्यायिका है और दूसरी तरफ परिचायिका भी। समुन्नत और सौन्दर्यमयी संस्कृति, समुन्नत स्वस्थ एवं सुन्दर समाज की सर्जना करती है।''[18]

3.3. संस्कृति और सभ्यता :-

संस्कृति और सभ्यता का चोली दामन का साथ होता है। साधारण बोलचाल की भाषा में तो दोनों शब्द ऐसे घुल मिल जाते हैं कि इनको अलग करने का प्रयत्न ही व्यर्थ हो जाता है। फिर भी विचारकों के मतानुसार दोनों में काफी मतभेद है। संस्कृति आंतरिक और सभ्यता बाह्य होती है। वस्त्र, भोजन, यान मोटर आदि सब सभ्यता के उपकरण हैं। किंतु इनके प्रयोग की रीति में संस्कृति निहित होती है। संस्कृति बौद्धिक विकास की अवस्याओं को सूचित करती है और सभ्यता के परिणामस्वरूप शारीरिक एवं भौतिक विकास होता है। संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से है। ''डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने सभ्यता को समाज की बाह्य व्यवस्था का और संस्कृति को मानव के अन्तर के विकास का नाम दिया।''[19]

संस्कृति को अंग्रेज़ी में 'कल्चर' कहते हैं। इसके अंतर्गत मानवीय ''रीति–रिवाज़, लोक–विश्वास, आदर्श कलाएँ तथा मानवीय कौशल व योग्यताएँ आती है। सभ्यता को अंग्रेज़ी में 'सिविलाईजेशन' के नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत मानव के सामाजिक गुण एवं बाह्य गुण वैभव आता है। यह एक साधन समझी जा सकती है। कई बार संस्कृति और सभ्यता को एक ही मान लिया जाता है, जो उपयुक्त नहीं है। किसी भी देश की संस्कृति के द्वारा वहाँ की जनता के रहन–सहन की जीवन शैली, विचारधारा आदि का पता लगता है। जबकि सभ्यता किसी देश की जाति विशेष के वैभव एवं उनके सामाजिक गुणों की पहचान करती है। संस्कृति आदान–प्रदान द्वारा ही पल्लवित होती है। एक जाति का धार्मिक रिवाज दूसरी जाति का रिवाज बन जाता है और एक देश की आदत दूसरे देश की आदत बन जाती है।''[20]

4. संस्कृति और समाज :-

मानव, समाज और संस्कृति अन्योन्याश्रित है। मानव समाज की इकाई है और समाज का आधार अथवा अस्थिपिंजर है। समाज के ढांचे पर ही संस्कृति का महल सुशोभित होता है। समाज की सभा मान्यताएँ, व्यवहार, आदर्श, नियम आदि कालान्तर में संस्कृति बन जाते हैं। उन्नत समाज में ही संस्कृति पनपती है। संस्कृति एक मनुष्य की मलिकयत नहीं होती है। अतः समाज किसी भी देश विदेश का महत्वपूर्ण आधार होता है। समाज में प्रचलित सभी नियम, उपनियम संस्कृति के मुख्य तत्व होते हैं।''[21]

5. संस्कृति और धर्म :-

संस्कृति एक व्यापक शब्द है, जिसमें धर्म, समाज, नीति, राजनीति, दर्शन, साहित्य परंपरा, मानवीय मूल्य आदि अनेक तत्व समाये होते हैं। इसलिए धर्म किसी संस्कृति का एक अंग होता है। धर्म का आधार विभिन्न शास्त्र होते हैं। जबकि संस्कृति का आधार समाज में प्रचलित विभिन्न रीतियाँ और नीतियाँ धर्म का आत्मा परमात्मा से अधिक होता है। मनुष्य और इहलोक से कम, जबकि संस्कृति का सम्बन्ध में रहने वाले मानव कुछ धार्मिक नियमों का पालन करते हैं। वे धार्मिक नियम ही कालान्तर में हमारी संस्कृति बन जाते हैं। मोटे शब्दों में संस्कृति का क्षेत्र बहुत व्यापक है और धर्म उसकी एक इकाई है।

6. संस्कृति का उद्देश्य :-

भारतीय संस्कृति का मूलाधार मुख्यतः वैदिक संस्कृति रही है। भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक तत्वों का विशिष्ट महत्व है। भारतीय संस्कृति कुछ उद्देश्य को लेकर अपने साथ चली है। भारतीय संस्कृति का मूलभूत उद्देश्य मानव को सभ्य और संस्कारशील बनाना है, क्योंकि जो मानव इन गुणों से हीन होता है, वह वास्तव में मानव कहलाने योग्य नहीं होता। किसी भी जाति को पवित्र रूप देना संस्कृति के अन्दर ही आता है। संस्कृति का अति महत्वपूर्ण उद्देश्य मानव के उच्च आदर्शों की स्थापना करना भी है। संस्कृति ही सद्‌गुणों को जन्म देती है। प्रत्येक संस्कृति में जीवन जीने की प्रेरणा होती है। किसी भी देश की संस्कृति उस देश के लोगों की विचारधाराओं और कार्य व्यवहार का स्पष्ट चित्रण होती है।

7. भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ :-

भारतीय संस्कृति को विश्व की प्राचीनतम संस्कृति माना जाता है। इसने अनेक देशों की संस्कृति के उद्‌भव और विकास को देखा है, जो आज भी ज्यों–की–त्यों है। कालांतर में भी इसे ज्यों–का–त्यों रखने वाले कुछ तत्व है वे इसमें सदा रहे हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं।

7.1. आत्मीय की भावना :-

संस्कृति–मर्मज्ञ योगिराज अरविन्द ने आध्यात्मिकता को भारतीयता की मुख्य कुंजी कहा है। सभी मानव उस एक परमात्मा की संतान हैं। अध्यात्म का आदि स्रोत वेद है। जो कि मानव की नैतिक मान्यताओं को भी एक दिशा देते रहे हैं। अतः आत्मीय की भावना भारतीय संस्कृति में स्थान रखती है।

7.2. समन्वय की भावना :-

आर्य संस्कृति का ध्येय विश्वबन्धुत्व की भावना है। समन्वयवाद भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है, जो कि उदारता के गुणों से परितृप्त है। इसी भावना के कारण भारतीय संस्कृति जीवित है। भारत में विभिन्न जातियाँ आई। भारतीयों ने उन्हें अपने अनुसार और स्वयं उनके अनुसार ढालकर प्रत्येक जाति से समाजसत्ता स्थापित की।[22]

भारतीयों ने इस्लाम धर्म से समन्वय कर उनके देवी–देवताओं रहीम और करीम की पूजा करनी शुरु कर दी और मुसलमानों ने भी देखी–देखी राम और कृश्ण को अपना आराध्य देव मान मस्जिद के साथ–साथ मंदिर जाना शुरु कर दिया। इसलिए तो डॉ. मदन गोपाल गुप्ता जी ने भारतीय संस्कृति को अपूर्णत्व से पूर्णत्व की ओर अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा मृत्यु से अमरता की और ले जाने वाले प्रयासों का समन्वित रूप कहा है।[23]

7.3. सांस्कृतिक अध्ययन में विश्व-बन्धुत्व की भावना :-

आर्य संस्कृति को ध्येय बन्धुत्व की भावना है। भारतीय संस्कृति में मानव मात्र की कल्याण भावना निहित है। यहाँ जो कुछ भी कार्य होते हैं वे सदैव बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय की दृष्टि से ही होते हैं। ये विचार भारतीय संस्कृति के आदर्श विचार रहे हैं। इनके मूल में 'वसुदैव कुटुम्बकम' की पवित्र भावना निहित है। यह वसुधा को ही कुटुम्ब मानकर चलती है। भारत के अनेक संतों, मुनियों और राजनीतिक नेताओं की दृष्टि में भी विश्व के सभी मानव एक से रहे हैं। आधुनिक युग में राजाराम मोहनराय, विवेकानन्द, रामतीर्थ, महात्मा गाँधी कुछ ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने सारे विश्व को ही परिवार माना है और सबको एक परिवार की तरह रहने की प्रेरणा दी है।[24]

7.4. निष्काम कर्म पर बल :-

भारतीय संस्कृति में मानव को विधाता के हाथों का खिलौना माना गया है। 'गीता' आदि धार्मिक ग्रंथों में मानव जीवन का उद्देश्य ही निष्काम कर्म करना माना है। कर्म करना ही मानव के लिए कल्याणकारी है। अतः निष्काम कर्म भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है। इसके मूल में ईश्वर विश्वास की एवं मानव विकास की भावना निहित है।

इसके अतिरिक्त आपसी प्रेम को बढ़ावा देने के साथ–साथ विद्वानों के आदर पर बल देती है। मनुष्य में शिष्टाचार को एक गुण मानती है।[25]

समकालीन भारतीय समाज तीव्र संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है। परिवर्तन की आँधियाँ कई दिशाओं से आ रही

हैं – एक और आधुनिकीकरण की अनिवार्यता है, दूसरी ओर परंपरा के आग्रह में। पश्चिम की आर्थिक और तकनीकी सहायता अपने साथ वहां की जीवन–शैली और नये मूल्य ला रही है, जिन्हें अपनी जड़ से कटे भारतीय आधुनिकता समझकर बिना तर्क से अपना रहे हैं। अंध अनुकरण ने एक नयी चिंता को जन्म दिया है–अपनी अस्मिता और पहचान खोकर एक आकृतिहीन भीड़ की गुमनामी में खो जाने की। प्रगति और परंपरा के समन्वय के जो प्रयत्न हुए हैं उनके अधिकांश परिणाम हास्यास्पद रहे हैं, न हम भारतीय रह गये है, न हम सच्चे अर्थों में आधुनिक हुए हैं। छद्म भारतीयता पर हमने छद्म आधुनिकता का लबादा ओढ़ लिया है और अनेक भ्रमों को पालते हुए एक गंतव्यहीन यात्रा पर निकत पड़े हैं। स्थिति और भी उलझन भरी उस समय होती है, जब हमें यह अनुभव होता है कि परंपरा के पास आज के समाज की सभी समस्याओं के हल नहीं हैं और न आधुनिकता के कार्यक्रम में ऐसी शक्ति है कि वह परंपरा की अवहेलना कर समाज को आगे बढ़ा सके। हम आधुनिकता के दलदल में फँस गये हैं और सार्थक विकल्पों की खोज के मार्ग को अवरोधित पाते हैं। हमारे सांस्कृतिक लक्ष्य और साधन दोनों एक बाद दूसरे चक्रवात में फँसकर झटके खा रहे हैं। यही है आज के संक्रमण की पीड़ा।

8. उपन्यास में बदलने सांस्कृतिक मूल्य :–

बदलते सांस्कृतिक परिवर्तन और परिवेश तथा परिस्थिति का चित्रण द्रोणवीर कोहली के 'चौखट' में भी है। जैसे प्रस्तुत उपन्यास में एक जगह बारिश रुकने के इंतजार में सुमित्रा, मनोहर और लेखक की बातचीत में एक विषय आता है सार्थ और सिमोन के स्वच्छन्द प्रेम विवाह प्रथा। वास्तव में यह भारतीय संस्कृति के आदर्श के अंतर्गत यह एक आश्चर्यजनक बात है। शारीरिक स्वच्छंदता हमारे यहाँ विवाह के बाद का कार्य है। आगे चलकर सुमित्रा शादी और सेक्स जैसे विषय पर अपना जो विचार व्यक्त करती है वह पूरी तरह बदलते सांस्कृतिक रूप का चेहरा है। मन में किसी प्रकार का निषेध रखते हुए उन्होंने कहा कि वह विवाह–प्रथा के सख्त विरुद्ध है। सुमित्रा बोली थी – ''अवांछित सेक्स का जितना बोझ विवाहित स्त्री को बरदाश्त करना पड़ता है? उतना वेश्याकार्य करने वाली स्त्री को भी नहीं। सप्तपदी ऐसा धर्मानुष्ठान या औपचारिकता नहीं है कि पति–पत्नि में मनस्ताप को जन्म दें। और फिर वह विवाह को आत्मत्याग की संज्ञा दी है।''[26]

वास्तव में सप्तपदी और विवाह बंधन की जो महत्ता अपने भारतीय संस्कृति में है वह अपने संपूर्ण जीवन को ही सुखी बनाने की एक व्यवस्था है। पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप भारतीयों पर उसका कितना गहरा प्रभाव पड़ रहा है उसका यह ज्वलंत उदाहरण है।

मनुष्य की भावनाएँ जब तीव्र होती है तब वह अपने आप को रोक नहीं पाता और उससे कोई प्रसाद हो जाना स्वाभाविक है। परंतु इस तरह के प्रमाद को अपने पति के सामने कहना यह सिर्फ खुली विचारधारा ही नहीं बल्कि यह ऐसे परिवेश के अधीन होती दिखाई देती है जो हज़ारों वर्ष की अपनी संस्कृति नहीं देती। चौखट की नायिका का मनोगत काफ़ी मज़बूत है यह उस प्रसंग से पता चलता है कि सुमित्रा अपने पति से स्पष्ट बता चुकी थी कि लेखक के साथ उसके शारीरिक संबंध थे। और एक बा रवह गर्भपात भी करवा चुकी है, मातृत्व धारण भारतीय संस्कृति में स्त्री जीवन में आनेवाला एक सुखद क्षण है। परंतु विवाह पूर्ण गर्भधारण और मनचाहे तब उस गर्भ को अपने से हटाना शायद स्त्री संस्कृति की विशेष विचार को साबित हो सकती है। और है भी। परंतु सुमित्रा इस प्रसंग से परिवर्तित संस्कृति आचार–विचार के अधिक हुए उन समस्त स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है।

संक्रमण एक ऐतिहासिक प्रतिष्ठा है। उसका हमेशा दुःखदायी होना आवश्यक नहीं है। परिस्थिति परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्यता बन जाती हैं। मंद गति से होनेवाला अनुकूल समाज की निरंतरता के प्रभावित नहीं करता, सच तो यह है कि उसके बिना सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक मूल्य दोनों के विघटित होने का खतरा होता है। परिवर्तन को प्रेरित करने वाले अनेक कारण हो सकते हैं, नयी आवश्यकताएँ, सुरक्षा की पर्याप्त और विश्वसनीय व्यवस्था, अत्यधिक श्रम और एकरसता कम करने वाली सुविधाएँ नये प्रत्यक्षदायक उपादान आदि। ऐसे परिवर्तन संस्कृति

के आधार विश्वास तथा मान्यताएँ तुलनात्मक रूप से अनन्य होती है। उनमें परिवर्तन होता है परंतु समय लेता है। एक विशेष बात यह है कि अन्य संस्कृतियों के कुछ तत्व और नवाचार उनकी गुणवत्ता के आधार पर अपनाये जाते हैं। कभी–कभी उनके नयेपन और प्रतीक के लिए भी। यहाँ यह आवश्यक है कि परिवर्तन किसी पर भी थोंपा नहीं जाना चाहिए। वह उसके केंद्रीय मूल्यों से टक्कर न ले और समाज को अपनी गति से अन्य सांस्कृतिक तत्वों को आत्मसात करने का अवसर हो। इस प्रक्रिया में संस्कृति उन्हें अपने साँचे में ढाल लेती है और इस तरह उनकी उपयोगिता भी बढ़ा लेती है।

सुमित्रा ने जब लेखक को खत लिखा था तो उसमें दिल्ली शहर की वास्तविकता का उल्लेख करती है कि वहाँ अगर हम अपनी बहन के साथ भी कहीं जा रहें हो तो लोग उंगली उठाने से बाज नहीं आयेंगे। इतना ही मनोहर के साथ बिताये गये समय में सुमित्रा के साथ रतिक्रीड़ा की बात को सुमित्रा अपने कॉलेज जीवन में घटित घटना को याद कर लेती है और लिखती है – ''मनोहर को वैसा ही पाया जैसा वह प्रोफ़ेस करता था। जम जायेगी।''[27] यहाँ सुमित्रा के व्यक्तित्व का एक विशेष पहलु पाठक के सामने आता है वह है उसका सच्चाई बताने का धाड्स जो बिना शर्माहट के बीती बातों को या अपने साथ घटित घटनाओं का बखान करना।

भारतीय महिला हमेशा से बुरी लतों से दूर रही है कुछ एक अपवादों को छोड़कर कहाँ जाये आदतों के अधीन अधिकतर पुरुष रहे है। परंतु बदलते विचारधारा और विदेशी संस्कृति के मेल मिलाप ने सबको अपनी चपेट में घेर लिया है। अब खास किसी एकाध आदत को सिर्फ़ स्त्री के नाम पर लादना लगत साबित होगा। एक उदाहरण है चौखट उपन्यास की पात्र सुमित्रा। सुमित्रा को सिगरेट पीने की लत लगी है। क्योंकि उस पर न्यूज़रीडर बनने की छवि संवार थी। अब सवाल यह उठता है कि क्या न्यूज़रीडर बनने वाले किसी लत के अधिक होते है। अब अंदाजा यह लगा सकते है कि वह एक अलग किस्म का काम है। तो कभी–कभी ऐसा होता है कि काम के अनुसार मनुष्य की आदतें होती है।

हम देख रहे है कि आज देश में अनेक विघटनकारी शक्तियाँ हमारी सांस्कृतिक नींव पर हमला कर रही है। देश की भाषा तो कुछ हद से ज़्यादा ही प्रभावित दिखाई दे रही है। आज देश में फैली अप–संस्कृति और उसकी विकृतियाँ अधिकांशतः समृद्ध लोगों तक समित हैं, पर इनका विषय धीरे–धीरे लोक संस्कृतियों और भाषा पर भी अधिक तीव्रता से फैल रहा है। वैसे सुमित्रा पढ़ी–लिखी है परंतु कही–कही जगह पर उसके रहन–सहन के साथ भाषा में भी अश्लीलता आ चुकी है। जब एक दिन दिल्ली शहर घूमकर देर रात ग्यारह बजे घर पहुँचे। घर आते ही वह सोफे पर निढ़ाल होकर पड़ी गयी तब राजी ने कहा था – ''कपड़े बदल लो।'' तो प्रत्युत्तर देते हुए सुमित्रा बोली ''ओह, फ़क इट।'' वास्तव में भारतीय सुसंस्कृत नारी इस तरह के शब्दों का प्रयोग शायद ही करती होगी। परंतु आज इसमें बदलाव आ रहा है। इस तरह की बातें पति, प्रियकर या अपने कम उम्रवालों के सामने करने में लज्जा नहीं आती।

श्यामचरण दुबे के अनुसार – ''भारतीय समाज इस समय संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है। इस प्रक्रिया की गति बहुत तेज़ है और उसके परिणाम बहुत विघटनकारी हैं।''[28] इसका ज्वलंत उदाहरण हम चौखट में पाते हैं। सुमित्रा का और मनोहर 'मधुप' का आपसी पति पत्नी के रिश्ते में दरारे आना यह मनोहर से भी सुमित्रा के जीवन में काफ़ी बदलाव से आया है। वैसे तो दोनों स्वच्छंद विचारवादी धारा के हैं। जब अलग हो ही गये तो सुमित्रा को अब किसी की भी फिकर नहीं रही अंग्रेज़ी भाषा के अश्लील शब्द बिना किसी हिच–खिचाहट के उसकी जबान से आते है जैसे 'फ़क' शब्द का इस्तेमाल उपन्यास में कहीं जगह पर कई संदर्भों में मिलता है।

मनोहर से बिछुड़ने के बाद सुमित्रा 'दे' से दिल्ली चली आती है। संपूर्ण उपन्यास में सुमित्रा और मनोहर का शहर सिर्फ 'दे' शब्द से ही उल्लेखित हुआ है। वहाँ से वह अपने मित्र जिसके साथ उसने आगे की सारी जिन्दगी बिताई उसका एकाध दो जगह पर राजी नाम का उल्लेख मिलता है। शायद यह वह लेखक ही है जिसने 'मधुप' का रोजनामचा हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसके साथ बिताये गये दिनों में कहीं–कहीं अश्लीलता दिखाई पड़ती है। जैसे बाथरूम का दरवाज़ा आधा खुला छोड़कर नहाने जाना या अपने अंदर पहनने वाले पोशाक को माँगना या खुले में आलिंगन चुंबन के

प्रसंग यह सारे बदलते सांस्कृतिक मूल्यों को दर्शाती है जो सुमित्रा के चरित्र से उपन्यास में चित्रित हुआ है।

आज हम देख और समझ भी रहे है कि अपनी ही संस्कृति पर नये सिरे से विचार करना आरंभ हो चुका है। इस विचार–प्रक्रिया का एक भाग है परंपरागत और रूढ़ सांस्कृतिक की आमछवि, जो अपने चारों ओर लगे प्रश्नचिह्नों के बावजूद पराजय स्वीकार नहीं करती है। बदलते सांस्कृतिक मूल्यों के अंतर्गत प्रस्तुत अध्याय में सुमित्रा का एक और व्यवहार हमें निर्दयी लगता है। जब मन एक तरफा उदास होता है कि किसी के जीवन से दूर किसी मनुष्य का जाना कितना वेदनामय होता है। परंतु जब कोई मनुष्य दुनिया से चला जाय तो और भी वेदनाओं का समंदर ही उमड़ता है। ऐसे भारतीय संस्कृति, या रीति–रिवाज़ परंपरागतज मान्यताओं के अनुसार अगर स्त्री के जीवन से उसके पति का जाना अधिक मायने रखता है। चाहे पति–पत्नी साथ हो या किसी कारणवश संबंध बिछड़े हो। एक समय ज जीवन की सुखद घड़ी के क्षणों में सुख–दुःख की बातें आपस में बाँटकर जीवन जीनेवाले अगर बिछड़ जाते हैं तो उसमें कितना कड़वाहट उत्पन्न होता है यह हम सुमित्रा के चरित्र से देख पाते है। जीवन के अंतिम दिनों में जब मनोहर 'मधुप' सुमित्रा और उनके बच्चों को देखने आता है तो आने की खबर पाकर भी वह घर से चली जाती है।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद मनोहर इस दुनिया से चले जाते हैं। रात के वक्त फोन पर खबर पाकर सुमित्रा सपास ऐसी ही सो जाती है। पूछने पर भी कोई जल्दी जवाब नहीं देती। दिल्ली में 'दे' चलने की किसी तरह की जल्दी नहीं करती है। इतना ही नहीं चेहरे पर किसी तरह का दुःखद भाव भी प्रकट नहीं करती है। बच्चों को साथ लेकर चलती है मगर आधे रास्ते तक कारण भी नहीं बताती की उनके पिता का निधन हुआ है। इनकी कठोर मानसिकतावाली सुमित्रा का चित्रण उपन्यास के उत्तरार्द्ध में मिलता है।

एक विशेष बात यह भी हो सकती है कि इस तरह की मानसिकता के पीछे कोई कारण भी तो होगा और ज़रूर है। वह बुरी नहीं है परिस्थिति और परिवेश के कारण सुमित्रा का मन उस तरह बन चुका था जो अब अपरिवर्तनीय सा लगता है।

संदर्भ :–

1. डॉ. वीरेन्द्र वर्मा–हिन्दी साहित्य कोष–पृ. 801
2. कल्याण (हिन्दू संस्कृति अंक–जनवरी 1950) – पृ. 24
3. गुरुदेव श्री श्रवण मुनि स्मृति ग्रंथ में संस्कृति का स्वरूप शीर्षक लेख, पृ. 246
4. संस्कृति एवं सभ्यता : भारतीय दृष्टिकोण – पृ. 9
5. राहुल सांस्कृत्यायन – बौद्ध संस्कृति – पृ. 3
6. डॉ. गुलाबराय – भारतीय संस्कृति, पृ. 3–4
7. दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय – पृ. 53
8. The Centre of Indian Culture – P. 15
9. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल – साहित्य और संस्कृति, भूमिका, पृ. 5
10. डॉ. नगेन्द्र – साकेत : एक अध्ययन, पृ. 100
11. गौरीशंकर भट्ट – भारतीय संस्कृति : एक समाजशास्त्रीय समीक्षा, पृ. 11
12. Culture or Civilization is that complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, law, custom othert capabilities and habits required by man as a member of society – E.V. Tylor – Primitive Culture : Vol. 1, Pg. 1
13. It is best understood intensively as humanities effort to assert its inner independent being – Becen : Encyclopaedia of Religion and Ethics – Vol. IV, Pg. 358

14. The nation of culture be broad enough to express all forms of spiritual life of a man-intellectual, Religious, Ethical, it is best understood intensively as humanities efforts to assert it's inner and independent being – Encyclopaedia of Religion and Ethics – Vol. IV-Pg. 358
15. Culture is particular class of realities of behaviours, it includes both internal both external behavior – Philip Bag by Culture and History – Pg. 88
16. Hursh Kovitz – Man and his work – pg. 17
17. A.L. Krober – The Nature of Culture – Pg. 104
18. डॉ. राम सज्जन पाण्डेय – निर्गुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका–पृ. 18
19. डॉ. देवराज–भारतीय संस्कृति, पृ. 20
20. डॉ. राजाराम रस्तोगी–तुलसीदास : जीवनी और विचारधारा, पृ. 298
21. डॉ. देवराज–भारतीय संस्कृति, पृ. 24
22. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (भाग–ख), पृ. 106
23. आचार्य रामचन्द्र भुक्ल–चिंतामणि (भाग–1), पृ. 32
24. डॉ. गुलाबराय–भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृ. 1
25. डॉ. सम्पूर्णानन्द–कलयाण (हिन्दू संस्कृति अंक), पृ. 68
26. द्रोणवीर कोहली–चौखट, पृ. 45
27. द्रोणवीर कोहली–चौखट, पृ. 48
28. श्यामचरण दुबे–समय और संस्कृति, पृ. 136

सजिता. जे.
असिस्टेंट प्रोफसर (हिन्दी)
श्री रामकृष्णा कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड
साइन्स, कोयम्बत्तूर–641004.
दूरभाष : 8870687750
ईमेलः jsajitha@srcas.ac.in

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 43-45

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पलासी और बक्सर के युद्ध का बंगाल और भारत पर राजनीतिक प्रभाव

-Manjula Singh

Ph.D.Scholar, History Department, V.B.U, Hazaribagh, Jharkhand

पलासी का युद्ध कोई बड़ा युद्ध नहीं था। सच तो यह है कि इसे युद्ध की संज्ञा देना अनुचित होगा। सैनिक सफलता की दृष्टि से इस युद्ध को महत्त्व नहीं दिया जा सकता। यद्यपि नवाब की सेना अंग्रेजों की सेना से बहुत बड़ी थी, परन्तु उसकी अधिकांश सेना ने युद्ध में भाग नहीं लिया था। अंग्रेजों के पैंसठ सैनिक मारे गये थे और नवाब के पांच सौ सैनिक। मीरजाफर और रायदुर्लभ दोनों ने युद्ध के मैदान में सिराजुद्दौला को धोखा दिया था। इस कारण नवाब की हार का कारण सैनिक दुर्बलता नहीं, बल्कि क्लाइव की कूटनीति और षड्यंत्र था। उसने जगतसेठ के भय और मीरजाफर की महत्त्वकांक्षाओं का पूर्ण लाभ उठाया। एक व्यापारिक कंपनी के लिए इससे अच्छा सौदा नहीं हो सकता था। लेकिन बाद की घटनाओं की दृष्टि से पलासी का युद्ध बंगाल और भारत के इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण साबित हुआ। इस युद्ध के दूरगामी परिणाम अत्यन्त गंभीर तथा महत्त्वपूर्ण हुए। इसी कारण से पलासी के युद्ध की गणना भारत के प्रमुख निर्णायक युद्धों में की जाती है।

बाह्य रूप से इस युद्ध का कोई महत्त्व नहीं दिखायी पड़ता है। युद्ध के बाद अंग्रेजों की पुरानी व्यापारिक सुविधाएँ फिर से सुरक्षित हो गयीं और कम्पनी का व्यापार बढ़ने लगा। कम्पनी के नौकरों को धन भी हाथ लगा और वे मालामाल हो गये। साथ ही बंगाल का नवाब एक ऐसा व्यक्ति बना जो पूर्णतया अंग्रेजों के प्रभाव में था। लेकिन, तह में जाकर इसके परिणामों का अध्ययन करें तो पता चलता है कि इसके परिणाम अत्यन्त व्यापक और दूरगामी थे। क्लाइव ने इस युद्ध को क्रांति कहा था। 1757 भारतीय इतिहास का एक युगान्तकारी वर्ष था। इस वर्ष ने भारतीय इतिहास मे एक बड़ा मोड़ लिया। इसके फलस्वरूप भारत में अंग्रेजों का प्रभाव प्रधान ही नहीं हो गया, वरन अंग्रेजी साम्राज्य की नींव भी पड़ गयी। पलासी की इस लड़ाई में अंग्रेजों की विजय कम्पनी के लिए ही नहीं बल्कि ब्रिटिश राष्ट्र के लिए भी महत्त्व की थी। इस युद्ध ने अंग्रेज व्यापारियों को शासक बना दिया और उनकी शक्ति बंगाल में इतनी बढ़ गयी कि वे बंगाल में नवाब–निर्माता बन गये। इस युद्ध ने सिराजुद्दौला के समान वीर एवं देशभक्त नवाब के स्थान पर अंग्रेजों के हाथ के खिलौने मीरजाफर को नवाब बना दिया। मीरजाफर पूर्णरूप से अंग्रेजों के कब्जे में था। बंगाल के वास्तविक शासक अंग्रेज बन गये और नवाब उनके इशारे पर काम करने लगे। अंग्रेजों का बंगाल में राजनीतिक प्रभुत्व इस बात से भी स्पष्ट होता है कि मीरजाफर को बाद में गद्दी से हटाने के लिए उन्हें किसी भी रक्तपात अथवा युद्ध की आवश्यकता नहीं हुई।

पलासी के युद्ध से अंग्रेजों को भारतीयों की दुर्बलतओं का पता लग गया और उन्हें विश्वास हो गया कि वे षड्यंत्र तथा कुचक्र द्वारा भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना कर सकते हैं। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का खोखलापन और भारतीय सैन्य संगठन की कमजोरी का पता अंग्रेजों को लग गया। इस युद्ध ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि बंगाल का राजनीतिक जीवन एकदम विषाक्त है और मुसलमानों के शासन के विरूद्ध हिन्दुओं में काफी असन्तोष है। अंग्रेजों कोयह समझते देर नहीं लगी कि बंगाल के असंतुष्ट हिन्दू उनके विनाश में किसी भी व्यक्ति को सहयोग दे सकते हैं और उस समय बंगाल की स्थिति अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी। वहाँ से अंग्रेजों को अपने राज्य–विस्तार में बड़ी सुविधा मिली। दक्षिण में निजाम एवं मराठों की शक्ति के कारण साम्राज्य स्थापना का कार्य अत्यन्त दुष्कर था। इसलिए उनके फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्वी

असफल रहे। बंगाल भारत की अन्य उदीयमान शक्तियों से बहुत दूर था। अतएव उनके प्रहारों से मुक्त रह सकता था और जर्जर मुगल साम्राज्य के वह अत्यन्त निकट था जिसपर अंग्रेज सफलतापूर्वक प्रहार कर अपनी प्रभुत्वशक्ति बढ़ा सकते थे। बंगाल समुद्रतट पर स्थित था। अतएव अंग्रेज समुद्र के मार्ग से अपनी सेनाएं ला सकते थे और अपनी सामुद्रिक शक्ति से पूरा लाभ उठा सकते थे। नदियों के द्वारा अंग्रेज दिल्ली पहुँच सकते थे और मुगलों पर वर्चस्व कायम कर सकते थे। इस तरह बंगाल में अपनी प्रभुत्त्व–शक्ति स्थापित कर लेने से अंग्रेजों के लिए उत्तर–भारत की विजय का मार्ग खुल गया। इस युद्ध का दुष्प्रभाव मुगल साम्राज्य पर भी पड़े बिना नहीं रह सका। पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य के हाथ से बंगाल का सूबा पूर्णतया निकल गया। एक व्यापारी कम्पनी ने बंगाल के नवाब को पदच्युत कर दिया और मुगल सम्राट मूक द्रष्टा बना रहा। इसने भारत की राजनीतिक दुर्बलता का भंडाफोड़ विदेशियों के सम्मुख कर दिया। जिसका अंग्रेजों ने बाद में काफी लाभ उठाया।

सितम्बर 1964 में नवाब तथा अंग्रेजों की सेनाओं में बक्सर में घमासान युद्ध हुआ। लेकिन, मुगल सम्राट ने दिल खोलकर नवाब की सहायता नहीं की। फलतः 22 अक्टूबर 1764 ई० को मीरकासिम, अवध के नवाब शुजाउद्दौला और मुगल सम्राट शाहआलम तीनों की सम्मिलित सेना की भयंकर पराजय हुई। शाहआलम अंग्रेजों से मिल गया और शुजाउद्दौला रूहेलखण्ड भाग गया। मीरकासिम भी भाग खड़ा हुआ। इस प्रकार बक्सर के युद्ध का निर्णायक अन्त हुआ। विजय अंग्रेजों के हाथ लगी।

आधुनिक भारत के इतिहास में बक्सर के युद्ध को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसके परिणाम पलासी युद्ध की अपेक्षा अधिक निर्णायक हुए। बक्सर के युद्ध में अंग्रेजों को ऐसी विजय प्राप्त हुई जिसकी कल्पना उन्होंने स्वयं नहीं की थी। इसके फलस्वरूप बंगाल और भारत में ब्रिटिश शासन की नींव कहीं अधिक मजबूत हो गयी। पलासी के युद्ध के बाद भारत में कुछ ऐसे लोग थे जो समझते थे कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की धारा को रोका जा सकता है, लेकिन बक्सर की लड़ाई ने इस आशा पर सदा के लिए पानी फेर दिया। पलासी की लड़ाई से अंग्रेजों की प्रतिष्ठा खूब बढ़ गयी थी। बंगाल में अंग्रेजी सत्ता की नींव पड़ गयी थी लेकिन बक्सर की लड़ाई ने इस प्रक्रिया को एक कदम और आगे बढ़ा दिया। अब बंगाल पर कम्पनी का प्रत्यक्ष शासन कायम हो गया। जैसा कि राम्जे म्यूर ने लिखा है, " बक्सर के युद्ध ने बंगाल को कम्पनी शासन की बेड़ियों में जकड़ दिया।"

बक्सर युद्ध में पराजित होने के पश्चात् शाहआलम पूर्णतया अंग्रेजों पर आश्रित हो गया था। यह सत्य है कि भारत में उसका प्रभाव नगण्य हो गया था, फिर भी वह नाममात्र के लिए ही सही पर, था तो मुगल बादशाह, जिसका उपयोग अंग्रेज कर सकते थे। इस स्थिति में क्लाइव के समक्ष कई रास्ते थे। वह दिल्ली पर अधिकार कर सकता था, लेकिन, इसमें एक कठिनाई थी। दिल्ली पर अधिकार कर लेने से कम्पनी की जिम्मेदारी इतनी बढ़ जाती कि उसकी क्षमता अभी कम्पनी के पास नहीं थी। क्लाइव ने मुगल बादशाह के साथ अन्ततः एक समझौता किया। इसके अनुसार अवध के नवाब से कड़ा और इलाहाबाद लेकर मुगल बादशाह को दे दिया गया, मुगल बादशाह को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को देनी पड़ी, अंग्रेजों ने मुगल बादशाह को 26 लाख रूपये प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया और अंग्रेजों ने हैदराबाद के उत्तर के जिलों को भी जागीर के रूप में मुगल बादशाह से प्राप्त किया।

बक्सर के युद्ध में अवध का नवाब शुजाउद्दौला भी पराजित हुआ था। इस हालत में वह पूर्णतया अंग्रेजों पर आश्रित हो गया। क्लाइव ने शुजाउद्दौला के साथ जो संधि की उसके तहत शुजाउद्दौला को अवध का राज्य वापस दे दिया गया, नवाब ने अंग्रेजों को पचास लाख रूपये दिये, नवाब ने चुनार अंग्रेजों को दिया, नवाब ने अपने राज्य की सीमा में अंग्रेजों को बिना कर दिये व्यापार करने की सुविधा दी, नवाब ने कड़ा और इलाहाबाद मुगल सम्राट शाहआलम को दिया, गाजीपुर और बनारस की जागीर अंग्रेजों के संरक्षण में राजा बलवन्त सिंह और उसके परिवार को पैतृक जागीर के रूप में दे दी गई, नवाब और अंग्रेजों के बीच यह तय हुआ कि अपनी सीमा की सुरक्षा के निए नवाब हमेशा अंग्रेजों से सहायता लेगा और अंग्रेजी सेना का पूरा खर्च वह स्वयं वहन करेगा।

मुगल बादशाह के साथ 1765 में क्लाइव ने जो समझौता किया था उसके अनुसार कम्पनी को बंगाल, बिहार ओर उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई थी। यह तय हुआ था कि इन प्रदेशों में लगान वसूल करने और उससे सम्बन्धित न्याय–प्रशासन का अधिकार कम्पनी को रहेगा। शान्ति–व्यवस्था और फौजदारी (अथवा निजामत) का न्याय नवाब की जिम्मेदारी रही। इसके लिए कम्पनी ने नवाब को एक निश्चित रकम सालाना देना स्वीकार किया। बंगाल के नवाब को यह व्यवस्था माननी पड़ी। इस प्रकार बंगाल में द्वैध शासन का सूत्रपात हुआ जिसके फलस्वरूप सूबे की वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गयी। नवाब नाममात्र का शासक रह गया क्योंकि राज्य के राजस्व पर उसका कोई अधिकार नहीं रह गया था। वास्तव में, बंगाल का नवाब अब अंग्रेजों का पेंशन–भोक्ता बन गया था।

भारत की इन तीन शक्तियों के साथ इस प्रकार के राजनीतिक समझौते करके क्लाइव ने महान् दूरदर्शिता का परिचय दिया। बक्सर के युद्ध में कम्पनी की विजय ने अंग्रेजों के समक्ष इतने रास्ते खोल दिये थे और शक्ति–विस्तार के लिए इतनी सम्भावनाएँ प्रस्तुत कर दी थीं कि अंग्रेजों को अब भारत में रोकना कठिन हो गया था। यहीं से वास्तव में अंग्रेजों की भारत–विजय की यात्रा शुरू हुई।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. वर्मा, डॉ. दीनानाथ, आधुनिक भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ 22–40.
2. Sen, Sailendra Nath (2009), History of the Freedom Movement in India (1857-1947), New age international.
3. Parshotam Mehra 1985, A dictionary of modern history (1707-1947), oxford university press.
4. John William (29 Feb 2004), Fortescue's History of the British Army, Naval & Military Press.
5. Black, Jeremy (28 March 1996), Wyse, Liz (ed.), The Cambridge illustrated Atlas of warfare, Renaissance to Revolution, 1492-1792, Cambridge, Cambridge University Press.
6. Cust. Edward (1858), Annals of the wars of the Eighteenth century,1760-1783. London, Mitchell's Military Library, P.113.
7. Keay, John (8 July 2010), The honourable company (Paperback ed.), London : Harper Collins UK, P. 374.
8. Strang, Herbert (1904), In Clive's command- A story of the fight for India.
9. Spear, Thomas G. P (1975), Master of Bengal- Clive and his India, London.
10. Markovits, claude, A history of modern India (1480-1950), Anthem Press. 01 Nov 2004.
11. Ahir, Rajiv, Adhunik Bharat ka Itihas, Spectrum Book Pvt.Ltd, 1 Jan 2018.
12. Grover, B.L. Mehta, Alka, A New Book at Modern Indian History, S. Chand & company, New Delhi, 32nd Edition.
13. चंद, विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद, 2018
14. Mc Aller, John (2017), Picturing India: people, places and the world of the east India company, Niyogi Books.

Manjula Singh

D/O - Dr. R.N. Singh

House No.- 16/17, Canary Hill Colony. Near Lane No.-1

Canary, Hazaribag-825301 (Jharkhand)

Mob - 9905810067, Whatsapp No.- 9955625821

E-mail - manjula.singh1199@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 46-49

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अब्दुल कलाम का भारत विकास मिशन : एक विवेचन

–दशरथ राम

राजनीति विज्ञान विभाग, कमला राय महाविद्यालय।

अब्दुल कलाम भारत को एक विकसित राष्ट्र के रूप में प्रदर्शित करने के लिए प्रतिबद्ध थे। इस संबंध में उन्होंने कहा कि हमारे पास प्राकृतिक संसाधान हैं, लेकिन हम उनका लाभ नहीं उठाते। इसका विभिन्न कारण खराब नेतृत्व, मूल्य–संवर्धन का अभाव इत्यादि हो सकते हैं। एक कहावत है कि एक भेड़ के नेतृत्व में शेरों की सेना, एक शेर के नेतृत्व में भेड़ों की सेना से युद्ध हार जाएगी। अभी सबसे अधिक आवश्यकता स्वप्नद्रष्टा तथा योग्य नेतृत्व की है, जो अज्ञानता के अंधकार को दूर कर सके।

विकास का एक अन्य प्रेरक है, साक्षरता। एक अशिक्षित देश कभी भी प्रगति नहीं कर सकता है। हमें 'महान् भारत' नहीं बल्कि 'साक्षर भारत' का सपना देखना चाहिए। मेरा यह भी मानना है कि हममें वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपने उत्पादों को बेचने की आक्रामक प्रवृत्ति का अभाव है। हम इसके बजाय 'अमेरिका में निर्मित' से प्रभावित हैं। हमें भारतीय उत्पादों को प्रोत्साहित करना चाहिए और उनका प्रभावपूर्ण तरीके से विपणन करना चाहिए।

हमें अपनी जैव–विविधता को भी पहचानना चाहिए और उन्हें पेटेन्ट कराना चाहिए। साथ ही हमें बढ़ती जनसंख्या के संकट पर भी एक निगाह रखनी चाहिए, क्योंकि मात्राा में वृद्धि गुणवत्ता में कमी को प्रेरित करेगी। इसके लिए मैं चीनी सरकार द्वारा उठाए गए सख्त कदमों का सुझाव दूँगा।

भारत जैसा लोकतांत्रिक देश किसी भी विकसित देश को पछाड़ सकता है, यदि एक बार उसके लोग साथ–साथ चलें। विकास अकेले दम पर नहीं हो सकता। वह देश के लोगों, विकास का नेतृत्व करनेवाले लोगों तथा युवाओं की सक्रिय भागीदारी के द्वारा संभव होगा।[1]

डॉ॰ कलाम के विचारानुसार एक विकसित देश वह है जिसके पास आर्थिक संपन्नता तथा राष्ट्रीय सुरक्षा पर व्यापक रूप से ध्यान देने तथा इन उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए समन्वित रणनीतियाँ, प्रौद्योगिकियाँ तथा मिशन विकसित करने की योग्यता और क्षमता हो। अतः भारतीय संदर्भ में, आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए प्रौद्योगिकी ही प्रेरक शक्ति हो सकती है।

उपर्युक्त वास्तविकता को समझते हुए राष्ट्रीय विशेषज्ञों की दो भिन्न धराओं– टेक्नालॉजी इन्पफॉरमेशन पफोरकास्टिंग असेसमेंट काउंसिल (टी.आई.एपफ.ए.सी.) जो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त संगठन है और डिपार्टमेंट ऑफ डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट (रक्षा अनुसंधन तथा विकास विभाग) द्वारा दो दस्तावेज तैयार किए गए हैं। ये हैं 17 खंडों में 'टेक्नोलॉजी विजन 2020' तथा 'इंटीग्रेटेड स्ट्रेटजीज, टेक्नोलॉजी एंड मिंशस फॉर कॉम्प्रिहेंसिव नेशनल सिक्योरिटी' (विस्तृत राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए समन्वित रणनीतियाँ, प्रौद्योगिकियाँ तथा मिशन)। इन दोनों दस्तावेजों में व्यापक रूप से आर्थिक विकास के पहलुओं पर चर्चा की गई है और प्रौद्योगिकी को संयोजक तत्व माना गया है। इन दोनों दस्तावेजों के मिश्रण से इंडिया मिलेनियम मिशंस (भारत सहस्त्राब्दि मिशन) की उत्पत्ति हुई है, जो वर्ष 2020 तक एक शक्तिशाली तथा विकसित भारत बनाने के लिए एक उत्तम रूपरेखा तथा नक्शा प्रदान करता है। कलाम के विकास दर्शन का उपरोक्त क्रियाकलपों पर अमिट छाप है।

कलाम के अनुसार समन्वित प्रयास के द्वारा ही भारत को एक विकसित राष्ट्र के रूप में परिणत किया जा सकता है। समन्वित प्रयास के लिए भारत की केंद्रीय क्षमता पर आधारित पाँच क्षेत्राों को पहचाना गया है। इन केंद्रीय क्षेत्रों में विकास का अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों पर भी प्रभाव पड़ता है। विकास हेतु चयनित पाँच क्षेत्र निम्नलिखित हैं –

(क) कृषि तथा कृषि-खाद्य प्रसंस्करण :-

भारत के पास विशाल उर्वर भूमि है और विश्व में अनाज के उत्पादन में हम दूसरे स्थान तथा फल के उत्पादन में पहले स्थान पर हैं, लेकिन उत्पादकता के संदर्भ में हम पैंतालिसवें स्थान पर हैं। हमें उच्च पोषण तथा गुणवत्तावाले खाद्यान्न उपजाने की आवश्यकता है ताकि इस क्षेत्र में दूसरी हरित क्रांति लाकर निर्यात को प्रोत्साहन मिल सके। हमें नवीन खाद्य प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल द्वारा कृषि उत्पादों में मूल्य–संवर्ध्न करना चाहिए। कृषि तथा कृषि–खाद्य संसाधन ग्रामीण लोगों के जीवन में खुशहाली ला सकता है और आर्थिक विकास की रफ़्तार को तेज कर सकता है।

(ख) शिक्षा तथा स्वास्थ्य :-

एक विकसित राष्ट्र के नागरिकों का जीवन स्तर उच्च होना चाहिए जिसके लिए बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ एक पूर्वापेक्षा है। ज्ञान से संपन्न मस्तिष्क उत्पन्न करने के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है, ताकि नए विचार पल्लवित हो सके। दुर्भाग्यवश हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसा नहीं करती। उसमें एक प्रकार की सीखने की प्रक्रिया होनी चाहिए, न कि पढ़ने की या पुनरूत्पादन प्रक्रिया। ग्रामीण क्षेत्रों में सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। टेली–शिक्षा लाभदायक हो सकती है।

शिक्षा तथा स्वास्थ्य दोनों अंतर्संबद्ध हैं। स्वस्थ जीवन तथा जनसंख्या नियंत्रण में मदद करते हैं जिससे सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है। जैव–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास द्वारा स्वास्थ्य क्षेत्रा में काफी सुधार हो सकता है। भारत के पास औषधीय जड़ी–बूटियों की संपदा है और जैव–प्रौद्योगिकीविदों को इन संसाधनों को मानव जाति के लिए उपयोगी बनाने के लिए इनका लाभ उठाना चाहिए। भारत में एड्स और कैंसर के लिए टीके विकसित किया जाना चाहिए।

(ग) आधारभूत सुविधाएँ :-

सड़कों तथा बिजली द्वारा सभी ग्रामीण क्षेत्रों की कनेक्टिविटी आवश्यक है। भारत को एक बौद्धिक महाशक्ति में बदलने के लिए ज्ञान आधारित ग्रामीण विकास एक अनिवार्य आवश्यकता है। उच्च ग्रामीण चौतराफा कनेक्टिविटी ग्रामीण इलाकों तक शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आर्थिक गतिशीलता को पहुँचाने की न्यूनतम अनिवार्यता है। ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाएँ उपलब्ध कराना (पी.यू.आर.ए.) का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर मदद दे सकता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन–स्तर सुधारने तथा शहरी संकुलन हटाने के लिए विशेष सुझाव देता है।

'पुरा' द्वारा भौतिक कनेक्टिविटी उपलब्ध कराने के लिए रिंग रोड, रेल कनेक्टिविटी, सार्वजनिक आधरभूत तंत्र का निर्माण है ताकि लोगों तथा माल का परिवहन संभव हो, स्कूलों तथा स्वास्थ्य केंद्रों की पहुँच में सुधार हो एवं विद्युत, जल तथा संचार नेटवर्क के वितरण में निवेश में कमी हो सके।

'पुरा' में इलेक्ट्रॉनिक कनेक्टिविटी की भी आवश्यकता है। ग्रामीण समूह में सिस्टम ओरिएंटेड एप्रोच के लिए कृषकों तथा ग्रामीणों के लिए टेलीशिक्षा, ग्रामीण इंटरनेट कियॉस्क, सार्वजनिक टेलीफोन प्रणाली, टेलीमेडिसिन, ई–मार्केट, ई–शासन, ई–कॉमर्स आदि की आवश्यकता होगी। इस प्रकार, सूचना प्रौद्योगिकी में क्रांति अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के साथ देश के मूलभूत स्तर पर आवश्यक सामाजिक बदलाव लाएगी। यह ग्रामीणों को बाह्य बाजारों के इस्तेमाल के लिए सामूहिक रूप से कॉल सेंटर, बिजनेस प्रोसेसिंग आउटसोर्सिंग, सॉफ़्टवेयर डेवलपमेंट सेंटर आदि स्थापित करने का अवसर भी प्रदान करता है।

बौद्धिक कनेक्टिविटी अर्थात् शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यावसायिक प्रशिक्षण, पफसल, जल तथा वन प्रबंध्न के लिए उपग्रहों का इस्तेमाल, पर्यावरण सुरक्षा तथा सहकारी उत्पाद विपणन में कनेक्टिविटी के साथ ग्रामीण क्षेत्र को रूपांतरित कर देगी। इलेक्ट्रॉनिक कनेक्टिविटी तथा बौद्धिक कनेक्टिविटी का सम्मिश्रण साक्षरता आंदोलन, टेली शिक्षा, स्वास्थ्य देख–रेख तथा

संसाध्न प्रबंधन को प्रेरित करेगा।

इसके बाद यह देखा जाएगा कि भौतिक इलेक्ट्रॉनिक तथा बौद्धिक कनेक्टिविटी का त्राय लघु उद्योगों, कृषि तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों, गोदामों, माइक्रोपावर प्लांटों, नवीकरण योग्य ऊर्जा तथा ग्रामीण बाजारों के माध्यम से आर्थिक कनेक्टिविटी को सामने लाए। यह अध्कि रोजगार अवसर, महिला सशक्तिकरण, शहरी विस्तार, अधिक क्रय शक्ति तथा बेहतर जीवन–स्तर उपलब्ध कराएगा। गाँव न केवल अपना जीवन–स्तर सुधारेंगे बल्कि ग्रामीण सौंदर्य तथा पर्यावरण को भी सुरक्षित रखेंगे। इसके अलावा, कनेक्टिविटी ग्रामीण क्षेत्रों को विश्व के किसी भी भाग से नजदीक ले आती है।

(घ) रणनीतिक व सामरिक क्षेत्र :-

भारत ने वैमानिकी तथा अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में काफी प्रगति की है, फिर भी स्वतंत्रता के बाद यह पाँचवें स्थान पर है। हमें उपग्रहों के लिए सौर ऊर्जा प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए तथा हाईपरप्लेनों का प्रयोग करते हुए उन उपग्रहों से अपनी बिजली की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए। परमाणु ऊर्जा को रक्षा उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए।

(ड़) सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी :-

इस क्षेत्र को अन्य सभी क्षेत्रों को सूचना तथा कनेक्टिविटी प्रदान करनी चाहिए। सिलिकॉन युग समाप्त हो चुका है। भारत को नेनोप्रौद्योगिकी पर ध्यान देना चाहिए और इस क्षेत्र में नई खोजें करनी चाहिए। सभी ग्रामीण क्षेत्रों के लिए इलेक्ट्रॉनिक कनेक्टिविटी स्थापित की जानी चाहिए और उच्च बैंडविड्थ उपलब्ध कराना चाहिए। सूचना प्रौद्योगिकी हमारी मुख्य क्षमतों में एक है और हमें बड़े पैमाने पर विकसित करना चाहिए।[2]

उपरोक्त मिशंस के संदर्भ में डॉ॰ कलाम का कहना है कि दायित्व चुनौतीपूर्ण हैं, परंतु एक अरब जनसंख्या वाले एक दृढ़ संकल्प देश के लिए साकार योग्य हैं। हमें इस तथ्य का संज्ञान लेना होगा कि विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के बावजूद भारत स्वतंत्रता के पाँच दशकों बाद भी एक विकासशील देश ही है। इस स्थिति में बदलाव जरूरी है और भारत को एक विकसित देश बनाना है।

विकास के लिए दृढ़ निश्चय और एकनिष्ठ समर्पण की आवश्यकता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारत को विदेशी शासन से आजाद कराने में हमारे पूर्वजों ने बहुत से बलिदान दिए हैं, कठिनाइयों और दुःखों का सामना किया है, ताकि हम स्वतंत्र भारत में रह सकें और अपना मस्तक ऊँचा रख सकें। हमें एक पल के लिए रूककर सोचना चाहिए कि हम अपनी भावी पीढ़ी द्वारा किस प्रकार स्मरण किया जाना चाहेंगे। हमें तभी याद किया जाएगा जब हम अपनी युवा पीढ़ी को आर्थिक संपन्नता तथा हमारी सम्यतागत विरासत से उत्पन्न एक सक्रिय, समृद्ध तथा सुरक्षित भारत उन्हें देंगे।[3]

डॉ॰ कलाम के मतानुसार एक देश केवल कुछ लोगों के महान् होने से महान् नहीं होता, बल्कि इसलिए महान् होता है कि उस देश में हर कोई महान् होता है। युवाओं को शिक्षा में श्रेष्ठता प्राप्त करनी चाहिए और उन्हें नैतिक मूल्यों तथा समाज कल्याण की भावना के साथ अच्छा मनुष्य बनना चाहिए। युवाओं के समन्वित तथा केंद्रित प्रयास भारत को एक 'विकसित देश' बनाने की चुनौती को पूरा कर सकते हैं। डॉ॰ कलाम को विश्वास है कि भारत के बच्चे तथा युवा विकसित होकर न केवल विभिन्न क्षेत्राों में प्रोफेशनल बनेंगी बल्कि रचनात्मक उद्यमी बनकर दूसरों को रोजगार के अवसर भी उपलब्ध करायेंगे। नेता नए उत्तम संगठन के निर्माता होते हैं। रचनात्मक नेताओं का अनुपात जितना ऊँचा होगा, 'विकसित भारत' के स्वप्न की सफलता की संभावना उतनी ही अधिक होगी।[4]

यथार्थ में बदलता स्वप्न :-

डॉ॰ कलाम का विचार है कि भारत को पहले छह विकसित देशों में शामिल होने के लिए उसे आर्थिक तथा व्यावसायिक रूप से शक्तिशाली होना होगा। सकल घरेलू उत्पाद को 10 प्रतिशत से अधिक करना होगा, गरीबी और बेराजगारी का सफाया करना होगा।

पाँच बड़े मिशन, जिनकी विस्तार से चर्चा की गई है, यानी कृषि तथा खाद्य प्रसंस्करण, शिक्षा तथा स्वास्थ्य, सूचना

तथा संचार प्रौद्योगिकी, विद्युत सहित आधरभूत तंत्र तथा रणनीतिक क्षेत्र से संबंध्ति मिशनों को युद्ध स्तर पर आरंभ करना होगा। इसके अतिरिक्त विकास के लिए नदियों की नेटवर्किंग, पी.यू.आर.ए. तथा ग्रामीण जीवन की समृद्धि और पर्यटन अन्य आवश्यक लक्ष्य क्षेत्र हैं। भारत के पास इन क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधन तथा उत्तम मानव संसाधन की मजबूत क्षमता है।

इन मिशनों में अंतर्संबंधों के नेटवर्क समझने और अनुसंधान व विकास संस्थानों, शैक्षिक संस्थानों तथा उद्योगों के बीच मजबूत भागीदारी के द्वारा इनका लाभ उठाने की आवश्यकता है। ये भागीदारियाँ उच्च उत्पादकता तथा विकास को प्रेरित करेंगी और वह बदले में श्रेष्ठ प्रौद्योगिकी उत्पादों के निर्यात तथा अर्थ उत्पत्ति को प्रेरित करेंगे।

यह स्वप्न वास्तव में एक चुनौती है और हम इस पर तभी विजय प्राप्त कर सकते हैं जब हम, एक अरब लोग, अन्य सभी साधारण मुद्दों को भूलकर एक देश के रूप में सामने आकर हाथ मिलाएँ। सरकार अकेले इस चुनौती का सामना नहीं कर सकती, सभी क्षेत्रों से संबंध रखने वाले हम भारतीयों को इस स्वप्न को मिशनों में बदलने की समन्वित प्रक्रिया में भारत को देशों के समूह में सही स्थान के साथ एक समृद्ध, खुशहाल शांतिपूर्ण तथा सुरक्षित देश बनाने में मदद करनी होगी।

संदर्भ :-

1. अब्दुल कलाम, ए॰ पी॰ जे॰ तथा पिल्लै, ए॰ शिवताणु (2013) मेरे सपनों का भारत, नई दिल्ली : प्रभात पेपरबैक्स में राहुल दत्ता राय, ऐरो–इंजीनियरिंग का छात्र का वक्तव्य उद्धृत, पृ॰ 181
2. पूर्वोक्त, पृ॰ 37–38, 168–170, 182–183
3. अब्दुल कलाम, ए॰ पी॰ जे॰ तथा सुंदर राजन, वाई (2012) भारत 2020: नव निर्माण की रूपरेखा, हरिमोहन शर्मा अनूदित, इंडिया 2020 : ए विजन फॉर द न्यू मिलेनियम का हिंदी अनुवाद, नई दिल्ली : राजपाल एंड सन्ज, पृ॰ 262–269
4. अब्दुल कलाम, ए॰ पी॰ जे॰ तथा सुंदर राजन, वाई (2012) महाशक्ति भारत, सचिन सिंहल अनूदित, मिशन इंडिया का हिंदी अनुवाद, नई दिल्ली : प्रभात पेपरबैक्स, पृ॰ 13–27

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 50-52

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में नारी–चेतना

–रीना कुमारी

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

नारी चेतना के अर्थ एवं स्वरूप पर विचार करें तो नारी शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है तथा चेतना शब्द का अर्थ है प्राणी–मात्र में रहने वाला वह तत्त्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्नता प्रदान करता है। नारी–चेतना का अर्थ हुआ नारी में निहित जागरूक शक्ति। नारी समाज तथा परिवार का एक अभिन्न अंग है। जब तक नारी अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति सचेत नहीं होगी तब तक न परिवार ठीक से चल सकता है और न ही समाज। प्राचीन काल से आज तक नारी में चेतना का निरन्तर विकास होता रहा है। वह निरंतर विकास की सीढ़ियों पर चढ़ती रही है। नारी की प्रशंसा मे शिवजी बतलाते है कि – 'नारी के समान न योग है न जप है, न तप है, न तीर्थ' है। यही इस संसार की सर्वाधिक पूजनीय देवता है क्योंकि वह पार्वती का रूप है। उसके समान न कुछ था, न ही कुछ होगा।[1]

प्रारंभ में नारी केवल एक विलास की सामग्री थी। नारी के विभिन्न रूप माँ, बहन, पुत्री आदि अधिक विकसित न हो सके थे। नारी का क्षेत्र बहुत संकुचित था। स्त्रियों को घर की चार–दीवारी के अंदर ही रहना होता था। उन्हें पढ़ने–लिखने, नौकरी आदि की किसी भी प्रकार की आजादी नहीं थी। नारियाँ एक प्रकार की घुटन भरी जिंदगी व्यतीत कर रही थी।

ये नारी–चेतना का ही विकास है कि नारी वर्तमान में कन्धे से कंधा मिलाकर पुरूषों के साथ कार्य कर रही है। नारी के मन में पुरूष की दासता से मुक्त होने की ललक पैदा होती है। नारी अब शिक्षित भी हो चुकी है। 'कर्म भूमि' उपन्यास की 'सुखदा' पुलिस के सामने खड़ी होकर कहती है– 'क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं। छाती खोलकर खड़े होने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों का होम करते हो। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।'[2]

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है– 'स्त्री–पुरूष एक होकर रहे, दोनों में मतभेद न होने पावे। स्त्री को गर्व न हो कि मैं स्वामी से बड़ी हूँ और न स्वामी को अभिमान हो कि ईश्वर ने सब बुद्धि मेरे ही हिस्से में रखी है। स्त्री घर की मालकिन है और पुरूष बाहर का, लेकिन दोनों में मतैक्य हो दोनों इस पवित्र प्रेम सूत्र में बंधे हों, जहाँ न राज है न अभिमान, न द्वेष है और न कलह।'[3]

वैदिक साहित्य में नारी के पत्नी रूप को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वहाँ प्रत्येक गृहस्थ द्वारा कन्या की कामना की गई है। पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं माना गया। पुराणकाल में कन्या को देवी रूप स्वीकार किया गया है। जबकि वीमद्भागवत में नारी के कन्या रूप का गुणगान किया गया है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल के साथ–साथ हिन्दी गद्य साहित्य में भी नारी–चेतना का विकास हुआ है। इस क्रम में यदि आदिकाल को देखा जाए तो इसमें नारी के वीरांगना एवं कामिनी दोनों रूपों के दर्शन होते है। इस काल में अधिकांश साहित्य राजकुमारियों कें अपहरण तथा उनके फल–स्वरूप होने वाले युद्धों का वर्णन मिलता है। इस सामन्तवादी युग में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। रासो काव्य की नायिकाओं के जीवन भी नारी– दुर्दशा की कहानी ही कहते हैं।[4]

आदिकाल के बाद यदि भक्तिकाल को देखा जाए तो इस काल के साहित्य में नारी मुख्यतः दो रूपों में अंकित हुई एक ओर तो वह सामान्य नारी रूप में निंदा एवं ऊपेक्षा की पात्र रही तो दूसरी ओर आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में सम्मानित भी हुई। एक ओर तो इस युग में निर्गुणमार्गी संत कवि थे। जिन्होंने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा एवं पुरूष को विनाश के पथ पर ले जाने वाली माना है। कबीर ने नारी को नरक का द्वारा माना है। मलूकदास ने नारी के नेत्रों को भयानक कहा है तथा दादूदयाल संसार को पतंगा तथ कनक– कामिनी को दीपक की लौ– बताते हैं।[5]

दूसरी तरफ प्रेममार्गी कवि जायसी ने नारी को ब्रह्म का प्रतीक मानकर उसकी प्रशंसा की है। तुलसीदास ने नारी के प्रति घृणात्मक दृष्टिकोण के कारण ही उसे 'ढोल गंवार शुद्र एवं पशु' के समान बताया है। डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार, तुलसीदास के 'रामचरितमानस' तथा अन्य ग्रंथों के विभिन्न प्रसंगों में, ऐसी अनेक उक्तियाँ हैं, जो किसी भी देशकाल की नारी के प्रति न्याय नहीं करती। उन्होंने नारी की प्रकृति बुद्धि विवेक, आचार व्यवहार सभी की निंदा की है।[6]

रीतिकाल में भक्तिकाव्य की उपेक्षित नारी रीति– कालीन मुक्तक काव्य में आकषर्ण की केंद्र बिन्दु 'नायिका' बन गई। इस काल के कवियों ने राधा–कृष्ण की लीलाओं का जो वर्णन किया है, उसमें भी आध्यात्मिकता की आड़ में नारी के प्रति वासना ही व्यक्त हुई है। इस काल के काव्य में अंकित प्रेमिकाएँ अधिकांश में परिकथाएँ ही हैं, जिनमें उज्जवल पत्नीत्व की गरिमा को खोजने पर निराशा ही मिलती है, फिर भी प्रिय के ध्यान में आत्म विस्मृत हो अपना ही प्रतिबिम्ब दर्पण में देखकर रीझने वाली यह प्रेमिका रूपा नारी, प्रेमिका के उत्कर्षमय भाव–संवलित रूप का आदर्श भी प्रस्तुत करती है।[7]

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को यदि देखा जाए तो परिस्थिति काफी बदल चुकी है। आधुनिक काल में सर्वप्रथम भारतेंदु युग आता है। इस युग में नारी के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण होते हुए भी नारी निपट भोग्या या उपेक्षित नहीं रही। उसकी हीन–दशा के प्रति भी कवि की सहानुभूति सजग हुई और उसको आवश्यक आदर देने की दिशा में भी ये कवि अगसर हुए।

द्विवेदी युगीन काव्य में नारी संबंधी दो दृष्टियाँ मिलती हैं– एक रीतिकाव्य के अवशेष रूप में उसी परम्परा की कड़ी में जुड़ी हुई भारतेन्दु और बदरीनारायण प्रेमधन की नायिकाएँ।'[8] दूसरी युग चेतना से प्रभावित गुप्त और हरिऔध के नारी चित्रण। गुप्त जी ने नारी चरित्रों का सर्जन पुरूषो की भोग्या एवं काव्या के रूप में नहीं वरन् पुरूष की संगिनी वाली भावना से किया है। साकेत, यशोधरा और विष्णुप्रिया नारी प्रधान कृतियाँ हैं। गुप्त जी कहते हैं कि नारी की मानवता वादी मूल्य, भावनाशील दृष्टि और सामाजिक सम्पन्नता की कसौटी पर परखते हैं।[9]

कथा साहित्य की ओर देखें तो प्रेमचंद के बाद के युग की नारी ने भारतीय समाज की परंपरागत मान्यताओं को तोड़ा है। उसने स्वावलम्बी बनने का प्रयास किया है और शिक्षित होकर समाज में अपने लिए नई राहों को तलाशा है। वह भी पुरूष की तरह स्वतंत्र, स्वच्छंद और आर्थिक दृष्टि से सबल हुई हैं। आज नारी समान अधिकार की माँग समाज के हर क्षेत्र में कर रही हैं शिक्षा तथा संघर्ष के बल पर नारी उन अधिकारों की मांग समाज के हर क्षेत्र में कर रही है जो कि एक नागरिक होने के नाते उसे मिलना चाहिए अब अधिकार को लेकर नए कानून तथा नई योजनाएँ उभरने लगी हैं। सरकार, संविधान, कानून, समाज संस्थाएँ तथा प्रचार–प्रसार माध्यम भी महिलाओं के उत्थान के लिए प्रतिबद्ध रहे हैं किंतु अब शेष है समाज में अधिकार को लेकर मांग। अधिकार का अर्थ है– 'कार्यभार, प्रभुत्व, सत्ता, हक, दावा।'[10]

आधुनिक महिलाएँ जब मध्ययुगीन इतिहास पढ़ती होंगी तो उन्हें यह बात निश्चय ही चुभती होगी कि संपत्ति में भागीदारी तो दूर स्त्रियों को तो स्वयं ही पुरूषों की सम्पत्ति माना जाता है। इस संबंध में मृणाल पाण्डे यह मानती हैं– "सड़ी हुई मान्यताएँ और वे परंपराए जो लिंग भेद जन्मती है सबल उखाड़ फेकी जानी चाहिए। औरत–मर्द को एक–दूसरे की जरूरत है।'[11]

अलका सरावगी की कहानी 'बहुत दूर है' आसमान में समान अधिकार की स्थिति पर व्यवहारिक रूप से सोचा गया है– 'हमें थोड़ा व्यवहारिक होकर सोचना ही पड़ेगा तुम कितनी भी बात करो बराबरी की पर आखिर बलात्कार तो औरतों के ही साथ होता है न।'[12]

यदि हम नारी स्वतंत्रता की बात करें तो नारी अपने जीवन साथी का चुनाव अपने मन के अनुकूल करें, तभी सही अर्थ में उसकी मुक्ति होगी। अब वह कहती है–

अब तराशने दो मुझे खुद को
अपने तरीके से
तुम्हारे तौर –तरीकों ने तो मुझे,
चूर–चूर ही किया है।

यदि नारी की शिक्षा की बात की जाए तो वर्त्तमान दौर में यह बात सर्वमान्य है कि स्त्री को भी उतना शिक्षित होना चाहिए जितना कि पुरूष है। यह सिद्ध सत्य है कि यदि माता शिक्षित न होगी तो देश की सन्तानों का कदापि कल्याण न होगा। चित्रा मुद्गल की कहानी 'दुलहिन' की अनी मैट्रिक पास है। घरेलू अड़चनों के बावजूद इंटर और बाद में बी.ए. की तैयारी कर रही है। कुसुम अंसल की कहानी 'तुम्हारे मोहरे' की रूबी एम. बी. ए. की डिग्री लिए हुए आसमान छू लेना चाहती है। 'जया जादवानी' की कहानी', 'परिदृश्य' की माधवी इसलिए पढ़ना चाहती है ताकि उसकी अपनी अस्मिता पति तथा समाज में बनी रहें– 'पढ़ना जरूरी है इसलिए तुम कहते हो न कम पढ़ी लिखी बीवियां बोर होती हैं।'

अतः हम देख सकते हैं कि नारी की चेतना का ही यह परिणाम है कि वह पुरूषों के समान अधिकारों की मांग हर क्षेत्र में कर रही है। शिक्षा और संघर्ष के कारण ही नारी आज उन सभी अधिकारों को प्राप्त कर रही है जो वास्तविक रूप से उन्हें मिलने चाहिए।

उनको यह अधिकार दिलवाले में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग राष्ट्रीय महिला आयोग आदि अनेक संस्थाएं गठित की गई हैं। जहाँ महिला से जुड़े हर मसले का हल करने और अधिकार दिलाने का संकल्प लिया गया है, ताकि महिलाएँ नई सदी की चुनौतियों का सामना साहस पूर्वक करें और एक विकासशील गतिशील राष्ट्र का निर्माण करें। जिसका वर्त्तमान में परिणाम यह देखने को मिल रहा है कि जो नारी अपने घर के बजट को संभाला करती थी वह आज निर्मला सीतारामन् के रूप में देश की अर्थव्यवस्था को संभालते हुए देश का बजट बनाकर पेश कर रही हैं। जो कि नारी की चेतना का सफल एवं सशक्त परिणाम है।

संदर्भ :–

1. वृहद् – संहिता, पृ०– 74
2. प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ०– 153
3. डॉ० रेखा कुलकर्णी, हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों मे नारी, पृ०– 70
4. डॉ० सौ० जे० एम० देसाई, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ०– 38
5. वहीं, पृ०– 40
6. वही, पृ०– 41
7. वही, पृ०– 44
8. डॉ० शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० 336
9. मैथिली शरण गुप्त, व्यक्ति और रचना, पृ०– 127
10. सं० गौविन्द चातक, आधुनिक हिन्दी शब्द कोश, पृ०– 48
11. मृणाल पाण्डे, परिधि पर स्त्री, पृ० सं०– 8
12. अलका सरावगी, कहानी की तलाश, पृ० सं०– 48

सम्पर्क नं० : 8294550052, e-mail - 1990.reenakri@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 53-56

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अब्दुल कलाम का बौद्धिक युग सापेक्ष शैक्षिक विचार

–दशरथ राम

राजनीति विज्ञान विभाग, कमला राय महाविद्यालय, गोपालगंज।

डॉ॰ अब्दुल कलाम के मतानुसार विज्ञान के ज्ञान का प्रभावी इस्तेमाल देश में व्यापक संपन्नता ला सकता है और बेहतर स्वास्थ्य, शिक्षा, आधारस्तंभ तथा अन्य सामाजिक सूचकों के रूप में जीवन स्तर को सुधर सकता है। एक बौद्धिक समाज का आधार–तंत्र बनना तथा उसे बरकरार रखना, कर्मचारियों की जानकारी में वृद्धि करना तथा नए ज्ञान के निर्माण, विकास तथा दोहन द्वारा उनकी उत्पादकता को बढ़ाना इस बौद्धिक समाज की संपन्नता का निर्णायक तत्व होगा। शिक्षा एक शक्तिशाली तथा विकसित राष्ट्र का स्तंभ है। बौद्धिक समाज में बौद्धिक क्षमता प्रभावी होगा। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत ध्यान देना चाहिए तथा 100 प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य होना चाहिए। यह रोजगार के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। सामाजिक रूपांतरण के लिए महिलाओं की शिक्षा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जिसमें छोटा परिवार, उच्च शिक्षा तथा बच्चों का बेहतर स्वास्थ्य शामिल है।[1]

पीटर एफ. ड्रकर[2] के अनुसार बौद्धिक समाज एक ऐसा समाज है जिसमें निम्नलिखित चीजें हों –

(क) सीमाहीनता, क्योंकि ज्ञान धन से भी अधिक सहजता में भ्रमण करता है।

(ख) ऊपर की ओर गतिशीलता, सरलता से प्राप्त औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रत्येक को उपलब्ध।

(ग) विपफलता और सफलता दोनों की संभाव्यता हर कोई 'उत्पादन के माध्यम', यानी किसी नौकरी के लिए आवश्यक ज्ञान, प्राप्त कर सकता है, लेकिन हर कोई नहीं जीत सकता।

इक्कीसवीं शताब्दी का संबंध बौद्धिक समाज से है। इसलिए विभिन्न देश ज्ञान की गति की समझते हुए तथा उसे धन में परिणत करते हुए खुद को बौद्धिक समाज में बदलेंगे।

बौद्धिक समाज की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

(1) वह अपने सभी घटकों द्वारा ज्ञान का इस्तेमाल करता है और अपने लोगों को सशक्त तथा समृद्ध बनाने का प्रयास करता है।

(2) वह सामाजिक बदलाव को प्रेरित करने के लिए ज्ञान को एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में प्रयुक्त करता है।

(3) वह नवीन प्रयोगों के प्रति प्रतिबद्ध एक विद्वान समाज होता है।

(4) उसमें ज्ञान को उत्पन्न करने, अवशोषित करने, प्रसारित करने, सुरक्षित करने तथा उसे आर्थिक संपन्नता और सामाजिक कल्याण में इस्तेमाल करने की क्षमता होती है।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का ऐतिहासिक विवेचन करते हुए डॉ॰ कलाम व्यक्त करते हैं कि पिछली कुछ सदियों के दौरान दुनियाँ कई सामाजिक परिवर्तनों से गुजरी है। उसने कृषि समाज के रूप में अपना विकास शुरू किया जहाँ शारीरिक श्रम सबसे महत्वपूर्ण कारक था और आर्थिक विकास बड़े पैमाने पर प्राकृतिक उत्पादों, जैसे कच्चे माल तथा कृषि उत्पादों पर आधरित था।

औद्योगिक क्रांति के आगमन के साथ आर्थिक विकास बड़े पैमाने पर प्रौद्योगिकीय विकास द्वारा प्रेरित हुआ, जिसके कारण मानव संसाध्न का स्थान मशीनों ने ले लिया। भारत औद्योगिक क्रांति का पूरी तरह लाभ नहीं उठा पाया, क्योंकि

उन दशकों में हमारा देश विदेशी शासकों के अधीन था। लेकिन लाइसेंसधारी औद्योगिक संस्थान जरूर उभरे।

इस समाज ने स्पष्ट ज्ञान, यानी प्रौद्योगिकी के माध्यम से अपने उत्पादों को मूल्य–संवर्धित करके औद्योगिक उत्पाद उत्पन्न किए जिन्होंने देशों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार प्रौद्योगिकी, पूँजी और श्रम के प्रबंधन ने आर्थिक विकास में इस परिवर्तन के लिए प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान किया।

सूचना युग का जन्म पिछले दशक में हुआ। विश्व एक सूचना समाज में प्रवेश कर चुका है। यह समाज नेटवर्किंग के द्वारा स्पष्ट ज्ञान में और मूल्य संवर्धन करके आर्थिक विकास प्राप्त करता है। इस समाज में अब कनेक्टिविटी और सॉफ्टवेयर उत्पाद देशों की अर्थव्यवस्था को संचालित कर रहे हैं। आनेवाला कल का विश्व ज्ञान को उसके सबसे अधिक विस्तृत रूप में पहचानेगा और नेटवर्क पर्यावरण में नवीन ज्ञान–आधारित उत्पादों/सेवाओं के द्वारा उत्पादों में और मूल्य–संवर्धन करेगा। ये बौद्धिक उत्पाद बड़े पैमाने पर देशों के आर्थिक विकास में योगदान करेंगे।

कौशल, प्रतिभा, कल्पना–शक्ति और लोगों की सम्यतागत शक्ति किसी देश की मूल्यवान संपदा होती है। भूमंडलीकरण द्वारा प्रतियोगिता को प्रेरित किए जाने के साथ–साथ विभिन्न देशों में प्रमुख भिन्नकारक विशेषता होगी इन प्राकृतिक क्षमताओं का पूर्ण लाभ उठाने और आवश्यक प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान करने की उनके लोगों की योग्यता। इस व्यक्तिनिष्ठ ज्ञान, अनुभव, कल्पना तथा हमें अच्छा मानव बनाने वाली सभी प्रवृत्तियों को अपने देश की आवश्यकताओं तथा क्षमताओं के अनुकूल योजनाओं को प्रतिपादित करने के लिए समन्वित किया जाना चाहिए। ज्ञान प्राप्ति तथा दक्षताओं में प्रशिक्षण के साथ यह ज्ञान प्रतिस्पर्धात्मक होने के लिए अनिवार्य आंतरिक शक्ति प्रदान करेगा। यह अभी और भविष्य में आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय शक्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व होगा।

इस प्रकार इक्कीसवीं शताब्दी में पूँजी या श्रम के अपेक्षाकृत ज्ञान प्राथमिक उत्पादन संसाध्न है। इस विद्यमान ज्ञान का सफल उपयोग बेहतर स्वास्थ्य, शिक्षा, आधारभूत तंत्रा तथा अन्य सामाजिक सूचकों के रूप में देश के लिए निर्माण तथा संपोषण, बौद्धिक कर्मियों को विकसित करना तथा नए ज्ञान के निर्माण, विकास और दोहन द्वारा उनकी उत्पादकता बढ़ाना ज्ञान समाज की संपन्नता निर्धारित करने में प्रमुख कारक होंगे। ऐसे बौद्धिक समाज के दो महत्वपूर्ण घटक हैं – सामाजिक परिवर्तन तथा ध्न उत्पत्ति। डॉ॰ कलाम इस बात पर वृहत् चर्चा करते हैं कि भारत एक दशक के अंदर अपनी अनूठी क्षमताओं का लाभ उठाते हुए किस प्रकार खुद को एक पूर्ण बौद्धिक समाज और फिर एक समन्वित बौद्धिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन कर सकता है।

स्वतंत्रता के बाद के भारत ने अपनी पहली पंचवर्षीय योजना शुरू की। इसने महत्वपूर्ण उद्योगों की स्थापना और आधारभूत ढाँचे के निर्माण को प्रेरित किया। '70 के दशक में पहले हरित क्रांति के परिणाम देखने को मिले, जिसने भारत को खाद्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाया। ऑपरेशन फ्लड ने भारत को निश्चित समयावधि में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक बनाया। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में भी कापफी विकास देखने को मिला और कई अनुसंधान व विकास और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थानों की स्थापना हुईं, जिनका नेतृत्व विभिन्न क्षेत्रों के योग्य नेता कर रहे थे। इसने उच्च प्रौद्योगिकी मिशनों के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया।

भारत के उपग्रह तथा उपग्रह प्रक्षेपण यान कार्यक्रमों द्वारा रखे गए ठोस आधार ने देश को किसी प्रकार का उपग्रह डिजाइन तथा विकसित करने और उसे अपनी ही धरती से अपने प्रक्षेपण यानों द्वारा कक्षा में प्रक्षेपित करने की क्षमता प्रदान की है। पी.एस.एल.वी.सी–5 के सातवीं सफल उड़ान ने, जिसमें रिर्सोस सैट–1 को सन सिंक्रोनस ऑरबिट में स्थापित किया गया, स्वदेशी योग्यता में भारत की क्षमता को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार, भारत किसी भी प्रकार की मिसाइल या मुखाग्र को डिजाइन करने, विकसित करने तथा उत्पादित करने में सक्षम है। भारतीय सेना में 'पृथ्वी' तथा 'अग्नि' को शामिल किया जाना इस स्वदेशी क्षमता का प्रमाण है। परमाणु ऊर्जा उत्पत्ति तथा अस्त्र विकास में हमारी उपलब्धियाँ विकसित विश्व के मुकाबले की हैं।

भारतीय सॉफ्टवेयर अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक बाजार में अच्छा प्रदर्शन कर रहा है। ऐसे परिवर्तन के लिए युवा

उद्यमियों का विशाल समूह प्रशंसनीय है। हमारा कुशल जन–संसाधन विश्व में सबसे इच्छित संसाधनों में से एक है। यह विकसित विश्व के आर्थिक विकास में भारतीय वैज्ञानिकों व उद्यमियों के बड़े योगदान से स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त अपनी जनसंख्या तथा शिक्षित जनशक्ति की उपलब्धता के कारण भारत तुरंत बौद्धिक कर्मियों की विशाल संख्या तैयार कर सकने में सक्षम है, जिसमें बहुत कम विकसित देश सक्षम है।

भारत के पास कुछ ऐसी संपदाएँ तथा लाभ हैं जिनके बारे में विश्व के कुछ देश गर्व से दावा कर सकते हैं। हमें अपने गौरवशाली अतीत और वर्तमान योगदानों तथा अपने भविष्य की रूपरेखा बनाने के लिए प्राप्त प्रतिस्पर्धात्मक लाभ को पहचानना चाहिए। विश्व एक बौद्धिक समाज में परिवर्तित हो रहा है, जहाँ समन्वित ज्ञान शक्ति तथा धन का श्रोत होगा। यही समय है, जब भारत खुद को एक बौद्धिक शक्ति में बदलने और फिर अगले दो दशकों के भीतर एक विकसित देश बनने के लिए इस अवसर का लाभ उठा सकता है। इस रूपांतरण के लिए यह जानना आवश्यक है कि हम प्रतिस्पर्धात्मकता के मामले में कहाँ हैं, जो एक बौद्धिक शक्ति बनने की दिशा में अग्रसर होने के लिए वास्तविक इंजन है।

नवीन प्रयोग के प्रक्रिया के द्वारा ही ज्ञान धन में परिवर्तित होता है। इसलिए एक नवप्रवर्तन प्रणाली स्थापित किस जाने की अत्यंत आवश्यकता है जिसमें फर्मों, ज्ञान उत्पादक संस्थानों, दोनों को जोड़नेवाले संस्थानों और उपभोक्ताओं का नेटवर्क शामिल होगा, जिससे एक उत्पादक शृंखला निर्मित होगी। ऐसे संगठन के साथ नवप्रवर्तन प्रणाली वैश्विक ज्ञान के बढ़ते भंडार को ग्रहण करेगी, उसे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढालेगी और अंततः नया ज्ञान तथा प्रौद्योगिकी सृजित करेगी। भारत को वैश्विक बाजार में अपनी प्रतिस्पर्धात्मकता को सुधरने के लिए ऐसी प्रणालियाँ विकसित करनी चाहिए।

प्रतिस्पर्धात्मकता बौद्धिक शक्ति से प्राप्त होती है जो प्रौद्योगिकी से बल–बर्धित होती है और प्रौद्योगिकी को पूँजी से शक्ति प्राप्त होती है। कृषि समाज में प्रतिस्पर्धात्मकता मानव शक्ति से प्राप्त होती थी। औद्योगिक समाज के मामले में प्रतिस्पर्धात्मकता पूरी तरह प्रौद्योगिकी, निर्माण उपकरण तथा मशीनों से प्राप्त होती थी। एक सूचना समाज में प्रतिस्पर्धात्मकता सहयोग, संसाधनों और क्षमताओं की नेटवर्किंग की योग्यता से आती है। आगामी बौद्धिक समाज में प्रतिस्पर्धत्मकता सभी प्रकार के ज्ञान को पहचानने तथा समन्वित करने की योग्यता से प्राप्त होगी, जिससे मानव प्रयास के प्रत्येक क्षेत्र में नवप्रवर्तन को प्रोत्साहन मिलेगा।

ज्ञान सामाजिक विकास का भी प्रेरक रहा है। ज्ञान के निर्माण, अवशोषण, प्रसार, सुरक्षा तथा प्रयोग की क्षमतावाला समाज आर्थिक समृद्धि तथा सामाजिक रूपांतरण को प्रोत्साहित कर सकता है। सामाजिक रूपांतरण शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि तथा शासन के विकास के माध्यम से सामने आएगा। इसके परिणामस्वरूप रोजगार की उत्पत्ति, उच्च उत्पादकता तथा ग्रामीण संपन्नता आएगी। इस क्षमता को पहचानते हुए भारत के योजना आयोग ने भारत को एक बौद्धिक शक्ति के रूप में रूपांतरित करने के लिए कार्य–योजनाएँ विकसित करने के उद्देश्य से एक टास्क फोर्स गठित की।

इस टास्क समूह ने इन केंद्रीय क्षेत्रों की भी पहचान की है, जो एक बौद्धिक समाज की ओर हमारे कदमों का नेतृत्व करेंगे– सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, मौसम पूर्वानुमान, आपदा प्रबंधन, टेलीमेडिसिन तथा टेलीशिक्षा, देशी बौद्धिक उत्पादों के उत्पादन की प्रौद्योगिकी, सेवा–क्षेत्र तथा इन्फोटोनमेंट, सूचना तथा मनोरंजन के मिश्रण के परिणामस्वरूप एक उभरता क्षेत्र। इन केंद्रीय प्रौद्योगिकियों को सौभाग्यवश सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा एक–दूसरे से जोड़ा जा सकता है।

इस प्रकार वांछित बौद्धिक समाज बनाने लिए विभिन्न प्रौद्योगिकियों और प्रबंधन संरचनाओं को समन्वित करना आवश्यक है। इस बात को पहचानना होगा कि एक सूचना प्रौद्योगिकी–प्रेरित समाज तथा ज्ञान–प्रेरित समाज में भिन्नता प्रौद्योगिकी विकास इंजनों की है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपने लिए एक उपयुक्त स्थान बनाते हुए भारत देश बौद्धिक समाज में रूपांतरित होने के अवसर का लाभ उठाने के लिए पूरी तरह तैयार है। इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए, कलाम

के अनुसार, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की अनिवार्यता है।

हालाँकि बौद्धिक समाज का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन और धन–उत्पत्ति के रूप में द्वि–आयामी होता है, पर यदि भारत को एक बौद्धिक महाशक्ति के रूप में रूपांतरित होना है तो एक तीसरा आयाम उभरता है। एक बौद्धिक समाज को बरकरार रखने के लिए परिश्रम से अर्जित धन तथा रूपांतरित समाज को सुरक्षित रखना होगा, जो बौद्धिक समाज के दो आधार स्तंभ हैं। इस उद्देश्य का तीसरा आयाम है ज्ञान की सुरक्षा।

बौद्धिक महाशक्ति का दर्जा अपने साथ बौद्धिक संपदा अधिकार को मजबूत करने और विस्तृत जैविक तथा सूक्ष्मजीवी संसाधनों को सुरक्षित करने का गुरूतर उत्तरदायित्व भी लाता है। हमारे प्राचीन ज्ञान और संस्कृति को कई दिशाओं से होने वाले विभिन्न हमलों से बचाया जाना चाहिए। इस प्रकार एक बौद्धिक महाशक्ति के दो महत्वपूर्ण पहलू होते हैं– आर्थिक संपन्न्ता और राष्ट्रीय सुरक्षा। हमारे संचार नेटवर्क और सूचना उत्पादकों को निगरानी द्वारा इलेक्ट्रॉनिक हमलों से बचना है और ऐसे हमलों को झेलने के लिए प्रौद्योगिकियों का निर्माण किया जाना है। इस प्रकार ज्ञान की सुरक्षा के लिए प्रमुख आवश्यकता दोहरी है। बौद्धिक संपदा अधिकारों और संबंधित मुद्दों के प्रति एक केंद्रित दृष्टिकोण होना चाहिए और सूचना सुरक्षा के लिए प्रौद्योगिकी निर्माण के क्षेत्र में बड़े निजी क्षेत्र–प्रयास आरंभ किए जाने चाहिए।

ज्ञान उत्पत्ति के लिए उपयुक्त रणनीतियों (जैसे– शिक्षा में सुधार, मानव संसाधनों का प्रशिक्षण, बौद्धिक संपदा अधिकार द्वारा ज्ञान के संरक्षण आदि के द्वारा) को अपनाकर प्रौद्योगिकी द्वारा ज्ञान के दोहन, आधारभूत तंत्र के विरूद्ध तथा उद्यम पूँजी को प्रोत्साहित करके बौद्धिक समाज विकसित किया जा सकता है। केंद्रीय शक्ति और विकास प्रारूप हर देश में भिन्न होते हैं। स्थिति के अनुसार, बौद्धिक समाज को बरकरार रखने के लिए आवश्यक आधारभूत तंत्र तथा प्रशिक्षण/शिक्षा के प्रकार का निर्णय करना चाहिए।

निष्कर्षतः डॉ॰ कलाम कहते हैं कि जैसे–जैसे विश्व एक बौद्धिक समाज में परिवर्तित हो रहा है, सूचना प्रौद्योगिकी, विशाल प्राकृतिक संसाधन तथा सबसे ऊपर 30 करोड़ जोशीले युवाओं सहित कुछ प्रौद्योगिकियों में केंद्रीय क्षमता के कारण भारत के पास एक बौद्धिक अर्थव्यवस्था बनने के लिए असीम अवसर हैं। समाज के रूपांतरण तथा देश के हित में धन उत्पन्न करने के लिए इस शक्ति का समुचित लाभ उठाना चाहिए। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण और कौशल विकास पर अत्यध्कि बल देकर बौद्धिक समाज की स्थापना भारत में बहुत जल्द ही किया जा सकता है। हमने ज्ञान की शक्ति तथा कुछ मिशन मोड कार्यक्रमों से प्राप्त प्रतिस्पर्धात्मक लाभ को देखा है। समन्वित बौद्धिक अर्थव्यवस्था के साथ भारत सन् 2020 तक निश्चित रूप से एक विकसित देश बन जाएगा। कलाम के अनुसार इस महान् स्वप्न को मिशन के रूप में रूपांतरित करना चाहिए।[3]

शिक्षा में नव–प्रवर्त्तन व नवाचार पर जोर देते हुए अब्दुल कलाम कहते हैं कि हमें एक ऐसी शिक्षा–प्रणाली के बारे में सोचना होगा, जिससे रोजमर्रा के लिए जरूरी शिक्षा के साथ–साथ गंभीर विषयों की शिक्षा में कहें तो किताबी शिक्षा और जीवन के लिए उपयोगी शिक्षा दोनों साथ–साथ चले।[4]

संदर्भ :–

1. अब्दुल कलाम, ए.पी.जे. तथा पिल्लै, ए॰ शिवताणु (2013) मेरे सपनों का भारत, श्रीमती दीपिका रानी अनूदित, इनवीजनिंग एन इम्पावर्ड नेशन का हिंदी अनुवाद, नई दिल्ली, प्रभात पेपरबैक्स, पृ॰ 35–39
2. ड्रकर, पीटर एपफ. (2002), मैनेजिंग द नेक्स्ट सोसायटी, ट्रूमेन टैली बुक्स
3. अब्दुल कलाम, ए.पी.जे. तथा पिल्लै, ए. शिवताणु (2013), ऊपर उल्लिखित, पृ॰ 142–156
4. अब्दुल कलाम, ए.पी.जे. तथा तिवारी, अरूण कुमार (2013) विजयी भव, श्री अखिलेश अनूदित यू आर बोर्न टू ब्लॉजम, नई दिल्ली : प्रभात पेपर बैक्स, पृ॰ 95–97

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 57-59

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कर्पूरी ठाकुर का राजनीतिक सफरनामा : प्रबल नेतृत्व से समर्थन–क्षरण तक

–अफजल इकबाल

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

यह प्रश्न बहुधा उठता है कि एक राजनीतिक रूप से प्रभावहीन अल्पसंख्यक जाति के सदस्य होने के बावजूद कर्पूरी ठाकुर कैसे बिहार की राजनीति का नेतृत्व करने के काबिल हुए और यहाँ तक कि बिहार के मुख्यमंत्री तक बन गए? इसका मुख्य कारण युगारंभिक था। यद्यपि 1960 के दशक तक प्रबल पिछड़े वर्ग–यादव, कुर्मी और कोइरी–दुर्जेय सामाजिक और राजनीतिक ताकतों के रूप में उभर चुके थे, तथापि प्रबल पिछड़े वर्गों के बीच उस कद के नेता नहीं थे जो उनके हितों को व्यक्त कर सके और राज्य स्तर पर उनका नेतृत्व कर सके। इसलिए उनलोगों ने कर्पूरी ठाकुर को अपने नेता के रूप में स्वीकार किया जब तक उनके कद के नेता उनलोगों के बीच नहीं उभरे। ऐसी स्थिति 1980 तक बरकरार रही। इस समय तक दो महत्वपूर्ण उद्विकासों ने जगह लिए। आरक्षण नीति जो मुख्य पिछड़े वर्गों को लाभान्वित करने का लक्ष्य अथवा बिहार में समाजवादियों का कार्यावली था, एक यथार्थ बन गया था।

दूसरे, प्रबल ओ. बी.सी. (यादव तथा कुर्मी) तथा दलितों (उदाहरणार्थ राम बिलास पासवान) के मध्य राजनीतिक नेतृत्व की एक पीढ़ी जिसे उनकी राजनीति में प्रवेश के आरंभिक चरण से कर्पूरी ठाकुर का संरक्षण प्राप्त था, उभर चुका था। उन जातियों के कुछ नेता निसंदेह पहले भी थे। लेकिन नेतृत्व के इस पीढ़ी के असदृश, पूर्वगामी नेतागण कांग्रेस से संबद्ध थे जिन्होंने पिछड़े वर्गों के हितों को प्रवर्तित नहीं किया। नेतृत्व की पीढ़ी को एक वैकल्पिक कार्यावली था, अर्थात् समाजवादी लिप्तता' के साथ पिछड़े वर्गों के मुद्दे।

1979 में कर्पूरी ठाकुर की सरकार के गिरने के बाद अल्पकालीन अवधि के अन्तर्गत, इस नयी पीढ़ी ने अपने जाजियों के संख्यात्मक महत्व को महसूस किया एवं कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व को चुनौती दिया जो अपनी जाति के अल्पसंख्यक प्रस्थिति के कारण अक्षम थे।[1] कर्पूरी ठाकुर की स्थिति की तुलना चरण सिंह से की जा सकती है। चरण सिंह जाट समुदाय से आते थे जिसका संख्यात्मक सामर्थ्य यादव सरीखे अन्य प्रबल जातियों से कम था, तथापि वे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रबल समूहों में से एक थे। लेकिन कर्पूरी ठाकुर के असदृश, मुलायम सिंह यादव द्वारा साकार गैर–जाट प्रबल ओ.बी.सी. की नयी पीढ़ी चरण सिंह के नेतृत्व को चुनौती नहीं दे पाया था। चरण सिंह के उत्तरगामी चरण में यू. पी. राजनीति में जाट के प्रभुत्व को यादव जैसे संख्यात्मक रूप से बड़ी और भौगोलिक रूप से ज्यादा विस्तारित जाति द्वारा चुनौती दी गई। चरण सिंह के उत्तरवर्त्ती युग में जाटों के हाशियाकरण के परिणामस्वरूप पृथक हरित प्रदेश की माँग उठने लगी।[2]

1980 के दशक में यहाँ तक कि चरण सिंह भी कर्पूरी ठाकुर के प्रति अपना समर्थन वापस ले लिया। शायद चरण सिंह ने अब यादवों के बीच नव–उद्गामी नेतृत्व के महत्व को महसूस कर लिया था एवं कर्पूरी ठाकुर के समुदाय के महत्वहीन सामर्थ्य का पूर्वानुमान लगा लिया था।[3] विधान सभा अध्यक्ष, शिव चन्द्र झा, 'एक वरीय कांग्रेस एम.एल.ए. जो कर्पूरी को तिरस्कृत करते थे'[4] के मिली भगत से, यादव एम.एल.ए. जो लोकदल एम.एल.ए. के आधे को संगठित किया,

लोक दल में कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व को चुनौती दी। जल्दी ही उन्हें अनूप यादव द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जो विधान सभा में विरोधी दल के नेता बने। बाद में अनूप यादव को लालू यादव द्वारा प्रेतिस्थापित किया गया। लालू यादव ने कर्पूरी ठाकुर को 'कपटी' ठाकुर का नाम दिया।[5]

कर्पूरी ठाकुर ने शोक प्रकट किया, ' अगर मैं यादव के घर में जन्म लिया होता तो मुझे निरादर का सामना नहीं करना पड़ता।'[6] कर्पूरी ठाकुर को बिहार के उद्‌गामी दलित समाजवादी नेता, राम विलास पासवान से भी चुनौती का सामना करना पड़ा। सचमुच ये समाजवादी नेतागण कर्पूरी ठाकुर के फ्रैंकेन्सटीन थे।[7] यादव के द्वारा विरोधी दल के नेता के रूप में उपदस्थ होने के तीन वर्षों के अन्दर कर्पूरी ठाकुर का देहावसान हो गया।

यह कहना असमर्थनीय नहीं होगा कि यद्यपि कर्पूरी ठाकुर एक प्रतिबद्ध समाजवादी नेता थे, लेकिन वह यादवों तथा कुर्मियों जैसे उद्‌गामी प्रबल पिछड़े वर्गों के नियंत्रण से मुक्त नहीं थे। प्रबल ओ.बी.सी. जातियों के द्वारा चुनौती दिए जाने के बाद एवं आरक्षण नीति के कारण पहले से ही अलग–थलग उच्च जातियों के होने के कारण, कर्पूरी ठाकुर के पास सहारा लेने के लिए कोई भी दुर्जेय सामाजिक समूह नहीं बचा था। यह शायद उन्हें संभ्रमित मानसिक स्थिति और बेबसी की स्थिति पैदा किया। कर्पूरी ठाकुर के निम्नलिखित कथन जिसे उसने बेलची नरसंहार के संदर्भ में जारी किया, में उनकी बेबसी स्पष्ट रूप से झलक रहा है, ''राज्य संरचना के अंतर्गत, कृषक मजदूरों के कल्याण का देखभाल करने के लिए मैंने बिहार में सबसे अच्छे पदाधिकारियों को लगा रखा है। इसके अलावे मैं क्या कर सकता हूँ।''[8]

शायद वह समर्थन के लिए वैकल्पिक सामाजिक समूहों की तलाश कर रहे थे– अत्यंत पिछड़ा वर्ग, दलित और गरीब। गरीब/दलितों को सशस्त्र करने का उनका प्रस्ताव उन्हें नक्सलवादियों के करीब ला दिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1980 के दशक के मध्य, जब उसने हरिजनों को सशस्त्र करने का सुझाव दिया, एक ऐसा समय था जब नक्सलवादियों ने भोजपुर जिला के अपने पारंपरिक आधार के बाहर बिहार में अपनी उपस्थिति पहली बार दर्ज कराया।[9]

ऐसा प्रतीत होता है कि भूमिहीन दलितों और गरीबों के सशस्त्रीकरण का सुझाव देने के पूर्व ही अपना नक्सलवादियों के करीब आने के बाद, कर्पूरी ठाकुर ने एम.बी.सी. जातियों के बीच अपना समर्थन आधार समेकित करने की आवश्यकता को महसूस किया। बिहार प्रादेशिक कैवर्त सम्मेलन का 19 जून 1983 को कटिहार में उद्‌घाटन करते हुए उसने उनके बीच जागरण सर्जना करने, संगठन की स्थापना करने, अपने सामर्थ्य को दिखाने तथा सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने दो संघर्षों की पहचान की– पहला आर्थिक क्रांति के लिए तथा दूसरा सामाजिक क्रांति के लिए एवं उच्चतर पैमाने के संघर्ष की आवश्यकता। उन्होंने ब्रिटिश शासन को शिक्षा का अधिकार सामाजिक क्रांति के लिए एवं उच्चतर पैमाने के संघर्ष की आवश्यकता। उन्होंने ब्रिटिश शासन को शिक्षा का अधिकार की उपलब्धता के लिए जिम्मेदार ठहराया। कर्पूरी ठाकुर द्वारा ऐसा गुणारोपण दलित बुद्धिजीवियों के विचारों के समान प्रतीत होता है। ठाकुर के शब्दों में, ''ब्रिटिश के विरूद्ध कई लोगों ने युद्ध किया जिसमें मैं भी एक हूँ। अगर ब्रिटिश सरकार नहीं होता तो हिन्दुस्तान में हमें शिक्षा का अधिकार नहीं प्राप्त होता। मैं प्रमाण के साथ कह सकता हूँ कि राजपूत जो शिक्षित नहीं होना चाहिए था, को युद्ध विद्या सीखना चाहिए था... वैश्य जिनकी उपजीविका वाणिज्य और व्यवसाय था, को शिक्षित होना नहीं चाहिए था। शूद्रों को तो बिलकुल शिक्षित नहीं होना चाहिए था। अध्ययन करना उनके लिए पाप करने के समान था। हमारा देश ऐसा था।

यही कारण है कि सामाजिक क्रांति करना जरूरी है..... अगर हम दो प्रकार की युद्धों को जीतना चाहते हैं (आर्थिक क्रांति और सामाजिक क्रांति) तो एक संगठन की जरूरत है। चेतना (जागरण) की जरूरत है। मैं नियमित रूप से कह रहा हूँ, भीख मांग कर कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकेगा –भीख मांग कर अधिकार प्राप्त नहीं होंगे, सत्ता प्राप्त नहीं होंगे। अगर तुम प्राप्त करना चाहते हो तो जागो। अगर तुम प्राप्त करना चाहते हो तो जागो और आगे बढ़ो।[10]

14 फरवरी 1988, उनके देहांत से तीन दिन पूर्व, पटना के विधायक क्लब, सभा कक्ष पटना में आयोजित एकलव्य जयंती समारोह के अवसर पर उद्‌घाटन व्याख्यान में, कर्पूरी ठाकुर ने शोक प्रकट किया कि विभिन्न जातियाँ पिछड़े

(शायद उनका मकसद एम.बी.सी. से था चूंकि उस समय तक वे यादवों जैसे उच्च ओ.बी.सी. द्वारा हाशियाकृत हो गए थे), हरिजन, आदिवासी जो जाति, प्रथा द्वारा सामूहिक रूप से पीड़ित हो चुके हैं, आपस में विभाजित हैं। उन्होंने सुझाव दिया कि अलग जाति–आधारित संगठनें महज दिखावे हैं। उन्होंने जोर देकर कहा कि सामूहिक संगठन की जरूरत थी एवं एक बार यह सामूहिक संगठन राजनीतिक रूप से व्यवहार्य और गोचर हो गया, तब अपवर्जित समूहों के लिए न्याय किया जाएगा।[11]

संदर्भ :–

1. सिन्हा, अरुण (2011) नीतीश कुमार एंड दी राइज ऑफ बिहार, दिल्ली : पेनग्युन/वीकींग न्यू, पृ. 121–123.
2. सिंह, जगपाल (2001) ''पॉलिटिक्स ऑफ हरिज प्रदेश : द केस ऑफ वेस्टर्न यू.पी. एज ए सेपरेट स्टेट'', इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 33 (31), 4 अगस्त, 2962–67.
3. फ्रैनकेल, फ्रैनासिन आर. (1989) ''कास्ट, लैंड एंड डोमिनेन्स इन बिहार : ब्रेकडाउन ऑफ द ब्राह्मनिकल सोशल ऑर्डर'', फ्रैनसिन आर. फ्रैनकेल व एम.एस. ए. राव (संपा.) डोमिनेन्स एंड स्टेट पावर इन मॉडर्न इंडिया :डिक्लाइन ऑफ ए सोशल ऑर्डर, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 88–89.
4. सिन्हा, अरूण (2011), पूर्वोल्लेखित, पृ. 123.
5. पूर्वोक्त
6. पूर्वोक्त, पृ. 122
7. पूर्वोक्त, पृ. 121
8. द टाइम्स ऑफ इंडिया, बंबई संस्करण, 18 फरवरी, 1988।
9. मेंडलसोन, ओलिवर एंड मरीका विसजीएनी (1998) द अनटचेबल्स : सबोर्डिनेशन, पोवर्टी एंड द स्टेट इन मॉडर्न इंडिया, कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. ठाकुर कर्पूरी (2008) उद्घाटन भाषण : बिहार प्रादेशिक कैवर्त्त सम्मेलन, 19 जून 1983, महेश्वरी एकेडमी कटिहार, प्रकाशित –उदय कान्त चौधरी (संपा.) (पटना : अति पिछड़ा वर्ग संघ).
11. ठाकुर, कर्पूरी (2008 क) उद्घाटन भाषण : एकलव्य समारोह, 14 फरवरी 1988, विधायक क्लब, सभाकक्ष, पटना, प्रकाशित–उदय कांत चौधरी (संपा.) (पटना : अति पिछड़ा दर्पण, प्रकाशक : बिहार राज्य अत्यंत पिछड़ा वर्ग संघ)

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 60-65

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अजन्ता के भित्ति चित्रों में भाव–सौन्दर्य

–डॉ0 नीता शाह

असिस्टैण्ट प्रोफेसर (हिन्दी), स्व0 चन्द्र सिंह शाही रा0 म0 कपकोट, बागेश्वर।

चित्रकला की महनीय विभूति, सत्यं, शिवं, सौन्दर्य का पूँजीभूत समन्वय, कला की प्रौढ़ परिणति तथा उदात्त अभिव्यक्ति, देवलोक की गाथा को मृत्यु लोक के उपकरणों में गाती हुई, भूतल का आश्चर्य एवं भारत का गर्व अजन्ता की कला देशकाल की क्षुद्र सीमाओं को लाँघकर विश्व की परम निधि बन गई है। अजन्ता के छोटे से गॉव के निवासियों के अनुसार स्वर्गिक जीवन की एकरसता से उबकर देवी–देवता इन्द्र की आज्ञा से इस शर्त के अनुसार पृथ्वी पर आनंद मनाने आये कि भोर होने से पहले वापस न लौटने पर स्वर्ग के द्वार उनके लिए बंद हो जायेगे। ये देवता पृथ्वी पर घूमते हुए विध्यांचल में उस स्थान पर पहुॅचे जहाँ बाघोरा नदी सर्पाकार बहती हुई सात प्रपातों के रूप में गिरकर सप्त कुंड में परिवर्तित हो जाती है। घाटी के सौन्दर्य तथा अपने आनंद की अनुभूति में मग्न इन्द्र के आदेशों को भूलने के कारण भोर होने पर स्वर्ग न लौट सके तथा सदा के लिए पृथ्वी पर रह गये। उनके अभिशप्त शरीर भित्ति चित्रों तथा पाषाण प्रतिमाओं में बदल गये।

भारतीय कला के कीर्तिस्तम्भ अजन्ता के भित्ति चित्र कलात्मकता के साथ–साथ भावाभिव्यंजना की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। अजन्ता के भित्ति चित्रों में भावाभिव्यंजना के सौन्दर्य की पराकाष्ठा है, यदि यह कहा जाये तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। अजन्ता के भित्ति चित्र षडांग के सभी छः अंगों के अनुरूप (रूपभेद प्रमाणनि भाव लावण्य योजनम्, सादृश्य वर्णिकाभंग इति चित्र षडकम)[1] निरूपित हुए हैं।

भाव ही कला की आत्मा है। "सामाजिकान् श्रृंगारादिरसानां भावना कारयत्यतों भाव इत्युच्यते"[2]। किसी भी वस्तु के विषय वस्तु के माध्यम से ही भावों की अभिव्यक्ति की जाती है। साहित्य एवं मनोविज्ञान मे वर्णित सभी भावों का अवलोकन अजन्ता के भित्तिचित्रों में किया जा सकता है। अजन्ता के भित्ति चित्रों की विषय वस्तु इतनी वृहद् है इसीलिए उसमें सभी हार्दिक तथा मानसिक भावों की प्राजंल व्यंजना है। कलाकारों ने यथार्थ जगत के क्रियाकलापों को तो अंकित किया ही है साथ ही लौकिकता से परे आध्यात्मिक अनुभूतियों की भी कल्पना द्वारा इन भित्ति चित्रों में व्यंजना की है। इगदीद आल के अनुसार –"अजन्ता नाम स्वयं अंधकार में चमकते हुए कल्पना युक्त इन्द्रधनुष के समान है। वर्णो के रंजन का उद्देश्य पत्थरों की रूक्ष त्वचा को सुशोभित करना है [3]।

भाव मन की वह स्थिति है जो किसी विशेष वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति किसी विशेष दशा में होती है। मनुष्य के हृदय रूपी सागर में असंख्य भाव रूपी रत्न तरंगित होते रहते हैं, जिनकी गणना सरल कार्य नही है फिर भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के ज्ञाता, काव्य प्रकाश के आचार्यो तथा साहित्यदर्पण में कुछ ऐसे भावों ,संवेगो तथा मनाविकारों का निर्देश दिया है जिसमें सभी प्रकार की मनोवृत्तियों का समावेश किया जा सकता है। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, विस्मय, विरक्ति ऐसे ही संस्कार हैं जो मानव के मानस पटल पर अनुभव परम्परा के रूप में अंकित हैं। जीवन के मूल मनोवेग नौ ही हैं। इनसे उत्पन्न हुआ प्राणी इतनी ही वासनाओं से युक्त रहता है, साहित्य दर्पण में नौ स्थाई भाव, तैंतीस संचारी भाव, आठ सात्विक भावों (स्तम्भ, स्वेद ,रोमांच,स्वरभंग, कम्पन, वैवर्ण्य, अश्रु, मूर्च्छा) मानव प्रकृति के तीन गुणों (सत्व, रज, तम) में सभी भावों एवं रसों को आश्रित माना गया है। सत्व से शान्त, करूण, रज से श्रृंगार, वीर,

हास्य, तम से अद्भुत,रौद्र, वीभत्स, भयानक रस की निष्पत्ति मानी हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी नौ रसों के अनुरूप प्रत्येक भाव एवं रस से सम्बन्धित लक्षण दिये हैं। वास्तव में "भाव विहीन चित्र सूखे व्रृक्ष एवं मृत व्यक्ति के समान है" ये पक्तियाँ कला में भाव के महत्व को स्पष्ट करती हैं। भारतीय चित्रकारों ने चेष्टाओं की अपेक्षा मनोवृत्तियों के चित्रांकन का विशेष ध्यान रक्खा है। मेघदूत के विरही यक्ष का मेघ के प्रति कथन – मेघ या देवताओं की पूजा में संलग्न या अनुमान से की जाने वाली विरह से दुबली मेरी आकृति का चित्र खींचती हुई वह मेरी प्रियतमा तुझे शीघ्र दिखाई पड़ेगी[4] के आधार पर भाव के वाह्य एवं मानसिक दो रूप लक्षित होते हैं।

वाचस्पति गैरोला के अनुसार –"भावाभिव्यजना के दो रूप हैं प्रकट और प्रच्छन्न। प्रकट भावों को हम आँखों से पकड़ सकते है परन्तु उनके प्रच्छन्न रूप को व्यंजना के द्वारा अनुभव कर सकते हैं .....कलाकार की महानता इसी में है कि वह भाव की गहनता को व्यंजित कर दे.....। चित्रकला में चित्रकार ही इतना भावुक व्यक्ति होता है कि मूक चित्र में भी भाव व्यंजित कर देता है। गैरोला की इस भाव विषयक परिभाषा से कलाकार के भावों का महत्त्व और बढ़ जाता है। उनके अनुसार भाव कहते हैं आकृति की भंगिमा को, उसके स्वभाव, मनोभाव एवं उसकी व्यंग्यात्मक प्रक्रिया को[5]। भारतीय शिल्प शास्त्रियों के अनुसार समभंग, अभंग, त्रिभंग, अतिभंग आसन्न मुद्रायें विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित नौ प्रकार की आकार मुद्रायें (अनृजु , सांचीकृत, अर्द्धविलोचन, पार्श्वागत, गण्डपरावृत्त, पृष्ठागत, परिवृत्त, समानत, श्रज्वागत) समरांगण सूत्रधार में उल्लिखत अट्ठाईस प्रकार की असंयुक्त हस्त मुद्राऍ चौदह संयुक्त तथा विभिन्न शास्त्रों पुराणों में वर्णित हस्तमुद्राओं के अतिरिक्त भी अनेकानेक हस्तमुद्राऍ अजन्ता के भित्ति चित्रों में प्राप्त होती है जो भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की परिचायक हैं। कलाकारों ने भाव व्यंजना में विशेष सहायक भिन्न भिन्न रंगो का प्रयोग इन भित्ति चित्रों में किया है। मुकुल चन्द्र डे –"अजन्ता में उन वास्तविक दृश्यों का चित्रांकन मिलता है जो कि कलाकारों के नेत्रों मे पहले से ही विद्यमान थे, क्योंकि उसने समाज मे रहकर उनका निरीक्षण परीक्षण किया था और वह उनसे चिर परिचित था[6]।

अनेक आकृत्तियॉ होने पर भी प्रत्येक आकृति में समयानुकूल भाव व्यंजना अजन्ता के भित्तिचित्रों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। विमल दत्ता –"अजन्ता भित्ति चित्रों में वे भाव दिखाये गये हैं जो प्राणिमात्र के हृदय से नित्य प्रति निकलते रहते हैं अर्थात् सुख–दुःख, प्रेम, ईर्ष्या, राग–विराग, आनंद, उल्लास, संयोग, वियोग, दया, माया, ममता, कोध्र, घृणा, प्रेम इत्यादि वे भाव हैं जिनसे प्राणी हर समय घिरा रहता है तथा जिसमें वह स्वयं को भूला रहता है। इन विभिन्न मानवीय भावों से सारे चित्र सजीव हो उठे हैं [7]। भारतवर्ष की मानसिक प्रवृत्तियॉ अध्यात्म की ओर रही हैं अतः कलाकारों ने अजन्ता के भित्तिचित्रों में लौकिक जीवन एवं मानवीय भावों को रूपायित किया है उतना ही अलौकिक भावों का चित्रण भी। वासुदेवशरण अग्रवाले–"अजन्ता के विशिष्ट लक्षण, शुद्धता, भावों की सरलता स्वाभाविकता इत्यादि मे अति प्रभावशाली आध्यात्मिक उद्देश्य भी व्याप्त है जो काल पर्यन्त अजन्ता को न ललकारने योग्य महानता प्रदान करते हैं [8]। नवरसों एवं संस्कृत अलंकार शास्त्रों मे वर्णित संवेगो का चित्रण अजन्ता भित्ति चित्रों में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं –

(1) रतिभाव :-

अजन्ता के भित्ति चित्रों में सर्वाधिक चित्र रति भाव के ही प्राप्त होते है, इसका कारण श्रृंगार का रस राजत्व अथवा व्यापकता हो सकती है। प्रेम मनोवैज्ञानिक रूप से जीवन धारणा का अनिवार्य तत्व है जो जीवित रहने की प्रेरणा देने वाली है तथा समाज में लोकरंजन का कार्य भी करती है। गुफा एक (मिथुन आकृतियॉ, शक्ति पन्ड्रा, मयूर युगल, प्रेमी युगल) गुफा दो (अरून्धती, कल हंस युगल) गुफा दस (जल विहार करते गज दम्पति) गुफा सत्रह (प्रेमी बॉहों में प्रेमिका, मद्यपान करते हुए राजा–रानी तथा दम्पति) में रति भाव के दर्शन होते हैं। रति भाव की अभिव्यक्ति के लिए कलाकारों ने मिथुनाकृतियों की आसनिक मुद्राऍ, नेत्रों की भंगिमाऍ, प्रतीकात्मक रंगो, सजीव रेखाओ, आकृतियों के शारीरिक अवयवों के माध्यम मे रूप में अपनाया है। अजन्ता का कलाकार नेत्रों की चितवन द्वारा रति भाव की अभिव्यक्ति में सफल हुआ है। पुरूष नेत्रों में प्रेमपूर्ण आग्रह तथा नारी के नेत्रों में लज्जा युक्त भाव है। रति भाव के सभी चित्रों में विरोधी रंग प्रयुक्त हुए हैं। श्याम वर्ण से बनाई नारी आकृतियॉ प्रेम का प्रतीक हैं। मानव आकृतियों को ही नहीं पशु–पक्षियों को भी रति

भाव से युक्त दिखाया है। रति भाव का चित्रण जिस रूप में कलाकार ने दिखाया है उससे प्रतीत होता है कि उस समय समाज में ये प्रवृत्तियॉ सहज रूप में विद्यमान थी।

(2) हास्य :-

गाम्भीर्य पूर्ण अजन्ता के भित्तिचित्रों में कलाकारों ने हास्य के छीटें यत्र –तत्र बिखेर दिये है। यूनानी आलोचक के शब्दों में– "मनुष्य ऐसा जीव है जो हँसता है। परन्तु प्रसन्नता प्रदर्शन सृष्टि के सभी प्राणी करते हैं। हास्य एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसे हम निःसंकोच प्रदर्शित करते हैं [9]। गुफा एक (विदूषक, बौने, दास की आकृति) गुफा दो (हरीति पंशिका, विदूषक) गुफा सत्रह (बंदर) में हास्य भाव प्रदर्शित है। अजन्ता के भित्ति चित्रों में उच्च कोटि का हास चित्रित है। आत्मनिष्ठ हास्य (जिसमें आकृति स्वयं हास्य लीन है जैसे मद्यपान करते दम्पति) परनिष्ठ हास्य (जिसमें विचित्र मुख मुद्रा, विकृत केश, कई घटना कृत्य) दर्शकों में हास्य उत्पन्न करते हैं। जैसे बड़े–बड़े सिर, छोटे–छोटे हाथ– पैर, विचित्र चेष्टाओं द्वारा हास्य उत्पन्न करते दो बौनों का चित्रण, कुबेर पंशिका के शिल्प चित्रों में पंशिका, सौ बच्चों के साथ पढ़ाते हुए शिक्षक की मूर्तियां (जिसमें पीछे बैठे बच्चे लड़ रहे हैं और शिक्षक इससे अनभिज्ञ है)। हास्य भावों की सृष्टि के लिए कलाकार ने वातावरण, मुद्राओं, आसन चेष्टाओं का आश्रय लिया है। वर्तमान समय की परिस्थिति में जकड़े मानवों के लिए यह सबसे उत्कृष्ट मनोरंजन के साधन हैं।

(3) क्रोध :-

सर्वाधिक आवेश युक्त भाव क्रोध के लिए शुक्ल जी ने लिखा है–"क्रोध शान्ति भंग करने वाला मनोविकार है, सब मनोविकारों से फुर्तीला है, सामाजिक जीवन में इसकी बराबर जरूरत पड़ती है[10]। अजन्ता के भित्ति चित्रों में आध्यात्मिक साधना में विघ्न डालने का प्रयत्न करते हुए दुष्टों के रौद्र रूप का चित्रण हुआ है। यद्यपि इनकी संख्या कम है तथापि भाव व्यंजना की दृष्टि से ये उत्तम हैं। इनके अल्प होने का कारण बौद्ध धर्म में प्रेम, अहिंसा के गुणों की प्रधानता हो सकता है। गुफा एक (मार के सैनिक, लड़ते हुए सांड) गुफा दो (राजा की आकृति, दया की भीख) गुफा सत्रह (राक्षसी आकृतियॉ) में क्रोध का भाव दर्शनीय है। जैसे सेनापति के चित्र में लम्बा–चौड़ा शरीर, भारी भुजायें, मुख मुद्रा में क्रोध का तीव्र आवेग, चढ़ी हुई भृकुटी, नेत्रों की रौद्र पूर्ण दृष्टि, सेनापति के बांयी ओर की सैनिक आकृति, बलपूर्वक दोनों हाथों से बुद्ध की ओर भाला फेंकते, क्रोध भाव व्यंजक राक्षसी आकृतियॉ, जिनकी फूली हुई लाल आँखें, सिर के खड़े बाल, विचित्र मुड़ी आकार की चमचमाती तलवारें, राक्षसियों के घुटने मोड़कर बैठने में क्रोध भाव की सफल व्यंजना बन पड़ी है। क्रोध की श्रेष्ठ व्यंजना हेतु दो सांडो की लड़ाई का दृश्य अनुपम है। क्रोध भाव की सफल अभिव्यंजना के लिए कलाकारों ने नेत्रों की चितवन, हस्त मुद्राओं की भंगिमाओं, चित्र के मूल भूत तत्वों–रेखा, रंग, आकार को अपनाया है। क्रोध की ये सशक्त अभिव्यक्तियां कलाकारों के प्राणी मनोवैज्ञान से परिचय का प्रतीक है। वाचस्पति गैरोला –"रौद्र रस के चित्र में कठोरता, क्रोध, हत्या और चमचमाते अस्त्र दिखाने चाहिए, राक्षसों के बाल खड़े हुए अंकित करने चाहिए नेत्रों में व्याकुलता का भाव होना चाहिए[11]। कलाकारों द्वारा इन मतो का प्रयोग भित्ति चित्रों में हुआ है।

(4) उत्साह :-

मानव मन की ऐसी वृत्ति उत्साह है जिसके कारण वह असाधारण कार्य करने के लिए प्रवृत होता है, उसके हृदय में आनंद, आशा, आत्मविश्वास और संतोष के भाव तरंगित होते रहते है। अजन्ता के भित्तिचित्रों में उत्साह भाव युक्त जो चित्र उपलब्ध हैं उसमें वीर रस युक्त चित्र अत्यल्प है। गुफा दो (पासां खेलने का दृश्य, शोभायागा (जुलूस), भेंट सहित उपासिकाएँ) गुफा सत्रह (युद्ध का दृश्य, श्वेत गजराज की वापसी, बधिक को मांस दान करते राजा, जूजक को पुत्रदान) में उत्साह भाव के चित्र उपलब्ध हैं। पांशा खेलने के दृश्य में राजा धनंजय घुटने मोड़े उचककर उत्साह, बांया बाजू हथेली केवल भूमि पर टिका, दाहिना हाथ पांशा फेंकने की मुद्रा में खेल के प्रति उत्साह, यक्ष द्वारा विधुर को जीत लेने पर शोभा यात्रा का आयेाजन, भेंट सहित उपासिकाओ के चित्रण मे श्रेष्ठ आसनिक मुद्रा, श्रृंगार, अंलकरण चलने की मुद्रा, गति में उत्साह भाव अवलोकनीय हैं। युद्ध दृश्य में हाथियो के साथ घुड़सवारो के आगे बढने, युद्धरत सैनिको के दृढ संकल्प,

चढ़ी हुई त्यौरियों में उत्साह, बेसंत्तसर जातक कथा में राजा द्वारा शोभ या उद्वेग से ब्राम्हण पुत्रों को दान देने की मुद्रा मे मोह रहित उत्साह, शिवि जातक कथा में मांस काटकर तराजू में रखने वाले दृश्य में दानवीरता का चित्रण उत्साह भाव का श्रेष्ठ अंकन हैं। जिसमें उत्साह भाव व्यंजक आकृतियां कष्ट हानि से विमुख साहसपूर्ण हैं।

(5) भय :-

अजन्ता के विचित्रो में भय व्यंजक चित्र अत्यल्प हैं। साहित्य में भय पर्याप्त भ्रान्ति एंव उपेंक्षा का विषय रहा हैं। अजन्ता के विभिन्न चित्रों मे वस्तुगत व्यंजना (जिसके अर्न्तगत चित्रित आकृतियों को भयभीत) तथा विषयी गत भाव व्यंजना (जिसमे आकृति के क्रियाकलापो द्वारा भय उत्पन्न कराना) द्वारा दर्शको में भयानक भावों का चित्रण किया गया हैं। कलाकार द्वारा साहित्य, मनोविज्ञान, चित्र कला में वर्णित प्रचलित माध्यम (अभिव्यक्ति की सहजता के लिए स्थान आसन मुद्राओ भंगिमाओं) का यथास्थान प्रयोग किया गया है। जैसे –तरुणीवध नामक चित्र में राजा द्वारा नंगी तलवार लिए एक स्त्री को दंड देने की मुद्रा, राजा की धड़ की तनकर बैठने की मुद्रा, राजा के क्रोध से सभी भयभीत आकृतियां, उनकी मानसिक दशा के चित्रण मे, मृग जातक कथा में भय से दौड़ते हुए मृग युगल, वाण लगने के भय से मृग द्वारा अपने पीछे के भाग को शरीर के पूर्व भाग की ओर समेटने मे भय की सफल अभिव्यंजना हुई है।

(6) जुगुप्सा- शुक्ल :-

सृष्टि विस्तार से अभ्यस्त होंने पर प्राणियो को कुछ विषय रुचिकर और कुछ विषय अरुचिकर प्रतीत होने लगते हैं। इन अरुचिकर विषयों के उपस्थित होने पर ज्ञान पथ से इन्हें दूर रखने की प्रेरणा करने वाला जो दुःख होता हैं उसे घृणा कहतें है[12]। प्रबल भाव युक्त होते हुए भी प्राचीन आचार्यों द्वारा घृणा पर विचार नहीं किया गया हैं। इस रस के सभी उदाहरण प्रायः युद्व भूमि या श्मशान से लिए गये हैं अजन्ता के भित्ति चित्रो में यह भाव नहीं के बराबर हैं। इस भाव के चित्रण में कलाकार ने विकृतियों का अंकन तो किया हैं लेकिन वे वीभत्स नहीं। ग्लानि को आकृति के माध्यम से उदार रुप में प्रस्तुत किया है। शिकारी द्वारा गजराज की पीठ पर बैठकर मांस काटते हुए, आग मे मांस भूनते हुए, मांस खा रही आकृति के मुँह से बाहर लटकता मांस दिखाकर दर्शक के मन में ग्लानि उत्पन्न कर दी है। चित्रकारों ने मानसिक घृणा को ही अपने चित्रो में व्यक्त किया है।

(7) विस्मय :-

आश्चर्य भाव की अभिव्यक्ति अजन्ता के भित्ति चित्रों में पग–पग पर है। चित्रांकित भाव–सौन्दर्य से दर्शक ठगे से रह जाते हैं। गुफाओं के अंचल से लेकर गुफाओं के लिए स्थान चयन, वास्तुकला की कुशलता, शिल्प चातुर्य तथा रंजन सभी विस्मयकारी हैं। महाजनक जातक कथा के अन्तर्गत नर्तकी को अद्भुत लय में मग्न नृत्य करते दिखाना, आकृतियों के वस्त्र, केश विन्यास, नेत्रों की श्रेष्ठ मुद्रा अदभुत रुप में अंकित है। चौड़ा खुला हुआ आकृति का मुँह, अद्भुत अंग– संचालन विस्मय भाव की सृष्टि में विशेष समर्थ हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वर्णित अद्भुत रस का वर्ण पीला के अनुसार पीले रंग का अधिक प्रयोग कलाकारों द्वारा किया गया है। भित्ति चित्रो में झुके चेहरों के साथ कपोल पर बांये हाथ की तर्जनी रखी आकृति में विस्मय से फैली चौड़ी आंखें, कमान– सदृश तिरछी भौंहे दर्शक के मन में भी आश्चर्य उत्पन्न करती हैं। हेमचन्द्र .."अश्रुपात, अतिनाद, उॅगलियों या कपड़ों का हिलना इत्यादि आश्चर्य की अभिव्यक्ति है... आँखें मुँह चौडे खुल जाते हैं, भौहें चढ़ जाती हैं, हृदय की धडकन श्वास गति बढ़ जाती है [13]।

(8) निर्वेद - कृष्णदेव झारी :-

"संसार में रहते हुए मनुष्य राग–द्वेष में मग्न रहता है और अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है किन्तु जब वह यह अनुभव करता है कि संसार तो असार है यहाँ सब वस्तुएं नाशवान है.....संसार में रहकर निःस्पृह जीवन बिताने वाली स्थिति अपेक्षाकृत ऊँची हैं [14]। सम्पूर्ण अजन्ता कला आध्यात्मिकता की परिचायक है। जनकोलाहल से दूर, सांसारिकता से परे विन्ध्य पर्वत के इस अंचल में मानो शान्ति, नीरवता का ही साम्राज्य है। निर्वेद भाव प्रधान चित्रों में बोधिसत्व, राजा महाजनक, बज्रपाणि, विधुर पंडित एवं अनुयायी, बुद्ध, यक्ष, अप्सरा के चित्र मुख्य हैं। 'मार विजय' नामक चित्र में मार

के प्रहारों का बुद्ध पर कोई प्रभाव न पड़ना, स्थिर निर्लिप्त आँखें उनके दृढ़ निश्चय, वासनाओं पर विजय, सांसारिक मायाजाल से मुक्त हो जाने की सूचक हैं। चित्र में कई भाव, संवेग होने पर भी निर्वेद केन्द्रीय भाव पर है। राजा महाजनक की आकृति में जनक के दाहिने हाथ की मुद्रा सांसारिक विरक्ति की सूचक, विधुर पंडित जातक कथा में विधुर पंडित के बांये पार्श्व में अंकित आकृति की खुली हुई हथेली, मुड़ी उँगलियां संसार के मिथ्यात्व का संकेत कर रहीं हैं। एक यक्ष चित्रांकन में कलाकार ने विशेष रुप से शान्त छवि अंकित की है। प्रतीत होता है कि अजन्ता के कलाकारों का स्वयं का जीवन निर्वेद भाव से ओत–प्रोत रहा होगा। सामाजिकता, सांसारिकता से दूर इनके जीवन में शान्त भाव का आधिपत्य होगा जिसने उन्हें ऐसे चित्र सृजन के लिए अभिप्रेरित किया होगा। जन कल्याण की उदात्त भावना से ही अजन्ता के अधिकांश बुद्ध चित्र युक्त हैं।

(9) वात्सल्य :–

अजन्ता भित्ति चित्रों में वात्सल्य व्यापक रुप में विद्यमान है। कलाकारों ने पशुओं में भी वात्सल्य भाव का सूक्ष्म चित्रण किया है। यशोधरा द्वारा प्रिय पुत्र को साग्रह बोधिसत्व को अर्पित कर उस महान तेजस्वी को अपलक दृष्टि से निहारते चित्र में मातृ हृदय की करुणा हृदय की गहराइयों को छू लेती है। नन्हे बच्चों को पेट से चिपकाये चट्टानों में चढतें मादा लंगूरों का चित्रण, रानी महामाया का वात्सल्य भाव से ओत–प्रोत चित्र, 'महाउमेगा' जातक कथा में पुत्र के लिए माँ की व्याकुलता, अंधे माता–पिता से गजराज का मिलन आदि में मातृ स्नेह की विचित्रताएँ वात्सल्य के श्रेष्ठ उदाहरण है।

(10) शोक :–

शोक भाव में सभी को द्रवित करने की शक्ति होती है। अजन्ता के भित्ति चित्रों के समृद्धकोष में एक सशक्त भाग शोक के चित्रण को अर्पित है।यद्यपि कलाकार सभी भावों को चित्रित करने मे सफल रहे हैं लेकिन सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं सहानुभूतिपूर्ण चित्रण उन्होने शोक भाव का ही किया है। प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म में ब्याप्त दुःखवाद की भावना ने ही कलाकार को शोकभाव विषयक चित्र सृजित करने के लिए प्रेरित किया होगा। मानवीय दुःख क्लेश, आर्द्रता, दुःखी लोगो के प्रति दया भावना ने कलाकार को शोक की वह अनुभूति दी होगी जिसके वशीभूत होकर अजन्ता के कलाकार मरणासन्न राजकुमारी के शोक तथा पद्मपाणि की करूणा को आकार देने में सफल हुए। पद्मपाणि की आकृति में त्रिभंगी मुद्रा में शिथिल तथा गिरे हुए अवयव, बांया हाथ दायें पैर से टिका, गले में नीचे की ओर लटकी माला, दाहिनी हाथ में नील कमल, शोक में डूबे अधखुले कमल पंखुड़ी के समान नेत्र, कमल पंखुड़ी के समान नीचे मुड़ी उँगलियां, सांसारिक क्लेशों के प्रति बुद्ध की करुणा की अभिव्यंजना में पूर्णतः सफल हैं। आर0सी0 मजूमदार के अनुसार–''बाहर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वे गतिशील हैं, किन्तु वे शान्तिप्राप्त कर चुके हैं''[15]।

साहित्य दर्पण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण में शोक भाव के चित्रण के लिये वर्णित गहरे भूरे स्लेटी रंगों (कहीं हरा, कहीं लाल, कहीं वीला मिश्रित) का प्रयोग भावों की व्यंजना के लिए अपनी कल्पना से किया है। करूण भावों की अभिव्यक्ति के लिए रेखाओं, प्रतीकों का भी सहारा लिया है। बौद्ध धर्म के अनुसार घोड़ा नैराश्य का प्रतीक है जैसे–जनक की रानी के शोक को प्रस्तुत करने के लिए राजा के घोड़े पर सवार होकर प्रस्थान दिखाना, विश्वविख्यात मरणासन्न राजकुमारी के चित्रण महल में शोक संतप्त रानी को दासियों, प्रियजनों से घिरा हुआ अंकित करना, मूमूर्षावस्था में रानी का चित्रण, सिर शिथिलता से आगे की ओर लटका, लटके हुए आभूषण निर्वसन शरीर, रेखा भर खुले क्षीण नेत्र, बोझिल पलकों के चित्रण द्वारा शोक भाव को चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया हैं। ग्रिफिथ्स के वे शब्द कभी भुलाए नहीं जा सकते हैं जो उन्होंने मरणासन्न राजकुमारी के चित्र के सन्दर्भ में कहे–' रुप रंग में भले ही फ्लोरेन्स और बेनिस के चित्रकार श्रेष्ठतर कौशल दिखलाते किन्तु उनमें से कोई भी श्रेष्ठतर भावाभिव्यक्ति नही भर सकता था'[16]। यदि यह कहा जाय कि अजन्ता के सभी भित्ति चित्रों मे सर्वाधिक गहन व्यंजना शोक भाव की हुई है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

भाव कला सौन्दर्य का प्राण हैं भारत में भाव को ही सौन्दर्य माना गया हैं अब विश्व में भी इस तथ्य को सार्वभौमतः

स्वीकार किया गया हैं क्षणै – क्षणै यन्नवतामुपैती तदैव रूप रमणीयतायाः[17]।

सुप्रसिद्ध कवि माघ के अनुसार :– क्षण – क्षण परिवर्तित होने वाला सौन्दर्य ही वास्तव में रमणीय हो सकता हैं के आधार पर कहा जा सकता हैं कि अजन्ता के भित्ति चित्रो में भाव सौन्र्दय नये–नये परिवर्तित रुपों में चित्रित हुआ है। भावों को सूक्ष्मता, गम्भीरता आश्चर्य चकित तथा दर्शकों को विमोहित कर देने वाली हैं। एक क्षण के लिए तो दर्शक भाव विभोर होकर स्वयं को भूल जाता हैं। वास्तव में जिस कला द्वारा आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती हैं। वही वास्तविक कला हैं। ऐसी कला ही चित्र सृजन की विशिष्टताओं में मंडित होकर अद्वैत आनन्द एवं रस की प्रतिष्ठा में समर्थ होती हैं। अजन्ता के भित्ति चित्रो मे यह सामर्थ्य और शक्ति हैं। मानवीय आस्था की पराकाष्ठा इन भित्ति चित्रो में हैं। ये भित्ति चित्र आज के मानव हृदय को सान्त्वना प्रदान करने वाले सिद्ध हो सकते हैं। वास्तव में अजन्ता के भित्ति चित्रों के आदर्श को यदि कलाकार सामने रखकर चित्रकारी करे तो यह कला के मूल प्रयोजन सत्यं शिवं सुन्दरं की सृष्टि कर सकता है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. सौन्दर्य, राजेन्द्र बाजपेयी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ0 143।
2. साहित्य दर्पण, श्री विश्वनाथ, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ0 46।
3. कलातीर्थ अजन्ता, डा0 स्वर्णलता मिश्र, नेशनल बुक आर्गनाइजेशन, पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ0 13।
4. मेघदूत, कवि कालीदास, श्लोक न0–22, केदार नाथ शर्मा, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ0 116–117।
5. कलातीर्थ अजन्ता, डा0 स्वर्णलता मिश्र, नेशनल बुक आर्गनाइजेशन, पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ0 51।
6. कलातीर्थ अजन्ता, डा0 स्वर्णलता मिश्र, नेशनल बुक आर्गनाइजेशन, पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ0 56।
7. यथोपरि, पृ0 56।
8. यथोपरि, पृ0 47।
9. यथोपरि, पृ0 62।
10. निबन्ध एवं स्फुट गद्य विधायें, संपादक आशा जुगरान, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, पृ0 15,17,18।
11. कलातीर्थ अजन्ता पृ0 65।
12. कलातीर्थ अजन्ता पृ0 72।
13. कलातीर्थ अजन्ता पृ0 76।
14. कलातीर्थ अजन्ता पृ0 76।
15. प्राचीन भारतीय कला, वास्तु कला एवं मूर्तिकला, डा0 श्याम शर्मा रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0 178।
16. सौन्दर्य, राजेन्द्र बाजपेयी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ0 144।
17. यथोपरि, पृ0 148।

डा0 नीता शाह
असिस्टैण्ट प्रोफेसर (हिन्दी)
मो0 नं0. 9012766284
स्व0 चन्द्र सिंह शाही रा0 म0 कपकोट, बागेश्वर।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 66-69

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन बिहार की राजनीति पर कर्पूरी ठाकुर का प्रभाव : एक विश्लेषण

–अफजल इकबाल

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

कर्पूरी ठाकुर की नीति का दृष्टिकोण को उनके आदर्श–वाक्य में संक्षेपित किया जा सकता है– ''आजादी और रोटी'' सामाजिक न्याय तथा जीवन सकी गुणवत्ता।[1] ये समावेशी नारे थे जो विकास और गरिमा/आत्म–सम्मान के प्रतीक थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मातहत वर्गों को विकास और गरिमा प्रदान करने वाला उनके नारे के बावजूद भी कर्पूरी ठाकुर स्वयं किसी विकास योजना को कार्यान्वित नहीं करने योग्य थे। इसी अर्थ में लालू यादव ने कर्पूरी ठाकुर की विरासत को आगे बढ़ाया। लालू यादव का नारा– 'विकास नहीं सम्मान चाहिए'– इस तथ्य को परिपुष्ट करता है।[2] विद्वान एस॰ एन॰ मालाकार, बिहार के एम॰ बी॰ सी॰ जाति का एक सदस्य, जो 1970 के दाशक में एक छात्र सक्रियतावादी के रूप में कर्पूरी ठाकुर के आरक्षण नीति के आंदोलन में हिस्सा लिए थे और अखिल भारतीय छात्र महासंघ (ए॰ आइ॰ पार्टी) से संबंधित थे, ने दृढ़तापूर्वक कहा कि जनता पार्टी सरकार की अवधि के दौरान बिहार के मातहत वर्गों एम॰ बी॰ सी॰ जातियाँ, दलित जातियाँ तथा उच्च ओ॰बी॰सी॰ जातियाँ में आत्म विश्वास जाग चुका था। इस विरासत को लालू यादव ने आगे बढ़ाया एवं बिहार में राष्ट्रीय जनता दल (रा.ज.द.) को 15 वर्षों के अपने शासन काल के प्रथम 6 या 7 वर्षों में मातहत वर्गों के आत्म विश्वास और गरिमा के प्रतीक बने रहे लेकिन एम॰बी॰सी॰ जातियों और दलित जातियों का मोहभंग हो गया और बचा हुआ अवधि में उनमें श्विास खो बैठे।[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि भ्रष्टाचार और भाई भतीजावाद के आरोपों और उनके कार्य करने की शैली ने बिहार के मातहत वर्गों के बीच आत्म विश्वास, मान्यता तथा आत्म सम्मान की भावना को जमा देने की दिशा में लालू यादव के योगदान ने छलावरण लगा दिया। शायद गरिमा/आत्म–सम्मान तथा विकास से संबंधित नीतियों का क्रियान्वयन समय के विशिष्ट संदर्भ में प्राथमिकता का मामला था। पिछड़े वर्गों और जातियों के लिए एक बार जब गरिमा + आत्म–सम्मान हासिल हो गया तो विकास उसका अनुसरण किया। नीतीश कुमार नीत जनता दल (यूनाइटेड) जद (यू) की सरकार ने कर्पूरी ठाकुर के नारे ''आजादी और रोटी'' के तर्ज पर आत्म–सम्मान (सामाजिक न्याय) के साथ–साथ विकास को प्राथकिता दिया।

इसलिए लालू यादव और नीतिश कुमार की राजनीति को एक निरंतर प्रक्रिया के रूप में देखे जाने की जरूरत है जिसकी उत्पत्ति कर्पूरी ठाकुर की राजनीति से हुई। दोनों ने ठाकुर की विरासत को अपनी–अपनी राजनीतिक आवश्यकताओं की रोशनी में अपनाए। वास्तव में नीतीश कुमार उन जातियों को संबोधित करने का प्रयास किया जो दलितों से भी ज्यादा वंचित हैं और महादलित के रूप में जाने जाते हैं। 2007 में नीतीश कुमार नीत जद (यू) सरकार

ने महादलित आयोग गठित किया जिसका उद्देश्य दलित जातियों के अन्तर्गत उन जातियों की पहचान करना था जो विकास की प्रक्रिया में पीछे छूट गए थे, उनकी सामाजिक और आर्थिक दशाओं का अध्ययन करना तथा उनकी दशाओं के उत्थान हेतु उपायों का सुझाव देना था। इस आयोग ने बिहार के दलितों के बीच 21 महादलित जातियों को पहचान किय जो अत्यंत कमजोर जातियाँ हैं।[4]

यहाँ तक कि नीतीश कुमार एम॰ बी॰ सी॰ जातियों को तुष्ट करने का भी प्रयास किया जो लालू यादव और राबड़ी देवी के शासन–काल में उपेक्षित महसूस किए। एम.बी.सी. जातियों के प्रति नीतीश कुमार की रणनीति चार शूलों वाली थी : झारखंड राज्य के निर्माण के बा उनका आरक्षण कोटा 20 प्रतिशत तक कर दिया गया; उन्हें म्युनिसिपैलिटी और पंचायतों में सीटों का आरक्षण दिया गया जिसमें से 50 प्रतिशत महिलाओं हेतु आरक्षित थे; लोक सभा और विधान सभा के चुनावों में अन्य दलों के बनिस्बत एम.बी.सी. को अधिक टिकट दिए गए, एवं चुनाव जीतने के लिए उन्हें मदद की गयी। चूंकि जयादातर मुस्लिम एम.बी.सी. जातियों के हैं, नीतीश कुमार का उनपर फोकस उनमें आत्मविश्वास की भावना भी पैदा किया। नीतीश कुमार ने विकास के लिए एक मजबूत और अद्‌भूत कार्यावली प्रस्तुत किया जिससे बिहार देश के एक द्रत विकासशील राज्य के रूप में जल्दी ही स्थापित हो गया।[5]

जद (यू) द्वारा 2 सितम्बर 2005 को पटन में आयोजित एम. बी.सी. जातियों के सम्मेलन में व्याख्यान देते हुए, नीतीश ने अपनी आरक्षणनीति पर कर्पूरी ठाकुर की विरासत को स्वीकार किया :

''जिस प्रकार कर्पूरी ठाकुर ने सरकारी नौकरियों में पिछड़े वर्गों के कोटा के अन्तर्गत अत्यंत पिछड़ वर्गों हेतु आरक्षण की तरु काम किया, उसी प्रकार पिछड़े वर्गों के बीच एम.बी.सी. जातियों को पंचायत राज संस्थाओं में आरक्षण मिलना चाहिए। उनलोगों को पृथक आरक्षण मिलना चाहिए। इसके अलावा उनलोगों को संविधान में संशोधन करके राजनीतिक आरक्षण (राजनैतिक अधिकार) दिया जाना चाहिए, जिसप्रकार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को प्राप्त है। एम.बी.सी. के जातियों को जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण दिया जाना चाहिए।''[6]

एक वर्ष पूर्व उनके द्वारा दिए गए एक भाषण का हवाला देते हुए नीतीश कुमार ने कहा :

''हमलोग जयंती कर्पूरी जी (कर्पूरी ठाकुर का वार्षिकोत्सव) रवीन्द्र भवन में मना रहे थे। ऐसी चर्चा हो रही थी कि एनेक्सर 1 और 2 को संविलीन कर दिया जाय। तुरंत हमलोगों ने घोषणा की कि कोई भी शक्ति उन अधिकारों को हमसे छीन नहीं सकता जो कर्पूरी ठाकुर ने हमलोगों को दिया। और यही लालू यादव के साथ हमारे मतभेद का मूल कारण बना।[7]

इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि लालू यादव और नीतीश कुमार, दोनों ने कर्पूरी ठाकुर की विरासत को आगे बढ़ाया। यद्यपि दोनों लालू यादव और नीतीश कुमार सदृश विरासत को उत्तराधिकार में प्राप्त किया– जे.पी. आंदोलन तथा कर्पूरी ठाकुर का संरक्षण– उनके राजनीतिक शख्सियत में फर्क, जब 1978 में कर्पूरी ठाकुर ओ.बी.सी. जातियों हेतु आरक्षण प्रस्तुत किया, में गोचर हो सका था। ओ.बी.सी. जाातियाँ और उनका नेतृत्व सामान्यतया कर्पूरी ठाकुर के पीछे उनकी नीति के समर्थन में लामबंद हो गए थे, जबकि नीतीश कुमार ने एक भिन्न ढ़र्रा अपनाया।[8]

सचमुच, बिहार में आरक्षण नीति समाजवादी आंदोलन को जाति के आधार पर विभाजित किया– एक ओर ओ. बी.सी. जातियों और उच्च जाति के बीच, दूसरी ओर ओ.बी.सी. जातियों के अंदर। इस विभाजन में लालू यादव कर्पूरी ठाकुर के पक्ष में थे एवं नीतीश कुमार उच्च जाति समाजवादियों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए अन्य शिविर के साथ थे।

नीतीश कुमार ने यथार्थ में एक समाधानकारक मुद्रा का अनुसरण किया : जबकि उन्होंने ओ.बी.सी. जातियों हेतु आरक्षण का समर्थन किया, उसने उच्च जातियों के बीचगरीब के लिए भी इसकी वकालत की। नीतीश कुमार की राजनीति, विशेष रूप से गैर–यादव ओ.बी.सी. तथा उच्च जातियों के बीच मैत्री गठित करने की उनकी योग्यता, को उनके द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त विरासत से पृथक नहीं किया जा सकता है।

अरुण सिन्हा द्वारा रचित नीतीश कुमार का सहानुभूतिपूर्ण जीवन–वृतांत कर्पूरी ठाकर और लाल यादव की राजनीति के साथ उनकी नीतियों की सहलग्नता को नजर अंदाज करता है।[9] आरक्षण के प्रति नीतीश कुमार की मुद्रा उन्हें उच्च जातियों के प्रिय बना दिया। लालू शासन के उत्तरवर्ती अवधि में बिहार की राजनीति नीतीश कुमार को गैर यादव ओ.बी.सीज, एम.बी. सीज., महादलितों और उच्च जातियों का गठंधन बनाने के लिए सक्षम बनाया। लालू/राबड़ी शासन के विरूद्ध नाराजगी, उच्च जातियों की नापसंदगी एवं यादवों के साथ इसका तादात्म्य जातियों के गैर–लालू गठबंधन का एक संदर्भ प्रदान किया।

उपसंहार :–

कर्पूरी ठाकुर के जीवन और राजनीति भारत के हिन्दी बेल्ट में समाजवादी आंदोलन के विभिन्न चरणों का प्रतीक बनाया। राजनीतिक रूप से हाशिए पर स्थित जाति से संबंधित होने (एम.बी.सी.) के बावजूद वे बिहार राज्य की राजनीति में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने के योग्य थे जहाँ जाति सबसे निर्णायक कारक है। ऐसा इसलिए था कि वे समाजवादी राजनीति के प्रतिबद्ध थे और युगारंभिक (नवयुगीन) कारक जिसके तहत वे मातहत वर्गों को अपने राजनीतिक जीवन यात्रा के हर भाग में जाति के आर–पार नेतृत्व करने योग्य थे। तथापि, अनुवर्त्ती वर्षों में उनकी स्थिति को प्रबल ओ.बी.सीज. के एक वर्ग खासकर समाजवादी श्रेणी के अंतर्गत यादवों, के द्वारा चुनौती दी गयी। कर्पूरी ठाकुर नीत जनता पार्टी की बिहार सरकार के पतन के बाद, यह वर्ग उन्हें राजय की राजनीति में हाशिए पर खड़ा कर दिया। यह कर्पूरी ठाकुर को एम.बी.सीज. और दलितों के बीच अपना वैकल्पिक सामामजिक आधार ढूंढने के लिए अग्रसर किया एवं गरीब और दलितों को सशस्त्र करने की उनकी नीति उनकी स्थिति को नक्सलवादियों के करीब कर दिया। भारत में 1950–1970 दशकों के अंत के दौरान समाजवादी राजनीति की प्रकृति की रोशनी में उनकी सरकार की भाषा, नियोजन और आरक्षण संबंधी नीतियों को सोच निकाला गया। ये ओ.बी.सीजी. और ग्रामीण समुदायों के अभ्युदय के प्रति प्रतिक्रियाएँ भी थीं। लेकिन दलितों और गरीब को सशस्त्र करने का उनका सुझाव बाद में राज्य की राजनीति में उनकी अपनी अरक्षितता का संकेत करती है।

विभिन्न राजनीतिक दलों में समाजवादी नेताओं का बाद में प्रसार जिनमें से कुछ कर्पूरी ठाकुर के संरक्षित भी रहे, उनकी विरासत के सिलसिला को खत्म नहीं करना है। मातहत (निम्नपदस्थ) समूहों के सशक्तिकरण की प्रक्रिया जो उनके द्वारा शुरू की गयी अबतक चालू है। सशक्तिकरण की उनकी धारणा जिसमें आत्म सम्मान/ गरिमा और विकास शामिल थे एक तारतम्य में कार्यान्वित किया जा सका– विकास के द्वारा गरिमा / आत्म–सम्मान का पालन किया जाएगा। लेकिन कर्पूरी ठाकुर ने गरिमा एवं आत्म–सम्मान पर ज्यादा फोकस किया और विकास की उपेक्षा की। इसका मुख्य कारण विकास के प्रति समाजवादियों की दृष्टि एवं कर्पूरी ठाकुर नीत उनकी सरकारों के नीति दृष्टिकोणों के बीच फासला था। इन सरकारों की कार्यसूची में प्रतीकात्मक तथा सारूप्य मुद्दे थे, न कि विकास। इस विरासत को लालू यादव आगे ले गए। ओ.बी.सीज. और दलितों के बीच आत्म–विश्वास और गरिमा / आत्म–सम्मान की भावना के समेकन तथा निरंतरता के प्रति लालू प्रसाद यादव के योगदान को भ्रष्टाचार और भाई भतीजावाद के आरोपों ने छलावरण लगाए हैं।

कर्पूरी ठाकुर के विरासत को नीतीश कुमार ने व्यापक तरीके से आगे बढ़ाया : उन्होंने बिहार के लोगों को गरिमा / आत्म–सम्मान के साथ–साथ विकास प्रदान किया।

संदर्भ :–

1. कुमार, अवनीश (2013) ''नीतीश कुमार्स ओनरेबुल इक्जिट : ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ कास्ट पॉलिटिक्स'', इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 48 (28), 13 जुलाई, 15–17.
2. झा, मनीष कुमार व पुष्पेन्द्र (2012) ''गवर्निंग कास्ट एंड मैनेजिंग कनफ्लिक्ट इन बिहार, 1990–2011'' पॉलिसीज एंड प्रैक्टिसेज 48, मार्च, पब्लिश्ड बाई महानिर्बाण कलकत्ता रिसर्च ग्रुप।
3. सिंह, जगपाल (जनवरी, 2015)'' कर्पूरी ठाकुर : ए सोशलिस्ट लीडर इन द हिंदी बेल्ट'', इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वो. नं. 3, पृ. 59.
4. https : // www. mahadalitvikasmission. org ... accessed on 17 september 2013 .
5. सिंह, एन. के. तथा निकोलस, एसर्टन (2013) द न्यू बिहार : रिक्रांन्डलिंग गवर्नेन्स एंड डेवलपमेंट, नोयडा : हार्पर कॉलिन्स।
6. कुमार, नीतीश (2008) जनता दल (यू) द्वारा आयोजित अत्यंत पिछड़ा वर्ग सम्मेलन में दिए गए भाषण, श्री कृष्ण मेमोरियल हॉल, पटना, 2 सितम्बर 2005, प्रकाशित उदय कान्त चौधरी (संपा.) (पटना : अति पिछड़ा दर्पण, प्रकाशकः बिहार राज्य अत्यंत पिछड़ा वर्ग संघ)
7. पूर्वोक्त,
8. सिन्हा, अरुण (2011) नीतीश कुमार एंड द राइज ऑफ बिहार, दिल्ली : पेनग्युन / वीकींग न्यू
9. पूर्वोक्त।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 70-73

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मध्यकालीन भारतीय ग्रंथ चित्रण परम्परा

–डॉ. राकेश कुमार किराडू

व्याख्याता चित्रकला, सिस्टर निवेदिता कन्या महाविद्यालय, महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर।

संपूर्ण भारतवर्ष में चित्रण की विशिष्ट परम्परा रही है जिसमें आदि काल के सरल–स्वाभाविक अंकन से उत्तरोत्तर क्रमबद्ध शैलीगत विकास देखने को मिलता है। फिर चाहे वह प्रागेतिहासिक काल के मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दक्षिणभारत व राजस्थान के चित्रित शैलाश्रय, गुफाएं हो अथवा जोगीमारा, अजन्ता, बाघ बादामी की उत्कृष्ट कला साधना।

इसी रूप में जब चित्रकर्म व चित्रफलक का अधिक सुघड़ रूप सामने आने लगा तब चित्र गुफाओं, गिरी कन्दराओं से निकल कर ताड़पत्रों व लकड़ी के पटरों इत्यादि पर बनाये जाने लगे। यह तथ्य सर्वमान्य भी है कि भारत में लेखन व चित्रण के लिए कागज का प्रयोग बहुत बाद में जाकर हुआ।[1] कागज पर चित्रण व लेखनकर्म के उपयोग से पहले ताड़पत्रों व लकड़ी के पटरों का चित्रफलक के तौर पर पूर्णतया उपयोग किया जाता रहा। इन ताड़पत्रों को चित्रित करने के पश्चात् ग्रंथ का रूप दिया जाता था। ताड़पत्रीय ग्रंथों की सुरक्षा की दृष्टि से इनको लकड़ी के पटरों के बीच में रखा जाता था। लकड़ी के पटरों पर भी सुन्दर चित्रांकन किया जाता था। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार ताड़पत्रीय ग्रंथ चित्रों की परम्परा 11वीं शती से 13वीं शती तक विद्यमान थी। उनके अनुसार चित्रण व लेखन के लिए कागज का प्रयोग सर्वप्रथम 14वीं शती में किया गया। इसी रूप में ग्रंथ चित्रण व लेखन में भी कागज का प्रयोग शुरू हो गया। लेकिन कही–कही पर ताड़पत्रों का व्यवहार भी जारी रहा[2], और समयान्तर पश्चात् 15वीं शती तक आते–आते ताड़पत्रों का प्रचलन बन्द हो गया।

अब लिपिकर्म व चित्रकर्म के लिए पूर्णतया कागज का प्रयोग होने लग गया। कागज के प्रयोग के उदाहरण मध्यकाल व उत्तरमध्यकाल की चित्रकला में देख सकते है। इस क्रम में मध्यकालीन कला को जीवित रखने का श्रेय पाल, जैन, गुजरात व अपभ्रंश शैलियों को जाता हैं। मध्यकाल में दो विश्वकोषात्मक रचनाओं का निर्माण हुआ जिसमें चित्रकला के नीतिगत नियमों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। जिनके अध्ययन करने से तत्कालीन चित्रकला की समृद्धि का पता लगाया जा सकता है। इन ग्रंथों में भोज द्वारा सृजित ''समरांगण सूत्रधार'' और सोमेश्वर भूपति का ''सोमेश्वर मानसोल्लास'' प्रमुख है। इसी कम में क्षेमेन्द्र कृत 'वृहत्कथा मंजरी' व सोमदेव कृत 'कथा सरित्सागर' में भी चित्रण संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी दृष्टव्य है।[3] इस युग में सचित्र ग्रंथो का भी खूब सृजन किया गया। यह प्रायः नेपाल, बंगाल में चित्रित व लिपिबद्ध की गई। जिनका संबंध धर्म से रहा व धर्म के प्रचार–प्रसार, पठन–पाठन के लिए इनको प्रयोग में लाया जाता रहा।

मध्यकाल में पाल शैली के चित्रित ताड़पत्रीय ग्रंथ भारतीय ग्रंथ चित्रशैली परम्परा का प्रस्फुटन है। इन सचित्र ग्रंथो को अच्छे तालपत्र (राजताल) पर लिखा जाता था। इन ताल पत्रों की लंबाई लगभग 2 इंच व चौड़ा 2.5'' होती थी। इन पत्रों पर बड़ी ही सुन्दर व जमी हुई तत्कालीन देवनागरी लिपी लिखी हुई है। कुछ ग्रंथ में काली पृष्ठ भूमि पर सफेद रंग से लिखाई की गई है। अक्षर बिल्कुल नाप–तौल कर व कटे हुए छापे के समान लिखे गये है। इन ग्रंथों के तालपत्रों पर महायान देवी–देवताओं, बुद्ध चरित्र और दिव्य बुद्धों के चित्र बने रहते है।[4] इन ग्रंथो को ढ़कने के लिए (जिल्द) दोनों और पटरे लगाये जाते थे। इन्हें दफ्तियॉ या काष्टपट कहा जाता था इन पर भी भगवान बुद्ध की जीवनी तथा जातकों

के दृश्य रहते है।[5] इन चित्रों में अजन्ता की परम्परा स्पष्ट रूप से दीख पड़ती है।[6] पाल सचित्र ग्रंथ अत्यल्प ही प्राप्त है जिनमें 'साधन माला', 'गंधव्यूह', 'करनदेव गुहा', 'पंचशिखा', 'बौधियर्यावित्र' इत्यादि प्रमुख है। इसी क्रम में अपभ्रंश शैली के चित्रित ग्रंथों का विवेचन किया जाना अति आवश्यक है। पहले–पहले इनके चित्रण को सम्प्रदायगत प्रभाव के कारण जैन शैली माना गया। तत्पश्चात् क्षेत्रीयगत विचारधाराओं के आधार पर इनको गुजरात शैली व पश्चिम भारतीय शैली के नाम से पुकारा गया लेकिन प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ श्री रायकृष्णदास ने उक्त सभी नामों को अंगीकार करने से परहेज किया व शैलीगत विशेषताओं को आधार बनाकर उसका नाम अपभ्रंश रख दिया जो सर्वमान्य भी रहा। उक्त शैली के नामकरण को लेकर कला विद्वानों के मत मतान्तर को सामान्य अर्थ में नहीं लेना चाहिए क्यों कि यह मत मतान्तर ही इस शैली के भारत में व्यापक विस्तार के तथ्य को पुख्ता करते है अतः इसके नामकरण का जिक्र इसकी व्यापकता के दृष्टिकोण से यहां किया जाना आवश्यक है।

इस क्रम में सर्वप्रथम श्री आनन्द कुमार स्वामी का नाम उभरता है। जिन्होंने इस शैली के संबंध में पहली बार विस्तृत रूप से जानकारी दी। श्री आनन्द कुमार स्वामी ने सन् 1924 ई. में 'बर्लिन बोस्टन म्यूजियम ऑफ फाईन आर्ट' के जैन संग्रह का सूची पत्र तैयार किया साथ ही कल्पसूत्र की एक सचित्र प्रति का ध्यान इस चित्र शैली की और गया जिससे नवीन शोध का मार्ग प्रशस्त हुआ। श्री आनन्द कुमार स्वामी ने सर्वप्रथम इस शैली का नामकरण ''पश्चिम भारतीय चित्र शैली'' के रूप में किया।[7] और सुप्रसिद्ध इतिहासकार ''लामा तारानाथ'' के द्वारा दिये गये नामकरण में प्रत्यक्ष हामी भर दी थी। कुछ समय बाद श्री आनन्द कुमार स्वामी ने अपनी प्रकाशित पुस्तक ''हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट'' में इस शैली को गुजरात शैली के नाम से अभिहीत किया।

गुजरात शैली से अभिहीत करने का मुख्य कारण यह था कि इस शैली के प्रारंभिक स्रोत गुजरात व उसके आस–पास से प्राप्त हो रहे थे। लेकिन शायद इनके द्वारा दिया गया ''पश्चिम भारतीय चित्र शैली'' नाम ही तर्क संगत व सटीक बैठता है।[8] क्योंकि कालान्तर में इस शैली से संबंधित ताड़पत्रीय, पटचित्र, ग्रंथ चित्र व कागज के बने ग्रंथ चित्रों की जानकारी भी प्राप्त होती है, जो मात्र गुजरात ही नही वरन् पश्चिम भारत में राजस्थान व उसके कई प्रमुख जिलों में भी उपलब्ध होते है। जिससे पुष्टि होती है कि इस शैली का दायरा मात्र गुजरात तक ही सीमित नही था, वरन् गुजरात के बाहर पश्चिमी प्रान्तों में भी प्रसरित था। पर्सी ब्राउन आदि पश्चिमी विद्वानों ने इस चित्रशैली को जैन शैली कहकर पुकारा। उनका मत था की दसवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच पश्चिम भारत में जिन चित्रों का सृजन हुआ उनके विषय जैनेतर भी थे।[9] लेकिन उसका संबंध मुंख्य रूप से जैन धर्म से ही था। इनके चित्रों को इसलिये भी जैन चित्रशैली के अन्तर्गत रखा गया क्योंकि ये चित्र जैन साधुओं द्वारा सृजित किये गये थे।[10] इसलिए जैन शैली नाम से संबोधित किया गया।

इसी क्रम में सुप्रसिद्ध विद्वान कला मर्मज्ञ श्री रायकृष्ण दास को इस शैली के उपरोक्त तीनों ही नाम यथा जैन, गुजरात, पश्चिम भारतीय कला शैली उपयुक्त नही लगे। उन्होने सन् 1465 ई. में चित्रित कल्पसूत्र की प्रति जो उत्तरप्रदेश के जौनपुर में सृजित थी, उसका संदर्भित आधार लेकर अपनी पुस्तक 'भारतीय चित्रकला' में इस चित्रण शैली को अपभ्रंश शैली के नाम से संबोधित किया। उनका यह भी मानना था कि यह शैली व उसके कलाकार अजन्ता चित्र शैली के ही तद्भव रूप है।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए श्री रायकृष्ण दास अपनी पुस्तक 'भारतीय चित्रकला' में लिखते है कि श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के ताडपत्रों पर लिखित ग्रंथों की 11वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी के मध्य तक की सचित्र प्रतियों में तथा उसी शैली की कागज पर लिखी 14 वीं शताब्दी के अंतिम चरण तक की प्रतियों में एक खास शैली के चित्र उकेरे गए है, जिसका नामकरण पहले–पहल जैन शैली किया गया था। इसका कारण यह था कि उस समय तक इस शैली के चित्रों का परिचय केवल जैन पोथियों से मिला था और आगे इसी बात का खुलासा करते हुए कहते है कि यह बात अवश्य है कि उक्त हजार–आठ सौ बरस तक जैन संप्रदाय का प्रभाव देश के एक बहुत बड़े हिस्से पर व्याप्त था, फलस्वरूप

इस समय के प्राप्त अधिकांश चित्र ग्रंथ भी जैन संप्रदाय के ही है। वर्तमान में भी ऐसे ग्रंथ हजारों–हजार की संख्या में साक्ष्य स्वरूप देखे जा सकते है। इन धार्मिक जैन चित्रों व चित्र ग्रंथों के सृजन का मूल कारण यह था कि जैन धर्मावलंबी सदैव अपनी धार्मिकता के लिये तत्पर रहे है।

अतः वे अपने लिए धार्मिक ग्रंथों का सृजन करवाते थे। साथ ही बहुत बड़ी संख्या में उन मूल ग्रंथों की प्रतियां भी तैयार करवाते थे, जिनको जैन धर्मावलंबियों में धर्म के प्रति रूचि जागृत करने व धर्म संबंधित जानकारी देने के लिये वितरित कर दिया जाता था। ऐसे चित्रित ग्रंथों में चित्रण कार्य जैन साधुओं द्वारा संपादित किया जाता था। अतः इस चित्र शैली को जैन शैली माने जाने की बात पुष्ट होती है, लेकिन समयान्तर पश्चात् ऐसे चित्र गुजरात क्षेत्र में अधिसंख्य उपलब्ध हुए। अतः इसे गुजरात शैली भी पुकारा जाने लगा। लेकिन इन्हीं क्षेत्रों में जैन धर्म से इत्तर भी इसी शैली के ग्रंथ प्राप्त हुए है तो इसका अर्थ तो यह हुआ कि इस शैली का संबंध मात्र जैन धर्म से या किसी विशेष संप्रदाय से नही था अपितु संप्रदायगत व क्षेत्रीयगत सीमाओं से परे किसी कलाकार वर्ग की देन थी। जो समय–समय पर अलग–अलग क्षेत्रों में घूमकर अलग–अलग लोगो के लिये चित्रण कार्य संपादित कर रहे थे।

श्री 'रायकृष्ण दास' ने यह भी स्वीकार किया है कि यह वही शैली है जिसका उल्लेख सुप्रसिद्ध बौद्ध इतिहासकार लामा तारानाथ ने किया है और जो अपने इसी रूप में नेपाल तक विस्तारित हो गई थी। तथा भारत में इसके विस्तार क्षेत्र में बंगाल, आसाम, मध्यप्रदेश, गुजरात, राजपुताना ही नहीं, विंध्याचल पार के भी कुछ क्षेत्र आते है।[11] इस शैली में अनेको सचित्र ग्रंथो का सृजन किया गया। अपने प्रारंभिक काल में तो इन सचित्र पोथियों का संबंध सीधे–सीधे जैन धर्म से रहा लेकिन कालान्तर में ऐसी अनेक जैनेत्तर (अजैन) ग्रंथ भी प्राप्त हुए जिससे उनकी व्यापकता का पता चलता है। इनमें 'गीतगोविन्द', 'बालगोपाल स्तुति', 'दुर्गासप्तशती', 'श्रीमद् भागवत', 'कल्पसूत्र', 'कालकाचार्यकथा', 'मार्कण्डेय पुराण', 'कामसूत्र', 'रतिरहस्य', 'वसंतविलास', 'अंगसूत्र', 'औद्यनियुक्ति', 'त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचरित्र', 'कथासरितसागर', 'उत्तराध्ययनसूत्र', 'कल्पसूत्र', 'नेमीनाथचरित्र', 'निशीथचूर्णी', 'दशवेकालिकलघुवृत्ति', 'संग्रहणीय सूत्र', 'श्रावकप्रतिक्रमणचूर्णी' इत्यादि प्रमुख है। उक्त ग्रंथों के संदर्भ में प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ रायकृष्णदास ने भी कहा है कि 11वीं से 15वीं शताब्दी के मध्य तक की सचित्र प्रतियों में तथा उसी शैली की कागज पर लिखी 14वीं शती में प्रायः अन्त तक की प्रतियों में एक खास शैली के चित्र उकेरे गये है।[12] और इस बात की भी पुष्टि की है कि राजस्थानी शैली की अलंकारिता का पूर्व रूप हमें इन अपभ्रंश शैली के चित्रों में पूर्ण रूप से दिखता है।[13] अपभ्रंश शैली के चित्र तीन रूपों में प्राप्त है, ताड़पत्र पर बने पोथी चित्र, कपड़े पर बने पट चित्र, कागज पर बने पोथी चित्र।

उक्त चित्रित ग्रंथ आज भी भारत व विदेश के अनेक संग्रहालयों में संग्रहित है। इनमें अहमदाबाद के श्री साराभाई ने चित्रकल्पद्रुम नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किया, जिसमें अपभ्रंश शैली के सैकड़ों सादे व रंगीन चित्र है। इस ग्रंथ का लिपिकाल 1465 ई. का है।[14] यह ग्रंथ उन्हें जौनपुर में उपलब्ध हुआ। इसी क्रम में 'कल्पसूत्र' की दो अन्य प्रतियां है, जिसमें एक प्रति लीमड़ी के सेठ आनन्द जी कल्याण जी के पास व दूसरी 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' मुम्बई में संग्रहित है। उक्त प्रतियों का लिपिकाल 1415 ई. है।[15] 'कल्पसूत्र' की तीसरी प्रति जौनपुर में भी है जिसकी लिखावट स्वर्ण अक्षरों से की गई है। यह प्रति वर्तमान में बड़ौदा के नरसिंह जी की पोल के ज्ञान मंदिर में संग्रहित है। इसका सृजन काल 1467 ई. का है जो जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह शर्की के शासनकाल में चित्रित की गई थी।[16] 'कल्पसूत्र' की एक और प्रति अहमदाबाद निवासी मुनि दयाविजय जी के संग्रह में संग्रहित हैं, इसमें भी लिपि कार्य स्वर्ण से किया गया है। इस प्रति का सृजन 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किया गया था। इस प्रति के चित्र अपभ्रंश शैली के उत्कृष्ट चित्रों में से है।[17]

इसी क्रम में गुजरात के श्री भोगालालजी के संग्रह में संग्रहित 'बालगोपाल स्तुति', बडौदा के प्रो. मंजुलाल मजूमदार के निजी पुस्तकालय में प्राप्त 'दुर्गासप्तशती' व बोस्टन के संग्रहालय में संग्रहित सचित्र ग्रंथ अपभ्रंश चित्रशैली के उल्लेखनीय सचित्र ग्रंथ है।[18] इसके अलावा भी अनेक सचित्र ग्रंथ प्राप्त हुए है जो भारत में मुख्य रूप से आज भारत

के बड़ौदा, पाटन, खम्भात, अहमदाबाद, तथा जैसलमेर के निजी ग्रंथागारों में संग्रहित है। इसके अलावा निशीथचूर्णी की एक और प्रति पाटन के एक अन्य ग्रंथ भण्डार में संग्रहित है। इसका लिपिकाल 1100 ई. का है।[19] इसमें अपभ्रंश चित्रकला के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

उक्त आधारों पर हम कह सकते है कि मध्यकालीन भारतीय चित्रण परम्परा व विशेषतौर से ग्रंथ चित्रण परम्परा अपने पूर्ण यौवन को प्राप्त कर चुकी थी चाहे वह ताड़पत्रीय ग्रंथ चित्र, लकड़ी के पटरे पर बने चित्र या फिर पटचित्र हो अपने पूर्ण नैसर्गिक सौन्दर्य के साथ उद्‌भासित हुई।

मध्यकालीन जैन चित्रकला में अधिकतर जैन धर्म से संबंधित चित्र प्राप्त होने का मुख्य कारण यह था कि जैनधार्मावलंबी अपने धार्मिक जीवन व धर्म की रक्षा के लिए सदैव अग्रणी रहे है, वह साथ ही धन–बल से भी समर्थ रहे है। यही कारण था कि वे अपने लिए सचित्र ग्रंथों का सृजन करवाते थे, यही नहीं बहुत बड़ी संख्या में उन धार्मिक ग्रंथों की प्रतियां भी बनवाते थे और धर्म के प्रचार–प्रसारार्थ उनको समय–समय पर समाज में वितरित भी करते थे। जिससे की धर्म का प्रचार–प्रसार हो सके। अतः इन धार्मिक ग्रंथों का बड़ा महत्व था, इनमें भी चित्रित ग्रंथों का अधिक महत्व था क्योंकि संबंधित ग्रंथ की कहानी की व्याख्या दृष्टान्त चित्रों से सहज व सरल हो जाती और आम जन की भी उसमें रूचि जागृत होती थी। जो बात ग्रंथ लिपि पढ़कर समझ नहीं आती वह संबंधित दृष्टांत देखकर समझ ली जाती थी। अतः यह सचित्र ग्रंथ धर्म का सरल रूप प्रस्तुत करते थे, जो आम जन के लिए अधिक सुगम्य था।

भारतवर्ष में उस समय ग्रंथ चित्रण परम्परा के सुप्रभाव के विपरीत चित्रण तकनीक में गिरावट का सामना भी करना पड़ा जो इसका एक पहलू है। इसका मुख्य कारण यह था कि इन सचित्र प्रतियों की अत्यधिक मांग होने के कारण अत्यल्प समय में इनका सृजन किया जाता था, जिससे चित्रों के गुणों में ह्रास होना स्वाभाविक ही था। इसके बावजूद भी ये जैन व जैनेत्तर सचित्र ग्रंथ भारतीय चित्रकला इतिहास के आधारभूत स्तम्भ है जो अपनी विशिष्टता को संजोये हुए भारतीय कला के विकास पथ को निरन्तर प्रकाशमान किये हुए है।

संदर्भ :–

1. कृष्णचंद्र शर्मा, मथेरण कलम, मरूधारा शोध केन्द्र, बीकानेर पृ.सं. 37 (सन् 2001).
2. वहीं– पृ.सं. 37
3. रायकृष्णदास, भारत की चित्रकला, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ.सं. 27 (सन् 1996).
4. वहीं– पृ.सं. 28
5. वहीं– पृ.सं. 28
6. वहीं– पृ.सं. 29
7. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं. 112 (सन् 2013).
8. वहीं– पृ.सं. 114
9. वहीं– पृ.सं. 113
10. वहीं– पृ.सं. 113
11. कृष्णचंद्र शर्मा, मथेरण कलम, मरूधारा शोध केन्द्र, बीकानेर पृ. सं. 35 (सन् 2001).
12. वहीं, पृ. सं. 35
13. वहीं, पृ. सं. 30
14. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं. 117 (सन् 2013).
15. वहीं पृ.सं. 118
16. वहीं पृ.सं. 118
17. वहीं पृ.सं. 118
18. वहीं पृ.सं. 118
19. वहीं पृ.सं. 119

पता :– नत्थूसर गेट के बाहर, भारतीयम बाल मन्दिर स्कूल के सामने, बीकानेर।
मो.–वाट्स अप 9829794318, 7976216294

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 74-77

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार : फूलचंद गुप्ता

–हिना एस. राठोड़

पीएच.डी. शोधार्थी, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण, गुजरात।

फूलंचद गुप्ता माकर्सवादी विचारधारा से प्रभावित कवि है। कवि मानव–जीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याओं, अंतद्वंद्वो का समाधान ढूँढकर विश्व सर्वहारा वर्ग का स्वप्न देखते है जो समाज में नयी क्रांति लाना चाहते है। उनकी लगभग सभी कृतियों में इस प्रकार की विचारधारा दृष्टव्य होती है। बचपन से युवावस्था तक आर्थिक अभाव एवं सामाजिक–पारिवारिक संघर्ष किया है जिसकी सीधी असर उनके साहित्य जगत में दिखाई देती है। कवि ने अपने निजी अनुभव से, बदलते हुए परिवेश से, समाज और समय से जो कुछ सिखा वे उनके साहित्य में अभिव्यंजित हुआ है। फूलचंद गुप्ता का रचना संसार बहुत व्यापक एवं विस्तृत है। कविता के अलावा कहानी, गजल, उपन्यास, निबंध आदि विधाओं में लेखन कार्य किया है। फूलचंद गुप्ता संवेदनशील, बुद्धिसम्पन्न, संघर्षरत, क्रियाशील, बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार है। हिन्दी साहित्य को समृद्ध एवं रुचिकर बनाकर आनेवाली नयी पीढ़ि एवं पाठकों को नयी सोच और दिशा प्रदान करता है। जो पाठकों को नये सिरे से सोचने पर मजबूर करते हैं।

'इसी माहौल में' कविता–संग्रह को जनवादी लेखन एवं साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए 'सफदर हाश्मी' पुरस्कार से सम्मानित फूलचंद गुप्ता का जन्म उत्तर प्रदेश राज्य के फैजाबाद जिले के अमराई गाँव में ३० अक्टूबर ई.स. १९५८ में हुआ था। वह कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार, अनुवादक, संपादक सभी थे। साहित्य के क्षेत्र में युवा लेखकों एवं पाठकों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते रहे हैं।

अपने जीवन की शुरुआत कड़े संघर्ष एवं आर्थिक अभावों से जूझते हुए की। उन्होंने ''युद्धरत आम आदमी'' के ''गुजराती साहित्य में दलित कलम'' में सहयोगी संपादक के रुप में काम किया है। 'साहित्य समाज का दर्पण है' यदि इस वाक्य को आधार मानकर कवि फूलचंद गुप्ता की कविताओं का अनुशीलन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि फूलचंद गुप्ता की कविताओं में असहिष्णुता, साम्प्रदायिक दंगें एवं असंवेदनशीलता के चित्र 'हे राम !', 'सांसत में हैं कबूतर' एवं 'इसी माहौल में' आदि कविता – संग्रहों में स्पष्ट दिखाई पडते हैं।

फूलचंद गुप्ता की कविताएँ भारत भर की जानी–मानी एवं प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं में छपी है। उनकी कविताओं के कुल सात कविता–संग्रह प्रकाशित हो चुके है। इन कविता–संग्रहों में ४०० से अधिक कविताएँ लिखी गई है। उनका पहला कविता–संग्रह 'इसी माहौल में' १९९७ में रंगद्वार प्रकाशन अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ। जनवादी लेखन एवं साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए 'सफदर हाश्मी' पुरस्कार से सम्मानीत किया गया। इसके पश्चात् उनके कई कविता–संकलन प्रकाशित हुए रू कोई नहीं सुनाता आग के संस्मरण (२००६), राख का ढेर (२०१०), कोट की जेब से झांकती पृथ्वी (२०१२), दीनू और कौवे (२०१२), फूल और तितली (२०१४), झरने की तरह (२०१३) इसके अतिरिक्त एक पहल–पुस्तिका 'हे राम!' और 'साँसत में हैं कबूतर' आकंठ–पुस्तिका प्रकाशित हैं।

फूलचंद गुप्ता बीसवीं सदी के अंतिम दशक के कवि है। उनकी कविताओं में अपने समय के प्रश्नों और समस्याओं को उजागर किया है। उनकी रचनाओं में बनावटीपन एवं कृत्रिमता कही नजर नहीं आती। इनकी कविताओं में व्यक्ति, समाज, देश–दुनिया, समस्त मानव–जाति, समग्र सृष्टि, राजनीति, धर्म, प्रेम, संवेदना, गरीबी, बेरोजगारी, मजदूर आदि

इनकी कविताओं के विषय रहे हैं। उनकी कविताएँ निराशा से आशा की ओर ले जाती है। मनुष्य से लेकर समस्त प्राणी–जगत की बातें उनकी कविताओं में देखने को मिलती है। समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों से संवेदना एवं सहानुभूति रखते है। उनकी कविताओं में सामाजिक परिवर्तन की बातें स्पष्ट दिखाई देती है। कवि फूलचंद गुप्ता ने विश्व साहित्य, धर्म, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास की पुस्तकों का अध्ययन १९७९ से १९८९ का दशक गहन अध्ययन का दशक रहा। इसी अध्ययन का प्रभाव उनकी कविताओं में प्रतीत होता है।

डॉ. आलोक गुप्त ने कहा है – ''फूलचंद की कविताओं का कलेवर समकालीन कविता के प्रभाव से बना है। कुछ कविताओं की शैली देखकर केदारनाथ सिंह की याद आती है। इसके बावजूद मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध, विस्थापन की पीड़ा एवं साम्प्रदायिकता पर लिखी कविताओं में नयापन है। साम्प्रदायिकता से आई असहिष्णुता अहमदाबाद के जीवन का अनुभव है। '६ दिसम्बर १९९२', 'कोई आश्चर्य मत करना', 'वे इतिहास को खेल समझते है', 'कितना दुष्कर है', 'धर्म' जैसी कविताएँ लिखीं गई हैं तो इनके पीछे अहमदाबाद के साम्प्रदायिक दंगों का अनुभव हैं। इन कविताओं में तनाव, असुरक्षा, आशंका, असहिष्णुता पाठकों को व्यग्र किए बिना नहीं रह सकतीं। कुछ पंक्तियाँ देखे –

''एक खडाऊँ
पैरों को जख्मी कर
बस्तियों को रौंदते–फाँदते
उड़ चली है
स्वर्ण सिंहासन की ओर
लपलपाते हुए
रक्तस्नात जीभ।'' – धर्म

'' 'जानवरों' की एक नयी जिंस तैयार हो रही होगी
जिन शहरों में सभ्य लोग रहते हैं
उन्हीं के नीचे, भूतल में
भूगर्भ में निश्चित ही
एक संसार बस गया होगा
किसी 'पैगंबर' या 'अवतार' की देखरेख में।'' – आदमी हत्यारे नहीं हो सकते

कवि फूलचंद गुप्ता ने कुछेक लम्बी कविताएँ लिखी है – 'हे राम !' (गुजरात त्रासदी पर लंबी कविता) पहल पुस्तिका जुलाई – २०००, जबलपुर से प्रकाशित हुई है। कवि ने कवि ने इस कविता में भारत ही नहीं विश्व के वर्तमान राजनीति के घिनौने रुप को प्रस्तुत किया है। तो दूसरी तरफ पूँजीवादी राज्य मशीनरी के फासीवादी चरित्र को उद्‌घाटित करने की कोशिश की है। इस कविता में इस घटना के दौरान उनके भोगे हुए अनुभव हैं। यह कविता समग्र भारतवर्ष में चर्चित रही।

'हे राम!' लम्बी कविता के अतिरिक्त आर्य नायक राम !, दहशत से हिलते हाथ की तरह, महागाथा, दीनू और कौवे (आखिरी दशक की लंबी कविताएँ – में प्रकाशित), इस दौर में, बदला नहीं है कुछ भी उसमें, पर, आत्मबोध, शिवाकाशी के पैंतालीस हजार बच्चे, जीवनलाल, बातचीत, कोई नहीं सुनाता आग के संस्मरण ये लंबी कविता देश और समाज में परिवर्तन लाने के लिए जन्मी है जो आधुनिक चेतना की उपज माना जा सकता है। कवि फूलचंद की लंबी कविताएँ छोटी सीमाओं को तोड़कर पाठकों को वर्तमान का वास्तविक चित्र दिखाती है। लंबी कविताओं में चिख, चिल्लाहट, संघर्ष, छटपटाहट सर्व व्याप्त है, जो वर्तमान से मुक्त होने के लिए कड़ा संघर्ष करती है।

कवि फूलचंद गुप्ता ने अंग्रेजी में ''GEMS – ON GRASS TIPS'' शीर्षक से गद्य कविताएँ लिखी है। जो २०१८ में मानव प्रकाशन कोलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। इस गद्य कविताओं में छोटी–छोटी कविताएँ लिखी गई है, जो जीवन

जीने का सही सलिका सिखाती है, हमारा आत्मविश्वास बढ़ाती है, हमें प्रेरणा देती है। गद्य कविता में कवि ने शिक्षक, छात्र, पशु–पक्षी, प्रकृति तत्त्व, पति–पत्नी, ग्रमीण–नगर, युद्ध आदि को अपनी कविता का विषय बनाया है।

फूलचंद गुप्ता मूलतः कवि है। लेकिन उन्होंने 'प्रायश्चित नहीं प्रतिशोध' नामक कहानी–संग्रह लिखा है जो १९९७ में रंगद्वार प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। जिसमें कुल सोलह कहानियाँ है। डॉ. शैलेष पंडित कहते है कि – ''फूलचंद की कहानियाँ बहुत कुछ कहती है। वे उँगली थामकर आपको इस वक्त का रेशा–रेशा समझाती हैं। वे आपको वहाँ से भी आगे ले जाती हैं, जहाँ शब्द कहानी के लिए परिधि बाँध देते हैं। हर कहानी का ट्रीटमेन्ट उस मुकाम पर है, जहाँ पहुँचकर लगता है कि इससे पहले न तो कहानी को कही छोड़ा जा सकता था और न इसके आगे कहानी को विचार दिया जा सकता है।

कविता, कहानी के अतिरिक्त फूलचंद गुप्ता ने दो गजल–संग्रह लिखें हैं। जिसमें पहला गजल–संग्रह 'ख्वाबख्वाहों की सदी है' जो २००९ में रुचिर प्रकाशन पालडी अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ। जिसमें कुल मिलाकर सतासी (९७) गजले लिखी गई है। इस गजल–संग्रह को गुजरात हिन्दी साहित्य अकादमी की ओर से २००९ का व्दितीय पारितोषिक २१ दिसम्बर, २०१३ के दिन गुजरात के युवा एवं सांस्कृतिक प्रवृत्ति मंत्री के द्वारा दिया गया। दूसरा गजल–संग्रह 'आरजू–ए–फूलचंद' २०१५ में मानव प्रकाशन कोलकत्ता से प्रकाशित हुआ। जिसमें कुल मिलाकर पचानवें गजले लिखी गई है।

'ख्वाबख्वाहों की सदी है' गजल–संग्रह में अपनी बात से फूलचंद जी कहते है कि मेरी कहानियों तथा कविताओं की तरह ही ये गजले भी एक अर्थ में मेरी आत्मकथाएँ हैं। ज्यादातर गजलें खिन्न एवं अशांत मनोदसा में लिबी गई हैं। गजलों के लिखे जाने के पश्चात् भी खिन्नता एवं अशांति खत्म नहीं हुई, बल्कि बढ़ती गई है।

फूलचंद गुप्ता की गजलें मनुष्य और मनुष्यता में विश्वास की गजलें हैं। इन गजलों में जीवन की सच्चाईयों का दर्पण है, संघर्ष की ताकत है और भविष्य का यकीन है। इनकी गजलें उस जन पक्षीय वैचारिक चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति है जो मनुष्य जाति के उज्ज्वल भविष्य को अपना लक्ष्य मानती है। विचार, भाव और भाषा का सुंदर संयोजन इनकी गजलों को विशिष्ट बनाता है।

''क्या काम है मुझको, तेरे ऊँचे मकान से
मेरा मुकाबला है फकत आसमान से।''

उपरोक्त शे'र से पता चलता है कि कवि फूलचंद सर्वहारा वर्ग से जुड़े आदमी हैं तथा उनका लक्ष्य उच्चवर्ग में सम्मिलित हो जाना न होकर अपने वर्गीय संघर्ष के समाज की पीड़ा, चुभन, टीस उनकी कविताओं में देखने को मिलती हैं। वह हमेशा आम–आदमी का पक्ष लेते है।[८]

'गांधी अंतरमन' चिंतन निबंध गुजराती भाषा में साबरग्रम सेवा महाविद्यालय, सोनासन द्वारा २००८ में प्रकाशित हुआ। इस किताब में गांधी जी को एक संत के रुप में नहीं बल्कि एक विचारक के रुप में प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने गांधीजी को पाने और विचारों को समझाने के लिए मार्गदर्शन का काम किया है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी फूलचंद गुप्ता ने श्री रघुवीर चौधरी के दो उपन्यासों 'दरार' एवं 'लगाव' का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री पन्नालाल पटेल तथा श्री रघुवीर चौधरी की कई कहानियों का अनुवाद किया है। इसके साथ–साथ गुजराती के कई उपन्यासों, कविताओं, लेखों, नाटकों, कहानियों और साक्षात्कारों के अनुवाद किए हैं। विश्व विख्यात अंग्रेजी नाट्यकार यूजिन ओ निल के नाटक 'द हेरी एप' का हिन्दी अनुवाद 'बन बानुस' शीर्षक से किया है। 'अपराजिता' नामक उपन्यास भी लिखा है जो उपलब्ध नहीं है।

कवि फूलचंद जी के शब्दों में क्रांति जब भी होगी शब्दों के मशाल के सहयोग से होगी। उनका यह अखंड और दृढ़ विश्वास नवोदित सर्जको तथा कर्मशीलों को हमेशा प्रेरित करता रहेगा।

बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार एवं हिन्दी के यशस्वी कवि फूलचंद गुप्ता पाठकों, लेखकों के लिए नयी सोच

और विचार देने वाले पारदर्शी संवेदनाओं के कवि है। जो अपने समय के काल और परिवेश से पूरी तरह परिचित है एवं सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक मुद्दों से भी अच्छी तरह परिचित है। मानव–जाति, देश–दुनिया, गरीब, मजदूर, बेरोजगार के प्रति उनकी गहरी चिंता और निष्ठा होने के साथ ही उन्हें एक जनवादी कवि रुप में प्रस्तुत करता है।

आधार संदर्भ ग्रंथ :–

१. जनवादी कवि फूलचंद गुप्ता : मनोर देसाई, पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदावाद, प्रथम संस्कारण–२०१४
२. इसी माहौल में : फूलचंद गुप्ता, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण–१९९६
३. शब्द, अर्थ और भावार्थ : डॉ. अमृत प्रजापति, रंगद्वार प्रकाशन, प्रथम संस्करण–२०१५
४. पायश्चित नहीं प्रतिशोध : फूलचंद गुप्ता, पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण–१९९७
५. आरजू–ए–फूलचंद : फूलचंद गुप्ता, मानव प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम संस्करण–२०१५
६. ख्वाबख्वाहों की सदी है : फूलचंद गुप्ता, रुचिर प्रकाशन, हिम्मतनगर–गुजरात, प्रथम संस्करण–२००९

पता राठोड हिनाबहन सुरेशकुमार
शोधार्थी, हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण, गुजरात।
गाँव एवं पोस्ट सरडोई
तहसील मोडासा
जिला अरवल्ली
पिनकोड ३८३३२०
व्हाट्सएप नंबर ९६६४५०१८५७

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 78-87

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਪੰਜਾਬੀ ਔਰਤਾਂ ਦੇ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ੇ : ਇੱਕ ਸਰਵੇਖਣ

-Amandeep Kaur

Research Scholar, CT University, Ludhiana

ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ੇ ਔਰਤਾਂ ਦੁਆਰਾ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ । ਇਹ ਲੋਕਧਾਰਾ ਦੀ ਇੱਕ ਵੰਨਗੀ ਹਨ । ਲੋਕਧਾਰਾ ਕਿਸੇ ਇਲਾਕੇ ਜਾਂ ਖਿੱਤੇ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਜੀਵਨ-ਜਾਚ ਨਾਲ ਜੁੜੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਉੱਥੋਂ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਮਾਪਦੰਡ, ਰਸਮ-ਰਿਵਾਜ ਮਾਨਸਿਕ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਅਤੇ ਨਿੱਜੀ ਖਾਹਿਸਾਂ ਸਭ ਕੁੱਝ ਸਮਾਇਆ ਹੁੰਦਾ ਹੈ । ਲੋਕਧਾਰਾ ਲੋਕ-ਦਬਾਵਾਂ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋਣ ਦਾ ਸਾਧਨ ਵੀ ਹੈ । ਲੋਕਧਾਰਾ ਦੇ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਰੂਪ ਲੋਕ-ਗੀਤ, ਲੋਕ-ਨਾਚ, ਲੋਕ-ਨਾਟ, ਸੁਹਾਗ, ਘੋੜੀਆਂ, ਸਿੱਠਣੀਆਂ, ਹੇਅਰੇ ਅਤੇ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ੇ ਆਦਿ ਹਨ । ਇਹ ਸਾਰੇ ਰੂਪ ਸਮਾਜਿਕ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਸਥਿਤੀਆਂ ਨਾਲ ਜੁੜੇ ਵਿਭਿੰਨ ਮਨੁੱਖਾਂ ਦੇ ਉਚਾਰ ਹਨ । ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਦੇ ਲਗਭਗ ਸਾਰੇ ਰੂਪਾਂ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਔਰਤਾਂ ਦੁਆਰਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । ਉਹ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਆਪਣੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਵਿਅਕਤ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ । ਲੋਕਧਾਰਾ ਦੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਰਤਾਰਿਆਂ ਦਾ ਅਧਿਐਨ ਉਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਨੂੰ ਸਮਝ ਕੇ ਹੀ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਇਹ ਵਰਤਾਰੇ ਹੋਂਦ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਨਿਭਾਏ ਜਾਂਦੇ ਹਨ।

ਔਰਤਾਂ ਦੇ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ੇ ਨਿਰੋਲ ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਹਨ । ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਵੀ ਔਰਤਾਂ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ।ਇਹ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ੇ ਨਾਚ ਅਤੇ ਨਾਟ ਦਾ ਸੁਮੇਲ ਹੁੰਦੇ ਹਨ । ਇਹ ਗਿੱਧੇ ਵਿੱਚ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਪ੍ਰੰਤੂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਲੱਛਣ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਇਹ ਨਾ ਤਾਂ ਗਿੱਧੇ ਦੇ ਸ਼ੁਰੂ ਵਿੱਚ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਅੰਤ ਵਿੱਚ ਸਗੋਂ ਇਹ ਗਿੱਧੇ ਦੇ ਵਿਚਕਾਰ ਜਦੋਂ ਗਿੱਧਾ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮਘ ਪੈਂਦਾ ਹੈ ਉਦੋਂ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਇਹ ਤਮਾਸ਼ੇ ਮਰਦਾਂ ਦੀ ਗੈਰ-ਹਾਜ਼ਰੀ ਵਿੱਚ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ । ਇਨ੍ਹਾਂ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਕੁਆਰੀਆਂ ਕੁੜੀਆਂ ਨੂੰ ਵੀ ਦੇਖਣ ਦੀ ਮਨਾਹੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । ਕਿਉਂਕਿ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਕਈ ਵਾਰ ਅਜਿਹੇ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜਿਹੜੇ ਅਸ਼ਲੀਲ ਹੁੰਦੇ ਹਨ । ਇਸ ਲਈ ਇਹ ਵਿਆਹੀਆਂ ਹੋਈਆਂ ਔਰਤਾਂ ਦੁਆਰਾ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ।

ਪਰੰਪਰਾਗਤ ਦਾਇਰਿਆਂ ਵਿੱਚ ਕਿਸੇ ਸਮੇਂ ਸ੍ਵਾਂਗ-ਤਮਾਸੇ ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਹਰਮਨ ਪਿਆਰੀ ਪ੍ਰਦਰਸ਼ਨ ਕਲਾ ਵਜੋਂ ਨਿਭਾਏ ਜਾਂਦੇ ਰਹੇ ਹਨ। ਪ੍ਰੰਤੂ ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਇਹ ਕਲਾ ਤੇਜੀ ਨਾਲ ਲੋਪ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾ ਕਿ ਇਹ ਬਿਲਕੁਲ ਖਤਮ ਹੋ ਜਾਵੇ, ਪ੍ਰੰਪਰਾਗਤ ਔਰਤ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਲਈ ਇਸ ਨੂੰ ਇਕੱਤਰ ਕਰਕੇ ਇਸਦਾ ਅਧਿਐਨ ਲਾਜਮੀ ਹੈ।

ਸਿਮੋਨ ਬੋਵੂਆਰ ਨੇ ਆਪਣੀ ਪੁਸਤਕ 'ਸੈਕੰਡ ਸੈਕਸ' ਵਿੱਚ ਸਮਾਜ ਵੱਲੋਂ ਔਰਤ ਨੂੰ ਦੂਜੈਲਾ ਸਥਾਨ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਅਤੇ ਔਰਤ ਤੇ ਵਸਤੂ ਹੋਣ ਦੇ ਜਿਸ ਸੱਚ ਨੂੰ ਉਜਾਗਰ ਕਰਦੀ ਹੈ, ਪੰਜਾਬੀ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਉਸ ਤੋਂ ਵਧੇਰੇ ਤ੍ਰਾਸਦਿਕ ਰਹੀ ਹੈ। ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਸਮਾਜ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਵਿਵਸਥਾ ਤਾਂ ਔਰਤ ਦੀ ਮਾਨਵੀ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਹੀ ਸਵੀਕਾਰ ਕਰਨ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰੀ ਹੈ, ਔਰਤ ਵੀ ਆਪਣੀ ਇਸ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਭਲੀ ਭਾਂਤ ਜਾਣਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਇਹ ਵੀ ਜਾਣਦੀ ਹੈ ਕਿ ਸਥਾਪਿਤ ਜੀਵਨ ਮੁੱਲਾਂ ਦੀ ਪਾਲਣਾ ਭਾਵੇਂ ਔਰਤ ਅਤੇ ਮਰਦ ਦੋਹਾਂ ਲਈ

ਜ਼ੂਰੀ ਹੈ ਪਰ ਮਰਦ ਦੀਆਂ ਜਿਹੜੀਆਂ ਕੁਤਾਹੀਆਂ ਨੂੰ ਸਮਾਜ ਸਹਿਜੇ ਹੀ ਅਣਦੇਖਿਆ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ, ਔਰਤ ਨੂੰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਕੁਤਾਹੀਆਂ ਲੀ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੰਡਿਤ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਅਜਿਹੇ ਮਾਨਸਿਕ ਸੰਕਟ ਅਤੇ ਤਣਾਉ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋਣ ਲਈ ਹੀ ਔਰਤ ਵਿਭਿੰਨ ਕਲਾਵਾਂ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਜਿਹੜੀਆਂ ਕਿ ਉਸਦੀਆਂ ਦਮਿਤ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਪਤਾ ਹੈ ਕਿ ਜੇਕਰ ਅਜਿਹੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਅਤੇ ਇਛਾਵਾਂ ਵੱਲ ਲੈ ਜਾਣਗੀਆਂ ਜਾਂ ਫਿਰ ਲਾਵੇ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਫੁੱਟ ਕੇ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਤਹਿਸ-ਨਹਿਸ ਕਰ ਦੇਣਗੀਆਂ।

ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ੇ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ ਅਤੇ ਬਣਤਰ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ ਸ਼੍ਰੇਣੀਬੱਧ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ।

ੳ) ਵਿਸ਼ੇ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ

ਅ) ਬਣਤਰ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ

ੳ) ਵਿਸ਼ੇ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ:- ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਮੁੱਖ ਚਾਰ ਸ਼੍ਰੇਣੀਆਂ ਬਣਦੀਆਂ ਹਨ ।

1) ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਸਮਾਜਿਕ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਕੀਮਤਾਂ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ

2) ਔਰਤ ਦਾ ਮਰਦ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ

3) ਔਰਤ ਦਾ ਔਰਤ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ

4) ਔਰਤ ਦਾ ਮਰਦ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਨਾ ।

1) ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਸਮਾਜਿਕ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਕੀਮਤਾਂ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ :-

ਸਮਾਜਿਕ ਵਿਵਸਥਾ ਨੂੰ ਬਣਾਈ ਰੱਖਣ ਲਈ ਹਰ ਸਮਾਜ ਦਾ ਆਪਣਾ ਇੱਕ ਕੀਮਤ-ਪ੍ਰਬੰਧ ਹੁੰਦਾ ਹੈ । ਉਸ ਸਮਾਜ ਨਾਲ ਸਬੰਧਿਤ ਹਰ ਮਨੁੱਖ ਲਈ ਇਸ ਕੀਮਤ-ਪ੍ਰਬੰਧ ਨੂੰ ਸਵੀਕਾਰ ਕਰਨਾ ਲਾਜਮੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ । ਵੱਖ-ਵੱਖ ਸੱਭਿਆਚਾਰਾਂ ਵਿੱਚ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ । ਜਿਹੜੀਆਂ ਕਿ ਸਮਾਜਿਕ, ਆਰਥਿਕ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਸਥਿਤੀ ਤੇ ਅਧਾਰਿਤ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ । ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਸਭ ਮਨੁੱਖਾਂ ਦਾ ਦਰਜ ਬਰਾਬਰ ਨਹੀਂ ਹੈ । ਇਸ ਵਿੱਚ ਮਰਦ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਨਾਲੋਂ ਔਰਤ ਤੇ ਜਿਆਦਾ ਬੰਦਸ਼ਾ ਲਗਾਈਆਂ ਗਈਆਂ ਹਨ । ਔਰਤ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਗੱਲ ਕਹਿਣ ਦੀ ਵੀ ਆਜਾਦੀ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ । ਉਸ ਨੂੰ ਮਰਦ ਦੀ ਅਧੀਨਗੀ ਵਾਲਾ ਜੀਵਨ ਬਤੀਤ ਕਰਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ । ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਥਿਤੀਆਂ ਪ੍ਰਤੀ ਔਰਤ ਦੇ ਦਿਲ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ ਪੈਦਾ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਇਸ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ ਨੂੰ ਉਹ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਰਾਹੀ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ ।

ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚੋਂ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤ ਦਾ ਸਮਾਜਿਕ ਰਸਮਾਂ, ਵਿਆਹ-ਸੰਸਥਾ, ਆਰਥਿਕ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਥਿਤੀ ਆਦਿ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਮਿਲਦਾ ਹੈ । ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਉਹ ਇਨ੍ਹਾਂ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਰਾਂਹੀ ਰੂਪਮਾਨ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ ।

ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਦੀ ਇੱਕ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਸੰਸਥਾ 'ਵਿਆਹ-ਸੰਸਥਾ' ਹੈ । ਪ੍ਰੰਤੂ ਇਸ ਸੰਸਥਾ ਵਿੱਚ ਆਪਣੇ ਲਈ 'ਵਰ' ਦੀ ਚੋਣ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਔਰਤ ਕੋਲ ਨਹੀਂ ਹੈ । ਇਹ ਅਧਿਕਾਰ ਤਾਂ ਸਮਾਜ ਨੇ ਉਸਦੇ ਮਾਪਿਆਂ ਨੂੰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਆਪਣੀ ਲੜਕੀ ਲਈ ਵਰ ਦੀ ਚੋਣ ਕਰਨਗੇ । ਮਾਪਿਆਂ ਦੁਆਰਾ ਲੱਭੇ ਵਰ ਨਾਲ ਬੇਸ਼ਕ ਲੜਕੀ ਆਪਣੇ ਸੁਹਰੇ ਚਲੇ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਪ੍ਰੰਤੂ ਇਸ ਕੁ-ਜੋੜ ਵਿਆਹ ਦੀ ਪੀੜ ਉਸ ਦੇ ਦਿਲ ਵਿੱਚ ਹਮੇਸ਼ਾ ਪੈਂਦੀ ਹੈ । ਜਿਵੇ :- ਮੈਂ ਨਹੀਓ ਲੈਣਾ ਮੂਲੀ ਵਾਲਾ,..... ਤੈਨੂੰ ਹੀ ਦੇਣਾ ਮੂਲੀ ਵਾਲਾ', 'ਮਾਏ ਨੀ ਮਾਏ, ਬੁੱਢਾ ਮੈਂ ਨਹੀਓ ਲੈਣਾ', 'ਮੈਂ ਨੀ ਜਾਣਾ ਬੁੱਢੜੇ ਨਾਲ', 'ਜੇਠ ਲਿਆਇਆ ਨਾਰ.....' 'ਨਰੈਣ ਦੇਈ ਬੋਲੇ ਨਾ..... ਮੈਂ ਤਾਂ ਲੱਖ ਰੁਪਈਆ ਲਾਇਆ'', 'ਮੈਂ ਨੀ ਕਾਣਾ ਲੈਣਾ', 'ਮੈਂ ਮਧਰੇ ਨੂੰ ਮੰਗੀ.....' 'ਮੈਂ ਨਹੀਂ ਸੁਹਰੇ ਜਾਣਾ ਆਦਿ ਤਮਾਸਿਆ ਵਿੱਚ ਸਾਨੂੰ ਔਰਤ ਦੀ ਇਸ ਵਿਆਹ ਸੰਸਥਾ ਪ੍ਰਤੀ ਰਵਈਆ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਦਿਲੋਂ ਇਸ ਨੂੰ ਨਿਕਾਰਦੀ ਹੈ । ਉਹ ਇਸ ਨੂੰ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ:-

ਪੇਸ਼ਕਾਰ ਔਰਤ	:	ਮੇਰੇ ਪੀੜ ਹੁੰਦੀ ਹੈ
		ਮਾਏ ਮੇਰੇ ਪੀੜ ਹੁੰਦੀ ਐ ..... (ਤਿੰਨ ਵਾਰ ਦੁਹਰਾਓ)
ਸਮੂਹ	:	ਕਿੱਥੇ ਹੁੰਦੀ ਐ ?
ਪੇਸ਼ਕਾਰ ਔਰਤ	:	ਪੀੜ ਹੁੰਦੀ ਸੱਜੇ ਗੋਡੇ
		ਪੀਂਦਾ ਭੰਗ ਸ਼ਰਾਬਾਂ ਡੋਡੇ
		ਮੇਰੇ ਪੀੜ ਹੁੰਦੀ ਐ.....
ਸਮੂਹ	:	ਕਿੱਥੇ ਹੁੰਦੀ ਐ ?
ਪੇਸ਼ਕਾਰ ਔਰਤ	:	ਪੀੜ ਵਗਦੀ ਅੱਖੀਆਂ ਥਾਂਣੀ
		ਮੈਨੂੰ ਕੰਤ ਮਿਲਿਆ ਨਾ ਹਾਣੀ
		ਮੇਰੇ ਪੀੜ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ..... ।

ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਕਈ ਵਾਰ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਵੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਜਦੋਂ ਆਰਥਿਕ ਸਥਿਤੀ ਠੀਕ ਨਾ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਕਿਸੇ ਵਿਅਕਤੀ ਦਾ ਵਿਆਹ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ ਇਸ ਸਥਿਤੀ ਵਿੱਚ ਉਹ 'ਮੁੱਲ ਦੀ ਤੀਵੀਂ' ਲੈ ਕੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਔਰਤ (ਮੁੱਲ ਦੀ ਲਿਆਂਦੀ) ਉਸ ਨੂੰ ਪਤੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਸਵੀਕਾਰ ਕਰਨ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਉਸ ਦੇ ਮਨ ਅਜਿਹੀ ਸਮਾਜਿਕ ਸਥਿਤੀ ਪ੍ਰਤੀ ਵਿਰੋਧ ਪਾਇਆ ਜਾਦਾ ਹੈ:-

ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਦੇਖਣ ਤੇ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤ ਦਾ ਸਮਾਜਿਕ-ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਵਿਰੁੱਧ ਰੋਹ ਪਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਉਹ ਮਾਨਸਿਕ ਤੌਰ ਤੇ ਅਜਿਹੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਨਿਕਾਰਦੀ ਹੈ। ਇਹ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਅਣਜੋੜ ਵਿਆਹ, ਵੱਡੀ ਉਮਰ ਦਾ ਪਤੀ, ਆਰਥਿਕ ਥੁੜ੍ਹਾਂ ਭਰੀ ਜਿੰਦਗੀ, ਜਾਤ-ਪ੍ਰਥਾ ਆਦਿ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ।

ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਆਰਥਿਕ ਸਥਿਤੀ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਜਾਤ-ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਬਾਰੇ ਵੀ ਵੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬ ਪੇਤੀ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸੂਬਾ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਇਸ ਵਿੱਚ 'ਜੱਟ-ਜਾਤੀ' ਨੂੰ ਉੱਤਮ, ਬਹਾਦਰ ਤੇ ਕਾਮੇ ਦਰਸਾਇਆ ਹੈ । ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸੁਭਾਅ ਨੂੰ ਵੀ ਪ੍ਰਗਟ ਕੀਤਾ ਹੈ । ਬ੍ਰਾਹਮਣਾਂ, ਝੀਊਰਾਂ, ਨਾਈਆਂ ਆਦਿ ਦੇ ਕੰਮਾਂ ਬਾਰੇ ਦੱਸਦੇ ਹੋਏ ਇਹ ਵੀ ਦਰਸਾਇਆ ਹੈ ਕਿ ਇਹ ਜੱਟ ਤੇ ਨਿਰਭਰ ਸੀ । ਜਿਵੇਂ 'ਤੋੜ ਲੈਣ ਦੇ ਮੁੱਠ ਗੰਦਲਾਂ ਦੀ ਚੀਰਨੀ, ਜੱਟਾਂ ਦੇ ਆਏ ਪ੍ਰਹੁਣੇ, ਅਸੀਂ ਵੱਡੇ ਬ੍ਰਾਹਮਣ, ਮੰਗਦੇ ਨਾ ਸੰਗਦੇ, ਸਾਵਾ ਬਈ ਮੈਂ ਢਿੱਲੋਂ ਆਂ ਆਦਿ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ੇ ਇਸ ਗੱਲ ਦੀ ਗਵਾਹੀ ਭਰਦੇ ਹਨ ।

2) ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਮਰਦ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ:-

ਸਮਾਜਿਕ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਤੋਂ ਬਿਨ੍ਹਾਂ ਔਰਤਾਂ ਦੇ ਮਨ ਵਿੱਚ ਇਨ੍ਹਾਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਦੇ ਸਿਰਜਕ ਮਰਦ ਪ੍ਰਤੀ ਵੀ ਰੋਹ ਪਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਮਰਦ ਨੇ ਜਦੋਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਬਣਾਈਆਂ ਤਾਂ ਆਪਣੇ ਲਈ ਖੁੱਲ੍ਹ ਲੈ ਲਈ ਪ੍ਰੰਤੂ ਔਰਤ ਲਈ ਕਈ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀਆਂ ਬੰਦਸ਼ਾਂ ਲਗਾ ਦਿੱਤੀਆਂ, ਔਰਤ ਨੂੰ ਹਮੇਸ਼ਾਂ ਅਧੀਨਗੀ ਵਾਲਾ ਜੀਵਨ ਬਸਰ ਕਰਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ । ਵਿਆਹ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਪਿਤਾ ਦੀ ਅਧੀਨਗੀ, ਵਿਆਹ ਤੋਂ ਪਿੱਛੋਂ ਪਤੀ ਦੀ ਅਤੇ ਫਿਰ ਪੁੱਤਰ ਦੀ ਅਧੀਨਗੀ। ਉਸ ਦੀ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਪਛਾਣ ਵੀ ਮਰਦ ਕਰਕੇ ਹੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਕਿਸ ਦੀ ਪੁੱਤਰੀ, ਕਿਸਦੀ ਪਤਨੀ ਅਤੇ ਕਿਸਦੀ ਮਾਂ ਹੈ । ਸੋ ਔਰਤ ਦੇ ਮਨ ਵਿੱਚ ਮਰਦ ਪ੍ਰਤੀ ਵੀ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ।

''ਡਾਕਟਰ ਆਇਅ ਜੰਮੂ ਤੋਂ'', 'ਲੜਿਆ ਨੀ ਮਾਏ ਮੇਰੇ ਬਾਸ਼ਕ ਨਾਗ'', 'ਨਸ਼ਾ ਪਿਆ ਦੇ ਬਈ ਨਸ਼ਾ ਪਿਆ ਦੇ, ਇੱਥੇ ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਬਾਹਰੋਂ ਲਿਆ ਦੇ'', 'ਬਾਬੇ ਦਾ ਕੰਮ ਸਰੇ ਗਿਆ', ਬਾਬਾ ਤਾਂ ਪਾਲੇ ਠਰੇ ਗਿਆ'', ਰੰਨਾਂ ਦੋ-ਦੋ ਬੁਰੀਆਂ, ਹਾਏ ਨੀ ਮੇਰੀ ਆਰਸੀ.....', 'ਵੇਖੋ ਮੇਰੀ ਰਾਮ ਲੀਲਾ.....', 'ਸੂਟਾਂ ਦਾ ਵਣਜਾਰਾ ਆਇਆ', 'ਸੇਲ ਬਈ ਸੇਲ ਢਾਈ ਆਨੇ ਸੇਲ.....'', ਅੱਡੀ-ਕੁ ਬੁਗਨੀ .....ਜੇ ਕੰਤ ਸੁਣੇਗਾ, ਧੌਣ

ਵੱਢੇਗਾ.....ਦੀ ਭੈਣ ਦੀ ਘੱਗਰੀ ਨੂੰ ਤੂੰਬੇ ਲੱਗਣਗੇ' ਆਦਿ ਤਮਾਸ਼ਿਆ ਵਿੱਚ ਔਰਤ ਦਾ ਮਰਦ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਝਲਕਦਾ ਹੈ ।

ਓ) ਦੋ ਔਰਤਾਂ : ਅਸੀਂ ਦੋਵੇ ਸਕੀਆਂ ਭੈਣਾਂ

ਸਮੂਹ : ਵੇ ਰਾਂਝਣਾ

ਔਰਤਾਂ : ਅਸੀਂ ਬਾਹਰ ਗਈਆਂ ਕੱਠੀਆਂ

ਸਮੂਹ : ਵੇ ਰਾਂਝਣਾ

ਔਰਤਾਂ : ਅੱਗੇ ਚੀਰੇ ਵਾਲਾ ਮਿਲਿਆ

ਸਮੂਹ : ਵੇ ਰਾਂਝਣਾ

ਔਰਤਾਂ : ਉਨ੍ਹੇ ਦੋਵੇਂ ਪਕੜ ਘਰ ਖੜੀਆਂ

ਸਮੂਹ : ਵੇ ਰਾਂਝਣਾ

ਔਰਤਾਂ : ਇੱਕ ਪਕਾਵੇਂ ਰੋਟੀਆਂ ਦੂਜੇ ਤਲੇ ਵੜੀਆਂ

ਸਮੂਹ : ਵੇ ਰਾਂਝਣਾ

ਔਰਤਾਂ : ਆਪ ਤੇ ਗਿਆ ਪੈ

ਅਸੀਂ ਪੈਂਦ ਸਰ੍ਹਾਣੇ ਖੜੀਆਂ

ਸਮੂਹ : ਵੇ ਰਾਂਝਣਾ

ਔਰਤਾਂ : ਜਦੋਂ ਪਾਸਾ ਮੋੜਿਆਂ, ਅਸੀਂ ਦੋਵੇਂ ਵੜੀਆਂ

ਇੱਕ ਨੇ ਫੜਿਆਂ ਦਾੜ੍ਹੀਓ

ਦੂਜੀ ਪੰਜ ਸੱਤ ਧਰੀਆਂ ।

ਦੋ ਰੰਨਾਂ ਬੁਰੀਆਂ ਵੇ ਲੋਕਾਂ ਦੋਂ ਰੰਨਾਂ ਬੁਰੀਆਂ ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਾਨੂੰ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਤੋਂ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤਾਂ ਦੇ ਮਨ ਵਿੱਚ ਮਰਦ ਪ੍ਰਤੀ ਕਈ ਕਾਰਨਾਂ ਕਰਕੇ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਦਰੋਹ ਪਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਜਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕਿ ਮਰਦ ਦੁਆਰਾ ਉਸ ਦੀ

ਵਸਤੂ ਵਾਂਗ ''ਸੇਲ'' ਲਗਾਉਣਾ ਅਤੇ ਖ੍ਰੀਦ-ਵੇਚ ਕਰਨਾ । ਇਸ ਤੋਂ ਮੁੱਲ ਦੀ ਔਰਤ ਲਿਆਉਣ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਮੌਜੂਦ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨ੍ਹਾਂ ਔਰਤ ਜੇ ਕਿਸੇ ਕਿਸਮ ਦੀ ਤਕਲੀਫ ਵਿੱਚ ਹੈ ਤਾਂ ਵੀ ਉਹ ਮਰਦ ਕੋਲੋਂ ਡਰਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸਨੂੰ ਨਹੀਂ ਦੱਸ ਸਕਦੀ । ਕਿਤੇ ਉਸ ਨੂੰ ਸਹੁਰੇ ਦਾ ਡਰ, ਜੇਠ ਦਾ ਅਤੇ ਪਤੀ ਦਾ ਡਰ । ਵਿਆਹ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਪਿਓ, ਚਾਚੇ-ਤਾਇਆਂ ਅਤੇ ਭਰਾਵਾਂ ਦਾ ਡਰ ਹੈ । ਔਰਤ ਦੇ ਦਿਲ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਨਸ਼ੇੜੀ ਲਈ ਵੀ ਵਿਰੋਧ ਹੈ । ਕਿਉਂਕਿ ਇਹ ਨਸ਼ੇੜੀ ਹੀ ਉਸ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਬਰਬਾਦ ਕਰਦਾ ਹੈ । ਜਦੋਂ ਮਰਦ ਇੱਕ ਔਰਤ ਦੇ ਹੁੰਦਿਆਂ ਦੂਜੀ ਔਰਤ ਦੀ ਝਾਕ ਰੱਖਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਫਿਰ ਹੀ ਉਸਦੇ ਦਿਲ ਵਿੱਚ ਜਿੱਥੇ ਸਮਾਜਿਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਵਿਰੁੱਧ ਰੋਹ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਿਸਨੇ ਮਰਦ ਨੂੰ ਅਜਿਹੀ ਖੁੱਲ੍ਹ ਦਿੱਤੀ ਹੈ, ਉਥੇ ਮਰਦ ਪ੍ਰਤੀ ਵੀ ਰੋਹ ਹੈ, ਜੋ ਕਿ ਇੱਕ ਦੇ ਹੁੰਦਿਆਂ ਦੂਜੀ ਔਰਤ ਲੈ ਕੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ । ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨ੍ਹਾਂ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਇਹ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੇ ਕਿ ਜੇਕਰ ਔਰਤ ਤੋਂ ਕੋਈ ਥੋੜ੍ਹੀ ਜਿਹੀ ਗਲਤੀ ਹੋ ਜਾਵੇ ਜਾਂ ਫਿਰ ਕੁੱਝ ਗੁੰਮ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਉਸਨੂੰ ਮਰਦ ਦੁਆਰਾ ਸਜ਼ਾ ਦਿੱਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ । ਜਦਕਿ ਉਸ ਆਪਣੇ ਲਈ ਕੋਈ ਸਜ਼ਾ ਨਹੀਂ । ਇਸ ਤੋਂ ਬਿਨ੍ਹਾਂ ਵਣਜਾਰਿਆਂ, ਸਾਧਾਂ, ਬ੍ਰਾਹਮਣਾਂ ਦੇ ਚਰਿੱਤਰ ਨੂੰ ਵੀ ਮੂਰਤੀਮਾਨ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ ਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਅਸਲੀਅਤ ਕੀ ਹੈ ।

3) ਔਰਤ ਦਾ ਔਰਤ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਤੇ ਵਿਰੋਧਃ-

ਔਰਤ ਦੇ ਦਿਲ ਵਿੱਚ ਜਿੱਥੇ ਸਮਾਜਿਕ ਕੀਮਤ-ਪ੍ਰਬੰਧ ਅਤੇ ਮਰਦ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ ਮਿਲਦਾ ਹੈ । ਉੱਥੇ ਉਸ ਦੇ ਦਿਲ ਵਿੱਚ ਦੂਜੀ ਔਰਤ ਪ੍ਰਤੀ ਰੋਹ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ ਮਿਲਦਾ ਹੈ । ਇਹ ਦੂਜੀ ਔਰਤ ਸੱਸ, ਨਨਾਣ, ਜੇਠਾਣੀ, ਸੌਕਣ, ਸ਼ਰੀਕਣ ਆਦਿ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ।ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਦੋ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਮਿਲਦੇ ਹਨ । ਇੱਕ ਖ਼ੂਨ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਅਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਰਿਸਤੇ । ਖ਼ੂਨ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਪੁੱਤਰ/ਧੀ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਪੇਕੇ ਪਰਿਵਾਰ ਦੇ ਸਾਰੇ ਰਿਸਤੇ (ਮਾਂ-ਪਿਓ, ਭੈਣ-ਭਰਾ) ਆ ਜਾਂਦੇ ਹਨ । ਜਦਕਿ ਸਮਾਜਿਕ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਸਹੁਰੇ ਪਰਿਵਾਰ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇਦਾਰ (ਸੱਸ-ਸੁਹਰਾ, ਨਨਾਣ, ਦਿਉਰ, ਦਰਾਣੀ, ਜੇਠ, ਜੇਠਾਣੀ, ਆਦਿ) ਹੁੰਦੇ ਹਨ । ਬੇਸ਼ਕ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਮਾਜਿਕ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਪਿਆਰ ਰੱਖਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਪ੍ਰੰਤੂ ਫਿਰ ਵੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਕੁੜੱਤਣ ਪੈਦਾ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ । ਆਮ ਤੌਰ ਤੇ ਜਿਹੜੇ ਰਿਸਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਕੁੜੱਤਣ ਵਾਲੇ ਪੇਸ਼ ਹੋਏ ਹਨ । ਉਹ ਹਨ ! ਨੂੰਹ-ਸੱਸ ਦਾ ਰਿਸ਼ਤਾ, ਨਨਾਣ-ਭਰਜਾਈ ਦਾ, ਦਰਾਣੀ-ਜੇਠਾਣੀ ਦਾ, ਸੌਕਣ-ਸੌਕਣ ਦਾ, ਸ਼ਰੀਕਣ ਦਾ ਆਦਿ । ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਅਜਿਹੇ ਵਿਸ਼ੇ ਵੀ ਉਭਰਦੇ ਹਨ ਜਦੋਂ ਔਰਤ ਦਾ ਦੂਜੀ ਔਰਤ ਪ੍ਰਤੀ ਰਹੀ ਰੋਹ ਪਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਇਹ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ੇ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਇਹ ਵਿਰੋਧ ਝਲਕਦਾ ਹੈ । 'ਨਾਲੇ ਕੱਤਾਂ ਨਾਲੇ ਬਾਲਕੇ ਨੂੰ ਦੇਵਾਂ ਲੋਰੀਆਂ..... ਇਹ ਕਹੇ ਦਾਦੀ.....ਦਾਦੀ....., ਵੇ ਕਹਿ ਨਾਨੀ.....ਨਾਨੀ, ਤੇਰੀ ਦਾਦੀ ਨੇ ਤਾਂ ਮੇਰਾ ਜੀਣਾ ਹਰਾਮ ਕੀਤਾ ਪਿਆ ਏ.....', 'ਟਾਹਲੀ ਦਾ ਸੰਦੂਕ ਬਣਾ ਤਾਂ' ਅੱਜੇ ਮੇਰੀ ਮਥਰਾ ਮਰ ਚੱਲੀ ਏ.....', 'ਨਣਦੇ ਨੀ ਜਾ ਸਹੁਰੇ,' 'ਅਸ਼ੀਂ ਗੰਗਾ ਚੱਲ....., ਰਾਂਤੀ ਉਹਨੇ ਬੜਾ ਈ ਕੁੱਟਿਆ.....,' 'ਹੁਣ ਲੜ ਸੌਕਣੇ', 'ਆਹ ਮੇਰੀ ਸੌਕਣ ਦਾ ਡੰਡਾ, ਸ਼ੌਕਣ

ਮਰ ਜੇ ਤਾਂ ਚੰਗਾ ....., 'ਲੰਬੜਾਂ ਦੇ ਵਿਹੜੇ ਮੇਰੀ ਉਗਲ ਮਰੋੜੀ.....' ਰੰਡੀ ਮੇਮ ਨਾਲ ਰਹਿੰਦਾ ਨੀ ਆਦਿ ।

ਇੱਥੇ ਕੁੱਝ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਵੀ ਕੀਤਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਇਹ ਵਿਰੋਧ ਉੱਭਰ ਕੇ ਸਾਡੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਦਾ ਹੈ । ਜਿਵੇਂ :-

ੳ)

ਔਰਤ	:	ਨੀ ਉਹਨੇ ਬੜਾ ਕੁੱਟਿਆ ਤੇ ਮੈਂ ਬੜਾ ਰੋਈ ਨੀ ਰਾਤੀ ਦੈਗੜ-ਦੈਗੜ ਹੋਈ
ਸਮੂਹ	:	ਨੀ ਰਾਂਡੀ..... (2ਵਾਰ ਦੁਹਰਾਉ)
ਦੂਜੀ ਔਰਤ	:	ਨੀ ਉਹਨੇ ਤੈਨੂੰ ਕੁੱਟਿਆ ਕਾਹ ਤੋਂ .....?
ਪਹਿਲੀ ਨੂੰ	:	ਚੰਗੀ-ਭਲੀ ਹਰ ਕੰਮ ਕਰਦੀ ਏ, ਸਚਿਆਰੀ ਏ..... ਸੱਸ-ਸਹੁਰੇ ਦਾ ਮਾਣ-ਤਾਣ ਕਰਨ ਵਾਲੀ.....।
ਪਹਿਲੀ ਔਰਤ	:	ਨੀ ਹੋਣਾ ਕੀ ਸੀ.....। ਮੈਨੂੰ ਕਹਿੰਦਾ ਕਿ ਮੈਂ ਕੁੱਝ ਨਾ ਕਹੋ । ਪੁਆੜੇ ਤਾਂ ਉਸ ਔਤਰੀ, ਕੰਜਰੀ, ਕਮਜਾਤ, ਛਿੰਦੇਂ ਦੇ ਐ । ਆਪਦਾ ਖਸਮ ਤਾਂ ਬੈਠਾ ਬਾਹਰਲੇ ਮੁਲਕ..... ਤੇ ਇਹ.....। ਇੱਥੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਘਰ ਪੱਟਦੀ ਫਿਰਦੀ ਏ ।

4) ਮਰਦ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਨਾ:-

ਔਰਤ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਜਿੱਥੇ ਆਪਣੇ ਸ੍ਵੈ ਦੇ ਭਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ । ਉਹ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਦੋ ਮਰਦਾਂ ਦੀ ਵਾਰਤਾਲਾਪ ਰਾਂਹੀ ਜਾਂ ਫਿਰ ਔਰਤ ਅਤੇ ਮਰਦ ਦੀ ਵਾਰਤਲਾਪ ਰਾਂਹੀ ਮਰਦ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਦੀਆਂ ਪਰਤਾਂ ਖੋਲ੍ਹਦੀਆਂ ਹਨ । ਉਹ ਆਪਣੇ ਇਸ ਕਿਸਮ ਦੇ ਤਮਾਸਿਆਂ ਵਿੱਚ ਛੜਾ ਜੇਠ, ਅਮਲੀ, ਸਾਧ, ਬ੍ਰਾਹਮਣ, ਵਣਜਾਰੇ ਆਦਿ ਨੂੰ ਪਾਤਰਾਂ ਵਜੋਂ ਲੈਂਦੀ ਹੈ । ਉਹ ਮਰਦ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਇਨ੍ਹਾਂ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ । ਜਿਵੇ:- 'ਛਾਰਾ-ਰਾ-ਰਾ-ਛੂੰ ਛੜਕ'', 'ਚਿੱਤ ਬਾਬਿਓ ਨਾਲ

ਲਾਇਓ'', 'ਸਾਧ ਧੰਨਾ ਖੇਡੇ..... ਪੁੱਛਾ ਲਵੋਂ ਕਵਾਰੀਓ.....।'' ਬਾਬੇ ਢੋਲੇ ਸ਼ਾਹ ਦੀ ਮੱਸਿਆ, 'ਮੰਗੂ ਜੁਲਾਹਾ', ਤੇਲੀਆ ਵੇ ਤੇਲੀਆ ਰੂੰ ਪਿੰਜ ਦੇ.....'', '.....ਹੰਨਾਂ.....ਤੈਨੂੰ ਲੈ ਪਸੇਰੀ ਭੰਨ੍ਹਾਂ, 'ਮੇਰਾ ਖੜ੍ਹਾ ਕਰਗੀ,' ਹੋਰ ਤੇ ਚੜ੍ਹਗੀ, ਕੰਜਰੀ ਏਡਾ.....ਵੱਡਾ ਖਰਾਬ ਕਰਗੀ, ਤੂੰ ਐਹਦੀ ਸੁੱਖ ਮੰਗ ਨੀ....., ਲੰਬੜਦਾਰਾ ਤੈਨੂੰ ਨਿਉਂਦਾ, ਧੱਕੇਸ਼ਾਹੀ ਸਹਿ ਨੀ ਬੀਬੀ, ਬੈਠ ਬੀਬੀ ਰਕਸੇ, ਹੱਥ ਪਾਈ ਕਸਕੇ,..... ਖੇਤ ਛੱਡਿਆ, ਖਲਵਾੜਾ ਛੱਡਿਆ, ਮੈਂ ਸਾਧੂ ਪੂਰਾ ਜਤੀ-ਸਤੀ.....।''ਇੱਥੇ ਕੁੱਝ ਤਮਾਸ਼ੇ ਪੇਸ਼ ਵੀ ਹਨ:-

ੳ) ਪਹਿਲਾ ਛੜਾ : ਛੜਿਆ ਦੀ ਜੂਨ ਬੁਰੀ.....(ਦੁਹਰਾਓ)

ਦੂਜਾ : (ਇੱਕ ਸਾਧ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ)

ਵਾਹ ਗੁਰੂ - ਵਾਹ ਗੁਰੂ .....

ਪਹਿਲਾ : ਓਏ ਤੂੰ.....।

ਕਦੋਂ ਤੋਂ ਭਗਤੀ ਕਰਨ ਲੱਗ ਗਿਐ.....

ਦੂਜਾ : ਹਾਂ..... ਲੱਗ ਗਿਐ

ਰੱਬ ਤੋਂ ਪੁੱਛਣਾ ਐ.....

ਪਹਿਲਾ : ਕੀ.....?

ਦੂਜਾ : ਇਹੀ.....

ਜੇ ਰੱਬਾ ਸਾਡਾ ਵਿਆਹ ਨੀ ਸੀ ਕਰੌਣਾ

.....ਏ ਕਾਸ਼ ਤੋਂ ਲਾਇਆ.....?

ਸਾਨੂੰ ਛੜਿਆਂ ਨੂੰ ਵਾਧੂ ਭਾਰ ਚੁਕਾਇਆ ।

ਅ) ਬਣਤਰ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ:-

ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਦੀ ਬਣਤਰ ਦੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਣਤਰ ਤੀਹਰੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । ਜਿੱਥੇ ਇਹ ਨਾਚ ਅਤੇ ਨਾਟ/ਅਭਿਨੈ ਦਾ ਸੁਮੇਲ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਉੱਥੇ ਇਹ ਕਾਵਿਮਾਈ ਵੀ ਹੁੰਦੇ ਹਨ । ਇਹ ਬਣਤਰ ਪੱਖੋਂ ਤਿੰਨ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ:-

1) ਨਿਰੋਲ ਗੀਤ ਅਧਾਰਿਤ ਜਾਂ ਲੰਮੀ ਬੋਲੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ

2) ਕਾਵਿ-ਸਤਰਾਂ, ਬਿਰਤਾਂਤ ਅਤੇ ਨਾਚ ਅਧਾਰਿਤ

3) ਬਿਰਤਾਂਤ ਅਤੇ ਅਭਿਨੈ ਅਧਾਰਿਤ

1) ਨਿਰੋਲ ਗੀਤ ਅਧਾਰਿਤ ਜਾਂ ਲੰਮੀ ਬੋਲੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ:-

ਪਹਿਲੀ ਕਿਸਮ ਦੇ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਔਰਤਾਂ ਸੁਹਾਗ, ਘੋੜੀਆਂ ਅਤੇ ਹੋਰ ਸਾਧਾਰਨ ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਨੂੰ ਗਾਉਣ ਵਾਂਗ ਹੀ ਇਕੱਠ ਵਿੱਚ ਬੈਠ ਕੇ ਗਾਉਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਅਜਿਹੇ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਮੁੱਖ ਇੱਕ ਜਾਂ ਦੋ ਸਤਰਾਂ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਵਾਰ-ਵਾਰ ਦੁਹਰਾਉ ਹੁੰਦਾ ਹੈ । ਮੁੱਖ ਸਤਰਾਂ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਬਾਕੀ ਭਾਗ ਵੀ ਕਾਵਿ ਬੰਦ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਹੀ ਚੱਲਦਾ ਹੈ । ਇਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਗਾਉਣ ਸਮੇਂ ਢੋਲਕੀ, ਗਾਗਰ, ਘੜਾ ਆਦਿ ਵਰਤਿਆਂ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਤੋਲ-ਤੁਕਾਂਤ ਦਾ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਖਿਆਲ ਰੱਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਇਹ ਤਮਾਸ਼ੇ ਖੜੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਦੇ ਵਿਚਕਾਰ ਪਿੜ ਵਿੱਚ ਬੈਠ ਕੇ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ । ਔਰਤ ਸੀਮਤ ਦਾਇਰੇ ਵਿੱਚ ਬੈਠ ਕੇ ਗਾਉਂਦੀ ਅਤੇ ਸੰਵਾਦ ਰਚਾਉਂਦੀ ਹੈ । ਉਹ ਲਗਾਤਾਰ ਦੂਜੀਆਂ ਔਰਤਾਂ ਤੋਂ ਹੁੰਗਾਰੇ ਦੀ ਮੰਗ ਕਰਦੀ ਹੈ । ਇਹ ਮੁੱਖ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਪੇਸ਼ਕਾਰ ਅਤੇ ਦਰਸ਼ਕ ਔਰਤ ਦੇ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਸ਼ਨ ਉੱਤਰ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਚੱਲਦਾ ਹੈ । ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬਣਤਰ ਵਾਲੇ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਦੇ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਣ ਵੇਲੇ ਸੰਗੀਤ ਦੀ ਸੁਰ ਤਿੱਖੀ ਅਤੇ ਉੱਚੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ । ਵਿਚਕਾਰ ਸੰਵਾਦ ਰਚਾਉਣ ਵੇਲੇ ਇਹ ਸੁਰ ਧੀਮੀ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਤੁਕ ਦੇ ਦੁਹਰਾਓ ਸਮੇਂ ਇਹ ਸੰਗੀਤ ਦੀ ਸੁਰ ਫਿਰ ਤਿੱਖੀ ਤੇ ਉੱਚੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ।

2) ਕਾਵਿ ਸਤਰਾਂ, ਬਿਰਤਾਂਤ ਅਤੇ ਨਾਚ ਅਧਾਰਿਤ:-

ਦੂਜੀ ਕਿਸਮ ਦੇ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਕਾਵਿ ਮਈ ਤੁਕਾਂ ਦੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਬਿਰਤਾਂਤ ਅਤੇ ਨਾਂਚ ਵੀ ਸ਼ਾਮਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ । ਇਸ ਕਿਸਮ ਦੇ ਤਮਾਸ਼ੇ ਨਿਰੋਲ ਗੀਤ ਅਧਾਰਿਤ ਨਹੀ ਹੁੰਦੇ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਤੁਕਾਂ ਦਾ ਵਾਰ-ਵਾਰ ਦੁਹਰਾਓ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਸ਼ੁਰੂ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਜਾਂ ਦੋਂ ਸਤਰਾਂ ਮੁਖੜੇ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਨਾਚ ਦਾ ਆਧਾਰ ਬਣਾਇਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਇਹ ਵਾਰਤਾਲਾਪ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਅੱਗੇ ਵੱਧਦਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਨ ਵਾਲੀਆਂ ਆਮ ਤੌਰ ਦੋ ਔਰਤਾਂ ਹੀ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ । ਕਈ ਵਾਰ ਇਹ ਗਿਣਤੀ ਤਿੰਨ ਵੀ ਹੋ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਕਿਸਮ ਦੇ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਮੁੱਖ ਸਤਰਾਂ ਸਾਧਾਰਨ ਸ਼ਬਦਾਵਲੀ ਕਰਕੇ ਸਤਹੀ ਪੱਧਰ ਦੀਆਂ ਜਾਪਦੀਆਂ ਹਨ, ਪਰ ਵਾਰਤਾਲਾਪ ਵਿਚਲੇ ਵੇਰਵੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਧਾਰਨ ਸ਼ਬਦਾਂ ਵਿੱਚ ਡੂੰਘੇ ਅਰਥ ਭਰਦੇ ਹਨ । ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਾਂਗ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਕੋਈ ਵੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਪਹਿਰਾਵਾ ਜਾਂ ਵੇਸ਼-ਭੂਸ਼ਾ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ । ਵਧੇਰੇ ਬਲ ਬਿਰਤਾਂਤ ਰੂਪ ਤੇ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਤਮਾਸਿਆਂ ਦੇ ਬੋਲਾਂ ਤੋ ਇਲਾਵਾ

ਅੱਖਾਂ ,ਸਿਰ, ਹੱਥਾਂ, ਇਸ਼ਾਰਿਆ ਰਾਂਹੀ ਵੀ ਭਾਵ ਪ੍ਰਗਟ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ । ਇਹ ਧੀਮੀ ਗਤੀ ਨਾਲ ਅੱਗੇ ਵੱਧਦਾ ਹੈ।

3) ਬਿਰਤਾਂਤ ਅਤੇ ਅਭਿਨੈ ਆਧਾਰ:-

ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਦੀ ਤੀਜੀ ਕਿਸਮ ਵਿੱਚ ਉਹ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ੇ ਆਉਂਦੇ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਬਿਰਤਾਂਤ ਅਤੇ ਨਾਟ ਦਾ ਅੰਸ਼ ਵਿਦਮਾਨ ਹੁੰਦਾ ਹੈ । ਇਸ ਵਿੱਚੋਂ ਗੀਤ ਅਤੇ ਨਾਚ ਲੋਪ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਸਿਰਫ ਤਮਾਸ਼ੇ ਦੇ ਅੰਤ ਉਪਰ ਹੀ ਇੱਕ ਜਾਂ ਦੋ ਤੁਕਾਂ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ । ਬਾਕੀ ਸਾਰਾ ਤਮਾਸ਼ਾ ਬਿਰਤਾਂਤ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਚੱਲਦਾ ਹੈ । ਇਸ ਵਿਚਲੀ ਅਦਾਕਾਰੀ ਇਸਨੂੰ ਸਧਾਰਨ ਤੋਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਬਣਾ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਇਸਨੂੰ ਦੋ ਜਾਂ ਤਿੰਨ ਔਰਤਾਂ ਦੁਆਰਾ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਚਿਹਰੇ ਦੇ ਹਾਵ-ਭਾਵ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਸਾਰਾ ਸਰੀਰ ਹੀ ਕਾਰਜ ਕਰਦਾ ਹੈ । ਬੇਸ਼ਕ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਕੋਈ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਪਹਿਰਾਵਾ ਪਹਿਨਣ ਦੀ ਲੋੜ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ । ਪ੍ਰੰਤੂ ਇਸ ਤੀਜੀ ਕਿਸਮ ਦੇ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸਿਆਂ ਵਿੱਚ ਅਦਾਕਾਰੀ ਕਰਨ ਸਮੇਂ ਔਰਤ ਕਈ ਵਾਰ ਮਰਦ ਦੇ ਕੱਪੜੇ, ਜਾਂ ਸਾਧ-ਸਾਧਣੀ ਦਾ ਭੇਸ਼ ਬਣਾ ਲੈਂਦੀਆਂ ਹਨ । ਸਧਾਰਨ ਘਰਾਂ ਵਿੱਚ ਪਿਆ ਸਮਾਨ ਹੀ ਜਿਵੇਂ ਬਾਲਟੀ, ਵਲਟੋਹੀ, ਚਿਮਟਾ, ਖੁਰਚਣਾ, ਮੱਘੀ ਆਦਿ ਜਾਂ ਫਟੇ ਪੁਰਾਣੇ ਕੱਪੜਿਆਂ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਸਮੱਗਰੀ ਵਜੋਂ ਵਰਤਿਆਂ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਜਦਕਿ ਪਹਿਲੀਆਂ ਦੋ ਕਿਸਮਾਂ ਦੇ ਸਾਂਗ-ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿੱਚ ਅਜਿਹੀ ਸਮੱਗਰੀ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਨਹੀਂ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।

Mobile : +91-95309-00305

Email : amanbhuller1984@yahoo.com

Address :- Amandeep Kaur D/o Amarjit Singh,

Oppo. Dharamshala Kapoora Patti, VPO Ramgarh Bhullar

Tehsil Jagraon, District Ludhiana, Punjab - 142033

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 88-90

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मानव विकास : संक्षिप्त अवलोकन

–डॉ. शिवानी सिंह

सहायक प्रोफेसर, जवाहरलाल नेहरू पी.जी. कॉलेज, बंसगांव, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

मानव विकास को समझने के लिए अध्ययन की जिस शाखा का उपयोग किया जाता है वह ''मानव विज्ञान' के अंतर्गत आता है। सम्पूर्ण विश्व में आज मनुष्य ऐसा प्राणी बन चुका है जो अपनी मस्तिष्क क्षमता के बल पर धरा की प्रत्येक गतिविधि को नियंत्रित करने की चेष्टा करने लगा है। अतः कभी अन्य प्राणियों की भांति जीवन यापन करने वाली मानव जाति के इस अद्भुत विकास एवं परिवर्तन का अध्ययन कौतुहलता एवं रोमांच का विषय है। मनुष्य समस्त प्राणी जगत में अपनी तर्क शक्ति के कारण विशिष्ट है और इसी तर्क शक्ति एवं प्रेक्षण–क्षमता के दम पर उसे इतनी तरक्की प्राप्त कर ली है। अतः विश्व के इस सबसे रोचक प्राणी के अध्ययन से पूर्व विकास के प्रत्यय को समझना अत्यंत आवश्यक है। प्रायः विकास को ही वृद्धि समझ लिया जाता है। यह गलत है। वृद्धि विकास का एकचरण मात्र है। जबकि विकास जीवन पर्यन्त चलने वाली गुणात्मक एवं परिमाणात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति है।

हरलॉक के शब्दों में – ''विकास वृद्धि तक ही सीमित नहीं है। इसके बजाए इसमें प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य को ओर परिवर्तनों का एक प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताऐं और नवीन योग्यताऐं प्रकट होती है।''

अतः उपरोक्त कथन के अनुसार यह कहा जा सकता है कि मानव के संदर्भ में विकास का अर्थ है मानव का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक और चारित्रिक विकास।

आधुनिक मानव 'प्राईवेट' प्राणी है। इसका वैज्ञानिक नाम 'होमो सेपीयन्स ऐपियन्स' है। हक्सले (1863) ने अपनी पुस्तक 'मैन्स प्ले इन नेचर' में सर्वप्रथम मानव के उद्भव के वैज्ञानिक तथ्याों का वर्णन किया। चार्ल्स डार्विन ने अपनी पुस्तक 'द डिसेन्ट ऑफ मैन' में मानव के पूर्वजों के विषय में अपने विचारों का उल्लेख किया। स्तनधारियों के गण 'प्राइमेट्स' में मानव लीमर टाइसिर्यस् वानर तथा कपि रखे गये हैं। मानव एंथ्रोपोइड उपगण के हीमोबीड कुल में आता है। गज श्रूज संभवतः मानव जाति के प्रथम पूर्वज माने जाते हैं। जिनसे आगे चलकर आदि कवियों से पृथक होकर मनुष्य प्लीस्टोसीन युग में 'वर्तमान मानव' होमो सेपीयन्स के रूप में विकसित हुआ है।

मानव के पूर्वजों के जीवाश्म अध्ययन के आधार पर ऐसा माना जाता है कि आदि मानव का विकास आज से लगभग 3,00,000 वर्ष पूर्व अंध महाद्वीप कहे जाने वाले अफ्रीका से हुआ है। जो संभवतः मायोसीन युग में अस्तित्व में आया। वर्तमान मानव 'होमो ऐपीयन्स' आदि मानव से पृथक होकर 10,000 वर्ष पूर्व एशिया के कैस्पियन सागर के समीप जैव विकास के क्रम से गुजरता हुआ वर्तमान स्वरूप में आया है।

गौरतलब यह है कि आखिर विकास क्रम में मानव जाति अन्य प्राणियों से इतनी आगे कैसे निकल गई? इस प्रश्न पर मानव विज्ञान के अंतर्गत विश्व के तमाम मानव शास्त्रियों एवं जीव विज्ञानियों ने विविध पहलुओं पर अध्ययन किया

और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि :–

1. मानव मस्तिष्क को संरचना माथा एवं कपाल गुहा का आयतन पृथक स्वरूप में विकसित हुआ है। इस विशिष्टता ने मनुष्य में तर्कणा एवं प्रेक्षण की क्षमता विकसित की। जो अन्य प्राणियों में नहीं होती है। अतः अपनी इसी विशिष्टता के आधार पर मानव अपनी वर्तमान गौरवशाली स्थान प्राप्त करने में सफल हुआ है।
2. खड़े होकर चलने के कारण मानव ऐसी कई गतिविधियों में पारंगत है जो अन्य जीवधारी नहीं कर सकते हैं।
3. विविध दृष्टि जो सम्मुख छवि की स्पष्ट एवं वास्तविक प्रतिबिम्ब बनाती है।
4. सम्मुख अगुण्ठ, जिसके कारण मानव जाति ने अपनी हस्तकला के माध्यम से जीविकोपार्जन हेतु अनेकों कुशल हथियार व यंत्रों का निर्माण किया।

वर्तमान मानव का सांस्कृतिक विकास क्रम तीन चरणों में दृष्टव्य है :–

1. **पूर्व पाषाण काल :–** आज से 10,000 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ। इस काल में मानव पूर्णतया स्वयं निर्मित अनगढ हथियारों से किये गये शिकार पर आश्रित था एवं गुफा–पेड़ों पर अपना जीवन यापन करता था।
2. **मध्य पाषाण काल :–** इस काल में मानव ने सुंदर व तराशे हुए पत्थरों के हथियार निर्माण सीख लिए थो किन्तु पूर्व की ही भांति शिकार पर आश्रित थे।
3. **नव पाषाण काल :–** इस काल में मानव जाति ने कृषि एवं पशुपालन करना सीख लिया था। सर्वप्रथम तॉबा तत्पश्चात् मिश्रित धातुओं कांसा एवं इस्पात का प्रयोग करना भी सीख लिया।

आधुनिक जगत में मानव विकास को चार उपागमों के आधार पर मापा जाता है। जैसे :–

1. आय उपागम (आय स्तर के आधार पर)।
2. कल्याण उपागम (कल्याणकारी व सुरक्षात्मक उपायों की उपलब्धता के आधार पर)।
3. आधारभूत आवश्यकता उपागम।
4. क्षमता उपागम (मानव क्षमता का संवर्धन व निर्माण)।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के माध्यम से मानव जाति के विकास की समीक्षा एवं विकास हेतु 'वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट' का उपयोग किया जाता है। जिसके आधार पर 'मानव विकास सूचकांक' का निर्धारण करके आवश्यक कार्य किया जाता है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि मनुष्य ने अपनी तर्क क्षमता के बल पर प्राणी जगत में अन्य का कोसों पीछे छोड़ दिया है। किन्तु मानव विकास के साथ आरम्भ हुई यह गाथा उसे उस स्थान पर लाकर खड़ी कर दी है जहॉ मनुष्य जाति अपने ही विनाश की ओर अग्रसर है। प्राकृतिक संसाधनों का अति दोहन मानव जाति के साथ–साथ समस्त जीव जगत के लिए खतरे की घंटी होती है। अतः अब आवश्यकता है टिकाऊ विकास एवं पारिमित्र तकनीकी की। ताकि मनुष्य जाति के साथ–साथ समस्त जीवधारियों के अस्तित्व का संरक्षण एवं विकास हो सके।

जीव विज्ञानियों के अनुसार जैव विकास के क्रम में मानव जाति का भविष्य 'होमो सेपीयन्स फ्यूचरिस' जैसी नवीन जाति के रूप में विकसित होगा। जो लम्बे हाथों एवं पैरों में चार–चार उंगलियों वाले बाल रहित एवं अति विकसित गुम्बदाकार मस्तिष्क वाले होंगे।

आशा है कि मानव जाति वर्तमान से सीख लेते हुए समस्त प्राणी जगत के साथ समन्वयपूर्वक जीवन की समृद्ध एवं सर्व कल्याणकारी परम्परा की नींव रखेगा। जिसका उल्लेख हमारी प्राचीन भारतीय ग्रंथों में निहित है एवं जीवन का

देशकाल के प्रत्येक दशा में सार्वभौमिक सत्य है। यथा :–

''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भागभवेत्।।
ऊँ शान्ति शान्ति शान्ति.....''

संदर्भ :–

1. पी.डी. पाठक : शिक्षा मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 100
2. डॉ. अरूण कुमार सिंह : शिक्षा मनोविज्ञान भारती भवन पब्लिशर्स, पटना।
3. डॉ. एस.पी. गुप्ता एवं डॉ. अल्का गुप्ता : शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन विधियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4. प्रो. आर. एल. कोटपाल एवं प्रो. के.एन. त्यागी : परिचयात्मक जन्तु विज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, पृ. 581–586
5. डॉ. रमेश गुप्ता : आधुनिक जन्तु विज्ञान, प्रकाश पब्लिकेशन्स, पृ. 125–127
6. इण्टरनेट : तैतिरीय उपनिषद्, शान्ति पाठ।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 91-95

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी की कविता में स्त्री प्रतिरोध के स्वर

–रूपरत्न कुमारी, पीएच.डी शोधार्थी
–प्रो.संजय.एल. मादार, शोध निर्देशक
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास।

इक्कीसवीं सदी में विश्व कविता के समानांतर भारतीय कविता में भी स्त्री–स्वर ने अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है। हिंदी कविता भी इसका अपवाद नहीं। विविध काल, परिवेशगत परिस्थितियों ने हिंदी कविता के स्त्री–स्वर को नयी तर्ज और तेवर दिए। हिंदी कविता के स्त्री–स्वर के संदर्भ मे कहा जाए तो यहाँ स्त्री–स्वर मानव और मानवेतर बहुआयामी चेतनाओं को अपने में समेटे हुए है। जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक राष्ट्रीय आदि सभी प्रकार की चेतनाओं का प्रस्फुटन हुआ है। यहाँ स्त्री–कविता में मुखरित स्त्री–अस्मिता, स्त्री–मुक्ति संघर्ष तथा प्रतिरोध एवं क्रांति की चेतना पर विचार किया जा रहा है।

इक्कीसवीं सदी की कविता एक तरह से अपनी पूर्व कविताओं का ही परम्परागत सृजनात्मक अनुशीलन है। इस सदी की कविता स्त्री और उसके स्त्रीत्व की पहचान के अधिकार, संघर्ष एवं आंदोलनों को लेकर आगे आई है। उनकी कविताएँ शोषित एवं उत्पीड़ित जन की मुक्ति के लिए बृहत्तर संदर्भों का हवाला देते हुए बुनियादी प्रश्नों से दो चार हो रही है। इक्कीसवीं सदी की स्त्री ने सर्वप्रथम स्वयं को पितृसत्तात्मक व्यवस्था को पूर्ण समर्पण के बावजूद अपने मस्तिष्क को बिलकुल अलग रखने का प्रयास किया है। जिससे की मानसिक तौर पर वह अपनी स्वतंत्रता को महसूस तो कर सकें–

''समर्पित तुम्हें
पति परमेश्वर को।
लोक और परलोक
अर्जित पुण्य, चारों धाम।
तन, मन, धन, यह जीवन और आत्मा भी।
सिवा–मेरी खोपड़ी के।''

कवयित्री कमल कुमार की कविता समर्पण से स्पष्ट है कि आज कि स्त्री अब अपने को पूर्ववत स्त्री की तरह सब कुछ समर्पण करने को तैयार नहीं है। कमल कुमार एक ऐसी समकालीन कवयित्री है जिन्होंने अपनी बौद्धिकता एवं विचारोत्तेजक क्षमता से समाज को आंदोलित किया है।

बीसवीं शती के अंतिम दशक तथा इक्कीसवीं शती के प्रारंभिक दशक में निर्मला पुतुल ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। उनकी संथाली भाषा में रचित कविताओं का हिंदी संकलन ''नगाडे की तरह बजते शब्द'' सन् 2005 में प्रकाशित हुआ, जिसमें संग्रहित कविताएँ स्त्री के प्रतिरोधी स्वर को एक दिशा देती है तथा उसकी वास्तविक तसवीर को सामने लाती है। इसके अतिरिक्त पुरूष प्रधान समाज के सामने एक प्रश्न खड़ा कर देती है। और पूछती है–

"तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के मन की गाँठें खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने उसके भीतर
का खौलता इतिहास
पढ़ा है कभी उसकी चुप्पी की दहलीज पर बैठ
शब्दों की प्रतीक्षा में उसके चेहरे को
अगर नहीं तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे एक स्त्री के बारे में?"

ममता कालिया के काव्य संग्रह खांटी घरेलू औरत में नारी चेतना को जाग्रत किया गया है, तथा उनकी अपनी इच्छा को उजागर करने का प्रयास किया है। नारी मन स्वतंत्र विचारधारा की यह कविता स्पष्ट कर देती है। समाजिक व्यवस्था ने उन्हें जो बंधन में रखा तथा उनकी सीमा को निर्धारित किया उसके परे या आगे की इच्छा को स्त्री रखने आयी है। यही भाव कवयित्री ममता कालिया जी ने अपनी इस कविता के माध्यम से व्यक्त किया है।

"मैंने कब चाहा था बँधना
बैलों–सा नकेल में नथना
मेरे पैरों में भी गति थी
भावों में साहस, संगति थी,
मन में चिड़िया चहचह करती
हर पतंग के साथ कटती
आँखें ऊँचे सपने ताकती
किरणें मेरी बातें कहती।"

दिल्ली की दामिनी प्रकरण पर कवयित्री सुधा आरोड़ा भी कविता में लिखती है। इनकी यह कविता सिर्फ दामिनी को ही प्रस्तुत हीं करती बल्कि समाज में स्त्री पर होने वाले अत्याचार को झेलती उन सभी शोषित नारी का यह प्रतिनिधित्व करती है। कविता के माध्यम से कवि ने स्त्री शोषण का जो चित्रण किया है वह मानवता के लिए एक कलंक सा है। इस कलंक को धोने के लिए कवि के शब्द प्रतिरोध करते हुए कह उठते है–

दामिनी ! "जीना चाहती थी तुम/ कहा भी था तुमने बार–बार/दरिंदों से चींथी हुई देह से जूझते हुए/मौत से लड़ती रही बारह दिन/ कोमा में बार–बार जाती.../ और तुम चली गयी दामिनी / लेकिन तुम कहीं नहीं गयी दामिनी / सत्ता के लिए चुनौती बनकर / सदियों से कुचली जा रही स्त्रियों का सम्मान बनकर!

महिला कवयित्रियों के साथ कवियों ने भी परंपराओं की कुरीतियों पर प्रहार करते हुए स्थापित सामाजिक नियमों को तोड़ने की कोशिश की है। स्त्री की इस दशा पर उनकी दृष्टि साफ है कि इसका कारण पुरूष नहीं वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरूषों को लगातार एक पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियाँ उनसे हीनतर है। आलोचक परमानन्द श्रीवास्तव ने रेखांकित किया है कि "स्त्री–विमर्श की सैद्धान्तिकी के बाहर जाकर समकालीन कवयित्रियों ने इधर अनुभवों की जो दुनिया रची है, वह न पितृसत्तात्मक समाज के दमन से आकान्त है, न पर्सनल को पोलिटिकल बनाने की अनिवार्यत य बल्कि वह उनके सर्वथा निजी हालचाल के भीतर से उभरता हुआ वह आख्यान है, जो करूणा के नाम पर भावुकता–पीड़ित न होकर, आत्मविनोद और किसी दूसरी सत्ता के विरूद्ध तीखे व्यंग्य से सजीव है।" 21वीं सदी की हिंदी कविता में स्त्री–मुक्ति का स्वर अपने तेवर तथा तीव्र प्रतिरोध के साथ विद्यमान है। नीलेश रघुवंशी स्त्री आजादी के

संदर्भ में कहते हैं–

"मिल जानी चाहिए अब मुक्ति स्त्रियों को
आखिर कब तक विमर्श में रहेगी मुक्ति
बननी चाहिए एक सड़क, चले जिस पर सिर्फ स्त्रियाँ ही
मेले और हाट–बाजार भी अलग
किताबें अलग, अलग हों गाथाएँ
इतिहास भी पक्के तौर पर अलग
खिड़कियाँ हो अलग
झाँके कभी स्त्री तो दिखे सिर्फ स्त्री ही।"

कवयित्री अनामिका अपनी कविता दरवाजा में स्त्री शोषण का एवं उनके प्रतिरोधी विचारों को दर्दभेरे शब्दों में व्यक्त करती है–यथा–

"मैं एक दरवाजा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतना ही खुलती गई।
अंदर आए, आने वाले तो देखा–
चक्की रूकती है तो चरखा चलता है
चरखा रूकता है तो चलती है कैंची–सुई
गरज यह कि चलता ही रहता है
अनवरत कुछ–कुछ।"

अतः यहाँ अनामिका ने स्त्री के व्यक्तिगत जीवन के दुःख, यातना, संघर्ष आदि का सजीव चित्रण किया है।

लिंग भेद की पारम्परिक त्रासदी का प्रतिरोध अनामिका अपनी कविता पाठशाला का पाठ में करती है, जिसमें यथार्थ का सम्पूर्ण बिम्ब उभर कर आता है–

"राम, पाठशाला जा
राधा, खाना पका।"
"अहा, नया घर है!
राम, देख, यह तेरा कमरा है!
और मेरा?
ओ पगली,
लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती है
उनका कोई घर नहीं होता।"

यह कविता एक तरह से स्त्री–पुरूष के लैंगिक भेदभाव को स्पष्ट करती है। कैसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था समाज में बड़े ही सुनियोजित ढंग से स्त्री–पुरूष के भेद को रूपांतरित कर देती है। अतः लड़कियाँ ऐसी जिंदगी जीने के लिए मजबूर है। परिवार के पुरूष ही स्त्री के साथ असमानता का व्यवहार प्रारंभ से ही कर देते है।

जहाँ एक ओर स्त्री के संघर्ष और दुःख की अभिव्यक्ति है, वहीं उनके अधिकार बोध के प्रसंग भी है। विद्रोह और आक्रोश की भाषा को अपनाते हुए उसे संयमित होने की बात कहीं है–

"मत जाओ गर्गी प्रश्नों की सीमा से आगे
तुम्हारा सिर कटकर लुढ़केगा जमीन पर
मत करो याज्ञवल्क्यों की अवमानना,
मत उठाओं प्रश्न ब्रह्मसत्ता पर,
वह पुरूष है।"

कविता में व्यक्त प्रसंग से कात्यायनी जी ने स्त्री की स्वतंत्रता पर प्रश्न उठाया है। सच्चाई हो या न हो पर पुरूष सै प्रश्न करना भी अपराध है। किसी भी हाल में प्राचीन काल से स्त्री को बराबरी करने का अधिकार नहीं है। इसी बात को यहाँ स्पष्ट किया गया है।

बाजार ने स्त्री को उपभोग की वस्तु बना दिया है। इसी का प्रतिरोध आज हो रहा है। वे तमाम वस्तुओं के विज्ञापनों में छायी हुई है, कंपनी का उत्पाद बेचनेवाली सुंदर गुड़िया बनकर रह गई है–

"अब बाजार स्त्री कदमों में है
उसके केश सहलाता कपड़े उतारता
सामान कोई भी हो बेची जाती है हमेशा स्त्री।"

आज की स्त्री काफी सशक्तीकृत हो गई है, अब वह खुलकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था, संहिताओँ का विरोध करती है–

"निकल पड़ेगी वह नयी राह पर,
प्रवाह पर।
नहीं करनी उसे गुलामी और सलामी
धमकाऊ और मुँह सुजाऊ घर वालों की।
बीस–बीस घंटे की चाकरी
सुबह शाम सोलह निवालों की खातिर
कहीं क्लर्की कर लेगी या टीचरी
या
लाइब्रेरियन बन जाएगी
बाकायदा डिप्लोमा है उसके पास।"

कवयित्री सविता सिंह ने अपने काव्य संग्रह "नींद थी और रात थी" के कविता शिल्पी से प्रतिरोध का स्वर दर्ज करवाया है कि भले ही तुमने मेरा बलात्कार करके मेरे इस क्षण भंगुर शरीर को नष्ट किया है, लेकिन मुझे तुम नष्ट नहीं कर सके। मैं अभी भी जिंदा हूँ। मैं सदैव प्रेम करने वालों के दिलों में जिंदा रहूँगी तथा पिता के कलेजे में प्रतिरोध बनकर सदा–सदा के लिए अमर हो जाऊँगी।

"मरने के बाद जाकर शिल्पी ने
अपने बलात्कारियों से कहा
तुम सब ने सिर्फ मेरा शरीर नष्ट किया है
मुझे नहीं
मैं जीवित रहूँगी सदा प्रेम करने वालों की मादों में
दुःख बनकर

पिता के कलेजे में प्रतिरोध बनकर''

कविता में चित्रित सामाजिक प्रतिरोध के रूप में नीलेश रघुवंशी की कविता में यूरोप की क्रांतिकारी फेमिनिस्ट सिमोन द बोउवार को याद किया गया हैं। सिमोन की मशूहर लाइन स्त्री पैदा नहीं होती उसे बना दिया जाता है ने स्त्रियों के ऊपर अभी तक के सारे उपमानों, प्रतिमानों, मानदंड़ों को चकनाचूर कर दिया।

''पिटती अपमान सहती
सिसकती धीरे–धीरे।
अचानक किसी के आ जाने पर
जुकाम कह सुड़कती नाक।

सिमोन द बोउवार
तुम्हारी यात्राओं के नक्शे से कैसे अछूता रह गया मेरा देश
झिलमिला रहा था जिस रोशनी से सारा यूरोप।''

अतः यह तो तय है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने अपने फायदे के लिए तमाम तरह के मूल्य स्त्रियों पर आरोपित किए। परंतु इसके बावजूद समकालीन कवि एवं कवयित्रियाँ सामाजिक शोषण का प्रतिरोध कर रही है। उनकी कविताओं में तमाम तरह के चौतरफा शोषण का जिक्र है। रमणिका गुप्ता, सुशीला टाकभौरे, चंद्रकला त्रिपाठी, कात्यायनी, गगन गिल, अनामिका, सविता सिंह, अजिता भारती, रंजना जायसवाल, नीलेश रघुवंशी, निर्मला पुतुल और जसिन्ता केटकेट्टा आदि कवयित्रियों ने स्त्री प्रतिरोधी स्वरों को अभिव्यक्ति देने का साहस और जोखम्मि उठाया है। इन कवयित्रियों का केन्द्र स्वर स्त्री मुक्ति की कामना है। दलित और आदिवासी स्त्रियों के भी प्रतिरोधी स्वरों को इक्कीसवीं सदी में बड़े ही साहसपूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति मिली है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. कमल कुमार, बयान, पृ–140
2. निर्मला पुतुल, नगाडे की तरह बजते शब्द
3. ममता कालिया, खाँटी घरेलू औरत
4. परमानंद श्रीवास्तव, कविता का उत्तर जीवन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ–187
5. नीलेश रघुवंशी, पानी का स्वाद, स्त्री–विमर्श, किताबघर प्रकाशन, 2004, पृ–46
6. अनामिका, दूब–धान संग्रह से–दरवाजा
7. अनामिका, पचास कविताएँ (नयी सदी के लिए चयन), पृ–39
8. अनामिका, पचास कविताएँ, पृ–40
9. कात्यायनी, सात भाईयों के बीच चम्पा, पृ–34
10. राजेन्द्र शर्मा, प्रो. कमलाप्रसाद (सं), स्त्री मुक्ति का सपना, पृ–132
11. ममता कालिया, पचास कविताएँ (नयी सदी के लिए चयन), पृ–65
12. सविता सिंह–नींद थी और रात थी, शिल्पी ने कहा, पृ–102)
13. नीलेश रघुवंशी, वसुधा–स्त्री मुक्ति का सपना (विशेषांक) 59–60, पृ– 149

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 96-99

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन कहानियों में चित्रित स्त्री जीवन के संदर्भ

–संतोष, पीएच.डी. शोधार्थी
–प्रो. संजय एल. मादार, शोध निर्देशक
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, द.भा.हिं. प्रचार सभा, मद्रास।

समकालीन कहानी–आंदोलन से जुड़े रचनाकारों तथा आलोचकों ने समकालीनता के कालपरक अर्थ को नकारते हुए, उसकी प्रवृत्तियुक्त धारणा को ही स्वीकार किया है– ''जिस समकालीन या समकालीनता की चर्चा सन् साठ के बाद की कहानी के संबंध में की जा रही है, उसका शब्दार्थ की धारणा से संबंध नहीं है अपितु वह जीवन–बोध के आधार पर समानधर्मा रचनाकारों के बोध की समानधर्मिता है।'' समकालीन कहानी पर बात करते हुए मधुरेश लिखते है– ''समकालीन होने का अर्थ सिर्फ समय के बीच होने से नहीं है। समकालीन होने का अर्थ है समय के वैचारिक और रचनात्मक दबावों को झेलते हुए, उनसे उत्पन्न तनावों और टकराहटों के बीच अपनी सर्जनशीलता द्वारा अपने होने को प्रमाणित करना है।'' अतः समकालीन का अर्थ युगबोध के रूप में ही समिचीन प्रतीत होता है। समकालीन कहानी का परिवेश कई सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक–सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि आयामों से निर्मित हुआ।

ध्यातव्य है कि सन् 1960 के कई कहानी आंदोलनों यथा अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, सक्रिय कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी आदि को देखा जा सकता है। इन उपर्युक्त आंदोलनों के अतिरिक्त भी समकालीन कहानी के वर्तमान दौर में जिन दो समांतर प्रवृत्तियों को रेखांकित किया जाने लगा, वह है–स्त्री एवं दलित विमर्श। प्रस्तुत आलेख में स्त्री–विमर्श संबंधी तथ्यों को उजागर करने का प्रयास किया गया है। सन् 1980 के दशक में हिंदी कहानी में स्त्री–विमर्श की जो सशक्त धारा उभर कर सामने आई, उसने समकालीन कहानी को नया स्वर प्रदान किया। यह वह दौर है जब सहानुभूति और स्वानुभूति के प्रश्न खड़े होने लगे। निश्चित ही महिलाओं का अनुभव क्षेत्र–घर, परिवार और बदलते सामाजिक परिवेश में उनकी नौकरी का स्थल रहा। इन कहानीकारों ने स्त्री–पुरूष संबंधों की सूक्ष्मताओं को भी बहुत ही कौशल से अंकित किया है। इस संदर्भ में पुष्पपाल सिंह की मान्यता है कि दृ ''घर–परिवार की मध्यवर्गीय दिनचर्चा के बीच नारी ने अपनी नौकरी का समीकरण किस तरह बिठा रखा है, नौकरी–पेशा नारी का संघर्ष कितना जटिल है, नौकरी करते हुए उसे भावात्मक–संघर्ष की किन–किन स्थितियों से गुजरना होता है, यह सब प्रामाणिक रूप से जानने के लिए हमें महिला कहानीकारों की कहानियों को पढ़ना चाहिए।''

समकालीन हिंदी कहानियों के संदर्भ में कई परिधिय विमर्शों के रूप में एक विचार–विमर्श, संवाद, बहसों पर वैचारिक टिप्पणियों का भी सम्मिलित रूप सृजनात्मक लेखन के यथार्थ में स्वतः स्फुर्रित रहा है। इन विमर्शों में स्त्री–विमर्श का वर्तमान भारतीय साहित्य में विशिष्ट महत्व रहा है। महिला लेखन ने भारतीय साहित्य के केंद्र बिंदु से होकर मुख्यधारा में स्थान बना लिया है। हिंदी की महिला कहानीकारों ने अपने परिवेश के प्रति सजग चेतना का उदाहरण दिया। जिन पुरूष रचनाकारों का यह तर्क था कि महिला लेखन केवल स्त्री–केंद्रित भूमिकाओँ, मुद्दों, समस्याओं, विचार, दायित्व आदि के ही इर्द–गिर्द घूमता रहता है, ऐसे रचनाकारों को भी स्त्री कहानीकारों ने चुनौती देकर स्त्री–इत्तर विषयों

पर भी पूरे अधिकार भाव, संवेदना की गहनता, वस्तुनिष्ठ तथ्यों के प्रमाणों के साथ लेखन कर करारा जवाब दिया है। इन्होंने बड़ी निडरता के साथ अपनी कहानियों के अनछुए विषय चुने। वर्तमान समाज और जीवन के प्रति पैनी नजर रखने वाली इन रचनाकारों की विशेषता उनकी अपनी संवेदनशीलता है। इस दौर में समकालीन हिंदी कहानी सहानुभूति और स्वानुभूति के प्रश्नों के साथ सामने आई।

इन समकालीन कहानीकारों में मन्नू भंडारी की ''त्रिशंकु'', ''यही सच है'', ममता कालिया की ''सीट नंबर छह'', ''एक अदद औरत'', ''प्रतिदिन''। सुधा अरोड़ा की कई कहानियों पर संपादित पुस्तकें तथा ''पति परमेश्वर'', ''साल बदल गया'', ''दमनचक्र''। इसी क्रम में नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, मणिका मोहिनी, निरुपमा सेवती, मंजुल भगत, राजी सेठ, मेहरून्निसा परेवेज, मालती जोशी, मालती सिंह, मैत्रेयी पुष्पा, सूर्यबाला आदि के कहानी संग्रहों में चित्रित स्त्री अपने परिवेश का उत्पाद है।

कृष्णा सोबती की ''सिक्का बदल गया'' की शाहना, समाज की निष्ठुरता और स्वार्थ की शिकार होकर भी झुकती नहीं है। मन्नू भंडारी की कई कहानियों के स्त्री पात्र यथा– ''रानी माँ का चबूतरा'' कहानी की गुलाबी अपने शराबी पति को घर से निकाल कर, मेहनत कर बच्चों का पालन करती है। वह किसी के आगे हाथ नहीं पसारती। इसी कारण समाज के लोग उसे चुड़ैल कर्कश और बुरी समझते है। क्योंकि समाज के नियमों का प्रतिरोध करने वाली औरत एक तरह से पितृसत्तात्मक व्यवस्था के लिए बड़ी चुनौती है।

निरुपमा सेवती की ''विमोह'', मेहरून्निसा परवेज की ''विद्रोह'', ''सजा'', इसी के साथ ''सोने का बेसर'', ''कानीबाट'' आदि कहानियाँ प्रमुख है। ''कानीबाट'' कहानी के माध्यम से लेखिका ने विवाहपूर्व प्रेम संबंधों का चित्रण किया है। इस कहानी में देवू और कुमकुम का प्रेम संबंध है– ''रामू ने उसका हाथ पकड़ लिया, तू उस दिन कहती थी न कि कानीबाट जंगल में गुम हो जाती है, देख मैंने खोज लिया। कानीबाट विशाल जंगल के सहारे ही चलती है, तेरे बच्चे को मैं अपना नाम दूँगा।'' अतः समकालीन कहानियों में विवाहपूर्व प्रेम संबंधों को भी तर्क के आधार पर स्वीकृति मिली हैं। इनकी कहानियों में विवाहपूर्व या विवाहेत्तर यौन संबंधों को एक विशिष्ट दृष्टि से देखा गया है। ''चुटकी भर समर्पण'' और ''आकाशनील'' इनमें प्रमुख हैं। ''अपने–अपने दायरे'' कहानी में संघर्षरत नारी है। तो ''नगी टहनियाँ'', ''फाल्गुनी'' आदि कहानियों में उपेक्षित नारी का चित्रण मिलता है।

शोषित विधवा जीवन का संघर्ष मेहरून्निसा परवेज की कहानी ''जीवन मंथन'' में मिलता है। कहानी की नायिका नंदिता है। उसके पति के निधन के बाद उसका एकमात्र पुत्र नमित भी उससे छीन लिया जाता है। सास–ससुर के खानदान का वह एकमात्र वारिस है। अब नंदिता किसके सहारे जिये वह सोचती है ''औरत को लोग बहू–बेटी और माँ के रूप में देखते हैं, पर उसके स्वतंत्र रूप को भूल जाते हैं कि वह इंसान है, हाड़–मास की औरत है। उसका भी सब चीज में उतना ही अधिकार बनता है जितना बेटे का। तुझे अब इन रिश्तों से ऊपर जाना होगा।''

निरूपमा सेवती की ''तलफलाहर'', कहानी की सवि एक नौकरी पेशा स्मार्ट लड़की है जो स्वतंत्रता के आगे नारी के सभी रूपों को तुच्छ समझती है। वह कहती है, ''परिवार के लिए खपती वक्त से पहले बूढ़ी होती माँ की तरह मुझे अपना जीवन नष्ट नहीं करना है। पति के लताड़ खाकर भी उसी से चिपके नहीं रहना और ना ही पति के माँ–बाप की मुफ्त की नौकरानी बनना है।''

'कच्चे मकान', 'सूर–पंचशती' आदि कहानियों में उन्होंने नारी की अस्मिता की तलाश की है। 'सुनहरे देवदार', 'खामोशी को पीते हुए' और 'फिर भी कहानी' में तलाक के बाद के जीवन का निरूपण है। इनकी कहानियों में अविवाहित नौकरी पेशा, परित्यक्ता कामकाजी माँ, नारी का एकाधिक पुरूषों से प्रेम, नारी का पारिवारिक–सामाजिक विघटन आदि स्त्री संदर्भ को स्त्री–विमर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

युवा कथा लेखिका नीलाक्षी सिंह की 'उस बरस के मौसम' कहानी में डॉ. अंतरहा मलिक एक ऐसी माँ है जो मानती है, बच्चों की डॉक्टर होना एक बात है, बच्चे की माँ होना दूसरी। बच्चे को डॉक्टर बनकर नहीं पाला जा सकता, उसे माँ बनकर पालना पडेगा। स्टेथेस्कोप से टटोलकर नहीं, हाथों से महसूस कर पता लगाना होता है तबीअत का मिजाज।

मृदुला गर्ग की 'दुनिया का कायदा' कहानी में खोखले संबंधों का खुला चित्रण है। घर की बहू के मर जाने के कुछ समय बाद ही सास आस–पड़ोस की औरतों के साथ रोती–बिलखती हुई, बीच–बीच में अपने बेटे के लिए दूसरी बहू ढूँढ़ने की चर्चा भी करती है। यह तो दुनिया का कायदा है। इसी कहानी में दूसरी ओर शहरी जीवन में स्त्री का जीवन पति पुरूष द्वारा बॉस को सौंप दिए जाने में कोई अनैतिकता और अनुचिचता नहीं मानता है।

युवा पीढ़ी के समक्ष विवाह संस्थान का कोई मूल्य नहीं है। वह 'लिव इन' या 'लिव टुगेदर' वाली पंक्ति में खड़ी है। उषा महाजन की 'ऐंटिक' रश्मि कुमार की 'मन मा भए दस बीस', जैसी कहानियों में बदलती यौन संकल्पनाओं की ओर संकेत है। 'ऐंटिक' कहानी की गोगी शादी की संस्था में विश्वास न करने वाली नारी है। वह केवल 'लिव इन रिलेशन' में विश्वास करती है। लेकिन समाज उसको पूर्ण रूप से स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। गोगी के लिए पुरानी पीढ़ी के प्रेम के जो आदर्श थे अब ऐंटिक बनकर रह गए हैं। इस तरह की कहानी इन्दिरा राय की ''पलभर का सच'', कृष्णा अग्निहोत्री की ''अपने–अपने कुरूक्षेत्र'', लवलीन की ''चक्रवात'' तथा क्षमा शर्मा की ''लवस्टोरीज : 1994'', आदि महत्वपूर्ण बन पड़ी है।

जया जादवानी की 'आखिरी बार से पहले' की नायिका और शरद सिंह की 'तीली तीली आग' की प्रीतो ऐसी नारी पात्र है जो अपना अकेलापन और उदासी मनपसंद पुरूषों से बाँटना चाहती है। वहीं अर्चना वर्मा का 'नेपथ्य', अलका सरावगी का 'यह भी सच हैं, वह भी सच' जैसी कहानियों में स्त्री का पहला संकट, अपनी अस्मिता को पाने का संकट मुखरित होता है। गीतांजलि श्री की 'प्राइवेट लाइफ' कहानी आधुनिक युवती के अपने तरीके से उन्मुक्त और स्वच्छंद जीवन जीने के द्वन्द्वों और संकल्पों से जूझने की कहानी है। विवाह, परंपरा और परिवार सबके प्रति उसके मन में विद्रोह की भावना हैं। चित्रा मुद्गल की 'जब तक विमलाएँ हैं' एक सशक्त कहानी है। यौन उत्पीड़न और बलात्कार का शिकार बनी अपनी बेटी से जघन्य व्यवहार करने वाले अत्याचारियों के प्रति अपना प्रतिशोध लेने की। माँ बिमला एक ऐसी माँ है जिसकी जरूरत आज अधिक संख्या में समाज को है।

कहीं–कहीं आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण विषम परिस्थितियों में पड़कर औरतें, वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर हो जाती है। चित्रा मुद्गल की 'फातिमा बाई कोठे पर नहीं रहती' कहानी स्त्री–जीवन के इस पहलू से जुड़ी समस्याओं को हमारे सामने लाती है। उन्हीं की 'लकड़बग्घा' कहानी में स्त्रियों की स्वतंत्रता और अधिकार की माँग को उठाया गया है।

उर्मिला शिरीष की 'रंगमंच' कहानी समाज में बहुओं पर हो रहे अत्याचार और उत्पीड़न की कहानी है। जिसमें एक बहु को जला दिया जाता है और पुलिस में उसके बयानों के बदलवाने की कवायद सारा परिवार करता है। उनकी चीखघ कहानी में बलात्कार की शिकार एक लड़की की मानसिक स्थिति का मार्मिक वर्णन किया गया है, ...फिर जींस को पाँवों के नीचे खिसका देखकर बिजली सा झटका लगा उसने मन मस्तिष्क को अपने अंगों को टटोला। हाथ से सहलाया...खरोंचे..नाखून और दांतों के निशान उभर आए थे। ...दर्द की तीखी धार फूट पड़ी जैसे किसी कोमल हरी शाख में धारदार छुरी भोक दी हो। वह चीख़ पड़ी जोर से...नहीं...ऐसा नहीं हो सकता...यह...सच है जागृतावस्था का सच! यह नारी शोषण का भयावह रूप है। ऐसा ही दृश्य मोहम्मद आरिफ की कहानी फूलों का बाड़ा में भी देखने को मिलता है। स्त्री लेखन के संदर्भ में डॉ. राजकिशोर का कथन अधिक तर्कगत एवं प्रासंगिक प्रतीत होता है कि ''स्त्री के पक्ष में लेखन

पुरूष का आदर्शवाद है, जबकि अपने पक्ष में स्त्री का लेखन यथार्थवाद है। आदर्श की तुलना में यथार्थ की जड़ें हमेशा मजबूत होती हैं, क्योंकि यथार्थ होता है, जबकि आदर्श भी है, किंतु वह अपने को यथार्थ नहीं बना पाया। इसलिए स्त्री–लेखन की एक प्रासंगिकता हमेशा बनी रहेगी।''

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी कहानी में महिला कहानीकारों ने आधुनिक भारतीय पितृसत्तात्मक पारिवारिक– सामाजिक संरचना पर करारा प्रहार किया है। पहले जहां महिलाओं के लेखन को घर–परिवार की चहारदीवारी में कैद और समाज की दूसरी अहम समस्यों से कटा हुआ फुरसती लेखन मानकर उसे दरकिनार कर दिया जाता था, आज अपेक्षाकृत निर्मम होकर उसकी जाँच पड़ताल की जा रही है। पिछले कुछ वर्षों से सकारात्मक, विश्लेषणात्मक और ऊर्ध्वमुखी विकास इस वक्तव्य को खारिज करता है कि पढ़ी–लिखी धनाढ्य महिलाएँ दोपहर की फुरसत में कलम घसीटती या चित्रकारी करती है। साहित्य में स्त्री जीवन का भविष्य निश्चित रूप से उसके परिवेश से संचालित होगा और इस संदर्भ में स्त्रियों का जीवन काफी आशापूर्ण और स्वतंत्रता, अस्मिता, समानता के मूल्यों को ही चरितार्थ करने वाला साबित होगा।

संदर्भ ग्रंथ–

1. गंगाप्रसाद विमल, समकालीन कहानी दशा और दृष्टि, पृ–166
2. हिंदी कहानी का विकास, मधुरेश, पृ–176
3. पुष्पाल सिंह, कहानी का उत्तर समय, पृ–117, सामयिक बुक्स, दिल्ली, संस्करण–2013.
4. मेहरून्निसा परवेज, मेरी बस्तर की कहानियाँ, रेगिस्तान, पृ–128
5. मेहरून्निसा परवेज, लाल गुलाब, पृ–80
6. निरूपमा सेवती, खामोशी को पीते हुए, तलफलाहर, पृ–29–30
7. राजकिशोर, हिंदी लेखक और उसका समाज, पृ–65

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 100-103

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन उपन्यासों में चित्रित बुद्धिजीवी वर्ग का अस्मिता–बोध (स्त्री संदर्भ में)

–श्रीजा थोमस, पीएच.डी. शोधार्थी,
–प्रो. संजय एल मादार, शोध निर्देशक
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़।

मध्ययुग के अंतिम चरण में जब पश्चिम में औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ और सामन्ती समाज का पतन हुआ तो नगरों में एक नए वर्ग का जन्म हुआ जो कालान्तर में नई सामाजिक संरचना में मध्य–वर्ग के नाम से जाना गया। वस्तुतः औद्योगिक–क्रांति की देन है–मध्यवर्ग, जिसे बुद्धिजीवी वर्ग की संज्ञा भी दी गई है। भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के उपरांत ही मध्यवर्ग का जन्म माना जा सकता है। परिणामतः अंग्रेजी शिक्षा–दीक्षा, रहन–सहन और पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, सोच और मानसिकता ने परम्परागत जीवन–मूल्यों को प्रभावित किया। इससे भारतीय समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक चेतना के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन हुए। अतः साहित्य में भी इन परिवर्तनों को रेखांकित किया जा सकता है।

इस संदर्भ में डॉ. बच्चन सिंह का मानना है कि ''पाश्चात्य देशों तथा भारतवर्ष में उपन्यासों के आविर्भाव और मध्यवर्ग के उदय में एक नैसर्गिक समानान्तरता दिखाई देती है।''[1]

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार मध्यवर्ग की परिभाषा है–''पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल कर दिया है कि एक मध्यवर्ग की आवश्यकता हुई, जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन–सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरी पेशा, शिक्षक, क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं। मध्यवर्ग विशेषतः बुद्धि प्रधान वर्ग माना गया है और सामाजिक क्रांति के प्रायः समस्त विचारों का सृजन मध्यवर्ग में ही होता है।''[2] स्वभावतः आजादी के बाद के हिंदी उपन्यास में इस मध्यवर्ग का चित्रण विविध रूपों में और बड़े पैमाने पर हुआ है।[3]

नगरों और कस्बों की पृष्ठभूमि पर रचित सभी उपन्यासों में चाहे उनका केन्द्रीय कथ्य जो भी हो मध्यवर्ग किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहता है। मध्यवर्गीय जीवन के चित्रण में प्रमुख महिला उपन्यासकार है– शानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, मेहरून्निसा परवेज, चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे, उषा प्रियंवदा आदि। मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों और पढ़े–लिखे लोगो की आर्थिक समस्याओं, उनके रूढ़िगत संस्कारों, उच्चवर्ग से ग्रहण किये गये मिथ्या मूल्यों आस्था के संकट आदि का चित्रण उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य है। इसमें एक ओर रूढ़ियों और अंधविश्वासों में ग्रस्त मध्यवर्गीय पुरानी पीढ़ी है तो दूसरी ओर उसके विरोध में खड़ी युवा पीढ़ी भी है। चुनाव की राजनीति, राजनीतिक दलों की आपसी खींचतान, मंदिरों में फैले प्रपंच और भ्रष्टाचार संस्कृति के नाम पर जारी रीतिरिवाजों के पाखंड, झूठी शान और आडम्बर से ग्रस्त मध्यवर्ग की विवशता आदि का व्यापक चित्र इन उपन्यास में हुआ है।

नारी विषयक विमर्श में भी अनेक उपन्यासकारों में दिल्ली के महानगरीय परिवेश का उपयोग किया है। मन्नू

भंडारी, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, नासिरा शर्मा आदि के उपन्यासों में दिल्ली का परिवेश पूरी विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत है। मंजुल भगत के 'लेडीज क्लब' में महानगरों की अभिजातवर्गीय स्त्रियों के आत्मप्रदर्शन, झूठी जिंदगी, कृत्रिम आचरण और उनके जीवन के अंतर्विरोधों का अंकन किया गया है। गीतांजली श्री, सुनीता जैन और कमल कुमार के उपन्यास भी महानगरीय परिवेश मे ही नारी की स्थिति और नियति का चित्रण करते हैं।

चित्रा मुद्गल के 'एक जमीन अपनी' में बम्बई के महानगरीय परिवेश में विज्ञापन–जगत के ग्लैमर, मूल्यहीन प्रतियोगिता, तिकड़म, देह–व्यापार आदि का चित्रण है। 'आवां' में तो एक नौजवान लड़की का जीवन–संघर्ष है।

समकालीन लेखिकाओं ने अपने साहस एवं आत्मविश्वास की जादुई शक्ति से उपन्यास जगत को समृद्ध किया। इनके उपन्यास जीवनानुभव से जुड़े हुए है। इन्होंने सहज संवेदना के साथ संसार में आधुनिक जीवन का सारा बौद्धिक तनाव मूल सत्यों के साथ उजागर किया है। समकालीन यथार्थ से रूबरू हो रही विचारोत्तेजक और प्रयोगधर्मी रचनाएँ महिला उपन्यासकारों की महत्वपूर्ण देन है।

समकालीन महिला लेखन में स्त्री ने अपनी सोई हुई चेतना को झकझोर डाला है। आज नारी ने सार्थकता और अपनी अस्मिता को पहचानना आरम्भ कर दिया है। अपनी अस्मिता से जुड़े सवाल आज प्रत्येक स्त्री के मानस में विचलन करने लगे हैं। शहरी परिवेश में अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्षशील है–स्त्री।

स्त्री आज किसी भी पारिवारिक संस्था, मूल्यों, नैतिक–मान्यताओं और परंपराओं आदि के समक्ष समझौता करने के लिए तैयार नहीं है। अपने विश्वास एवं आत्मनिर्भरता के बल पर वह अपनी अस्मिता से समझौता नहीं करना चाहती। समकालीन महिला लेखन में मध्यवर्गीय स्त्री न प्रभुता की इच्छुक है न ही प्रभुत्व की बल्कि वह तो अपना सोया हुआ स्वत्व अस्तित्व चाहती है जिसके बिना उसका जीवन बेमतलब है।

कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, जया जादवानी आदि लेखिकाओं के उपन्यासों में महिला लेखन की एक अलग पहचान बनी है क्योंकि इनके लेखन में स्त्री–अधिकारों के प्रति समाज की कड़ी आलोचना हुई है। समकालीन महिला लेखन एक तरह से स्त्री की अस्मिता की खोज का लेखन कहा जा सकता है। आज की जागरूक स्त्री ने अपनी रचनाधर्मिता द्वारा अपनी अस्मिता को ही स्थापित किया है, सामाजिक अस्वीकार और आत्मस्वीकार के दो ध्रुवों के बीच वह अपने स्त्री होने को नये सिरे से परिभाषित कर रही है।

प्रभा खेतान ने 'तालाबंदी', 'छिन्नमस्ता', 'अपने–अपने चेहरे', 'पीली आँधी' आदि उपन्यासों में कलकत्ता के महानगरीय परिवेश का बहुत ही विश्वसनीय चित्रण किया है। 'कलि–कथा वाया बाइपास' में अलका सरावगी ने एक मारवाड़ी परिवार की पाँच पीढ़ियों की संघर्ष कथा प्रस्तुत कि है। जिसमें राबड़ी, सोनिया आदि के अस्मिता संघर्ष की कहानी है।

जया जादवानी ने अपने उपन्यास 'तत्वमसि' में अपनी अस्मिता के प्रश्नों को उठाया है। नायिका मानसी आत्मसम्मान और अस्मिता के लिए पितृसत्तात्मक समाज के विधानों को ढोकर मारकर स्वतंत्र जीवन जीने की कामना करती है। वह कहती है– ''मैं रोमी की माँ के अलावा क्या हूँ...मैं कहाँ हूँ? मैं कौन हूँ? आगे वह कहती है– अपनी अस्मिता के लिए, अपनी पहचान के लिए, अपनी निजता के लिए, घर, बच्चा, पति...बस। जीवन समाप्त। जिस उद्देश्य के तहत मेरा जन्म हुआ वह उद्देश्य कहाँ है।''[4]

मधु कांकरिया के उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में जुझारू, धैर्यवाद और अन्ततः विद्रोही स्त्री की पीड़ा का मार्मिक अंकन हुआ है कि धर्म एवं समाज, एक स्त्री को किस तरह से गुमराह करता है, इस गहन पीड़ा को संघमित्रा से बढ़कर कोई नहीं समझता। शिखर जी की पहाड़ियों पर उसे वहाँ के झूमते वातावरण ने बहुत प्रभावित किया वहीं वह अपने से भी एकात्म भाव से जुड़ती है। यहाँ आकर उसके बूझते प्राणों में जीवन का आगमन होता है और पहली बार वह अपने

आज को सही तौर पर पहचानती है– ''पहली बार लगा मेरे भीतर खालीपन भर रहा है। पहली बार महसूस हुआ हर रिश्तों से ऊपर मेरा अपना 'स्व' है जिसकी रक्षा मुझे करनी है।''[5]

शिक्षा और आत्मनिर्भरता ने स्त्री के अंदर आत्मविश्वास जगाया है। आज वह पति को परमेश्वर नहीं मानना चाहती। पति परमेश्वर का चमचमाता फ्रेम अब काला पड़ने लगा है। उसने समझ लिया कि वह न तो पैर की जूती है और न ही दासी। इस सुपर वुमैन ने सुपरमैन के आभासी वैभव को झुठला दिया है। पत्नी की अग्नि परीक्षा लेने और गृह निष्कासन के जन्मसिद्ध पुरूषीय एकाधिकार चरमरा उठे हैं। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आवां' में गौतमी अपने पति को एक निर्जीव चीज से बढ़कर कुछ नहीं मानती वह कहती है–''माँ के अलावा मेरा अदद पति है...नाम है अशोक। ठीक उसी तरह जिस तरह घर में अलमारी है, फ्रिज, वांशिंग मशीन है, डिशवाशर है जितना वो मेरे लिए काम आती है, बदले में मैं उनकी देखभाल करती हूँ...अशोक के साथ मेरा यही रिश्ता है। शेष मैं क्या कहूँ। कहाँ जाती हूँ, किसके साथ सोती हूँ, सोना चाहती हूँ। सोती भी हूँ या नहीं सोती...कोई मतलब नहीं उससे घर मेरा है अशोक को रहना हो रहे, न रहना हो छोड़कर चला जाये।'' [6]

चंद्रकांता का उपन्यास 'कथा सतीसर' में कात्या ऐसी पात्रा है जो शिक्षा को आधार बनाकर अपने पैरों पर खड़ी होती है, उपन्यास में वह एक जगह कहती है– ''मुझे तो पढ़ाई करनी है काकन्यदेदी, तुम शादी के सभी अरमान शरिका, नन्नी दीदियों पर ही निकाल लो।''[7]

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'ऐ लड़की' में अम्मू मानती है कि स्त्री की स्थिति परिवार में गुलाम के समान है। वह कहती भी है, मर्द काम करता है तो उसे एवज में अर्थ धन प्राप्त होता है। औरत दिन रात जो खटती है वह बेगार के खाते में ही न भूली रहती है अपने को मोह ममता में अनजान। बेध्यान। वह अपनी खोज खबर न लेगी तो कौन उसे पूछने वाला है।[8] अम्मू मानती है, कि परिवार स्त्री को सुरक्षा के नाम पर गुलामी देता है और उसका व्यक्तित्व छीन लेता है।

अम्मू में गजब का आत्मविश्वास है वह अपनी बेटी को बताती है कि बचपन से उसमें विशेष आत्मविश्वास था बचपन में हवा से ऊपर उठने की हिम्मत रखती थी वह जो ठान लेती थी करके दिखाती थी, एक बार पहाड़ों पर चढ़ते समय भी उन्होंने अपने पति से कहा ''मेरा फैंसला है कि मुझे चक्कर नहीं आना चाहिए तो आएगा कैसे।''[9] मध्यवर्गीय परिवार की स्त्री में इतना आत्मविश्वास होना असम्भव नहीं पर बहुत कठिन अवश्य है, यह अम्मू के आत्मविश्वास का ही परिणाम है कि वह लड़की के अकेले रहने को सराहती है वह मानती है कि अपने आप में आप होना परम है श्रेष्ठ है। उनके अनुसार अकेलापन व्यक्ति को आत्मविश्वासी बनाता है, सोचने समझने की सही दिशा देता है।

मृणाल पाण्डे के उपन्यास 'रास्तों पर भटकते हुए' में स्त्री की शक्ति पूर्णतः दृष्टिगोचर होती है। इस उपन्यास की मंजरी विवाह के एक वर्ष बाद विवाह विच्छेद हो जाने से विचलित नहीं होती बल्कि स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में खुश रहकर जीने के मायने ढूँढ़ने का प्रयास करती है मंजरी कहती है– ''एक बार जब वह सब मुझसे स्वेच्छा अलग कट ही गया। तो निम्न मध्यवर्गीय इलाके की धकाजेल–भरी यह जिंदगी मेरे भीतर है। सूनेपन को भरने के लिए नर्म दिल जरूरत बन गई।''[10] घर के बाहर के कार्यक्षेत्र में स्त्री पुरूष के समकक्ष ही कार्य कर रही है बल्कि वह पुरूष से कहीं अधिक अपने कार्य के प्रति समर्पित है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मध्यवर्गीय जीवन से संबद्ध स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने, परम्परागत नारी संहिता की जकड़न को चुनौती देने और राजनीतिक दृष्टि से सबलीकरण की दिशा में अग्रसर होने के लिए संघर्षरत है। 20 वीं सदी के अंतिम दो दशकों में प्रकाशित उपन्यासों में ऐसी मध्यवर्गीय स्त्री पात्र है जो अपने सामने उपस्थित चुनौतियों को दृढ़ता के साथ स्वीकार करती है और अपने किसी निर्णय के लिए किसी पुरूष का मुँह नहीं जोहतीं। राजी

सेठ की वसुधा, नासिरा शर्मा की महरुख, चन्द्रकांता की कुनी, मैत्रेयी पुष्पा की मन्दाकिनी की नमिता, उषा प्रियंवदा की वाना आदि अपनी खुशी, मुक्ति, अधिकारों की प्राप्ति या अस्मिता की रक्षा के लिए साहसपूर्ण कदम उठाने की पहल करती है। सजग आत्मचेतना और आत्मनिर्णय से लैस होकर वे न केवल सामन्ती परिवेश और रूढ़ मर्यादाओं के गढ़ को तोड़ती है बल्कि सकारात्मक ढंग से अपने व्यक्तित्व की रचना भी करती है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. आलोचना पत्रिका, उपन्यास विशेषांक, पृ–125
2. हिंदी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य, पृ–564
3. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ–405
4. जया जादवानी, तत्वमसि, पृ–34
5. मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, पृ–30
6. चित्रा मुद्गल, आवां, पृ–361
7. चंद्रकांता, कथासतीसर, पृ–189
8. कृष्णा सोबती, ऐ लड़की, पृ–56
9. कृष्णा सोबती, ऐ लड़की, पृ–14
10. मृणाल पांडे, रास्तों पर भटकते हुए, पृ–34

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha **ISSN : 2395-7115**
February 2021 Page No. : 104-106

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

निर्मला पुतुल की कविता में आदिवासी स्त्री संवेदना : 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा!' के संदर्भ में

–शमीम पी

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, सरकारी ब्रेननकॉलेज, धर्मडम, तलशेरी, कन्नूर –670106

संताली भाषा की कवयित्री निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं में मानवाधिकार, विद्रोह, अस्मिता, स्वाभिमान आदि पर अपनी सशक्त अभिव्यक्ति दी है और इसके माध्यम से भारतीय नारी का प्रतिवेदन भी व्यक्त किया है। उनकी कविताओं में स्त्री की संवेदनशीलता के साथ–साथ संपूर्ण समाज के रूपांतर की कल्पना भी है।

निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासियों की पीड़ाओं और परेशानियों को सरल भाषा में व्यक्त करने वाली हैं। उनकी कविताएँ आदिवासी सभ्यता एवं संस्कार के साथ अपने आसपास के पर्यावरण को भी चित्रित करती है। उनकी कतिपय कविताएँ आदिवासी स्त्री संवेदना को उजागर करने वाली हैं। इसी संवेदना का एक स्पष्ट प्रमाण है उनकी 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा!' शीर्षकीय कविता। अरूण कमल की बाणी में – "यह ऐसी कविता है जिसमें एक साथ आदिवासी लोकगीतों की सांद्र मादकता, आधुनिक भावबोध की रुक्षता और प्रतिरोध की गंभीर वाणी गुम्भित हैं"।[1]

'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा!' कविता एक आदिवासी नव युवति की अंतर्द्वंद्वों एवं आकुलताओं से शूरू होती है। अपनी सभ्यता व संस्कृति से विलग होने की व्यथा हमेशा उसे सताती रहते है। इस व्याकुलता से उत्पन्न अंतर्द्वंद्व वह अपने पिता के आगे पेश करती है–

"बाबा!
मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
जहाँ मुझसे मिलने जाने खातिर
घर की बकरियाँ पड़े तुम्हें।''
जंगल नदी पहाड नहीं हों जहाँ
वहाँ मत कर आना मेरा लगन"।[2]

यहाँ नवयुवती की बेचैनी साफ दिखाई देती है। युवती उस जगह में ब्याह करके नहीं जाना चाहती जहाँ जंगल, नदी, पहाड जैसे प्राकृतिक परिवेश न हो। वह यह भी न चाहती है कि उसे ब्याहने के खातिर उसके पिता को घर की बकरियाँ बेचने पडे।

लड़की शहरी जीवन से भयभीत है। शहर में उसे अपना प्रांत का प्राकृतिक संपदा से युक्त माहौल कदापि न मिलेगी। जंगल की मनोहारिता की जगह उसे तेज दौड़ती मोटर गाड़ियाँ और ऊँचे–ऊँचे मकान ही दृष्टिगोचर होगी, जो उसके नयनों व हृदय के लिए कभी सुखदायक नहीं होगी। जिस प्रकृति की गोद में वह पली बड़ी है उससे विलग होना उस के लिए हृदय विदारक है। इसे द्योतित करते हैं निम्न चरण :–

"उस घर से मत जोडना मेरा रिश्ता
जिसमें बड़ा सा खुला आँगन न हो
मुर्गी की बाँग पर होती नहीं हो जहाँ सुबह
और शाम पिछवाडे से जहाँ
पहाड़ी पर डूबता सूरज न दिखे"।[3]

आगे लड़की अपने लिए अनुयोज्य वर के बारे में बताती है। वह कहती है कि मेरे लिए ऐसा वर न चुनना जो काहिल–मुकम्मा हो, पोचई और हडिया में डूबा रहने वाला हो, लड़कियों का अपहरण करने वाला भी हो। असकी मन की परेशानियों को व्यक्त करते हुए वह आगे कहती है कि वर का चुनाव करते वक्त सावधानी न बरते तो पुराने थारी लोटे के समान खराब होने पर बाद में उसे बदला न जा सकती। वह यह भी न चाहती है कि पुरुष अपने शारीरिक बल पर उस पर हमला करे–

''कोई थारी–लोटा तो नहीं
कि बाद में जब चाहूँगी बदल लूँगी
जब चाहे चला जाए बंगाल, असम, या कश्मीर
ऐसा वर नहीं चाहिए हमे"।[4]

इन चरणों के माध्यम से कवयित्री पितृसत्तात्मक समाज के द्वारा बनाए गए उसूलों के अनुसार जीने के लिए बाध्य नारी मन की व्यथा का खुलासा करती है।

नव युवती अपने लिए ऐसा वर चाहती है जो प्रकृति का संरक्षक हो, अपने हाथों से फसल उगाता हो, सबका साथ देने वाला हो, पढा लिखा हो और मानवीयता का संरक्षक हो :–

"और उसके हाथ में मत देना मेरा हाथ
जिसके हाथों ने कभी कोई पेड नहीं लगाए
और तो और!
जो हाथ लिखना नहीं जानता हो ह से हाथ
उसके हाथ मत देना कभी मेरा हाथ"।[5]

लड़की अपने माहौल से इतनी घुलमिल गई है कि उस परिवेश से दूर जाना या उसे भूल पाना उस के लिए नामुमकिन है। वह हमेशा अपने सगे संबन्धियों के बीच उनके सुख–दुःख के भागीदार बनकर जीना चाहती है। वह अपने घर से इतनी ही दूर रहना चाहती है जहाँ अपने रिश्तेदार से मुलाकात हो सके और मेले व बाजार आते–जाते खुशियाँ बाँट सके। वह यह भी चाहती है कि वह जहाँ भी बसे वहाँ जाति व धर्म के आधार पर कोई लडाई न हो, जाति व ओहदे के आधार पर कोई भेदभाव न प्रकट करे :–

"उस देश में ब्याहना
जहाँ ईश्वर कम आदमी ज्यादा रहते हो
बकरी और शेर
एक घाट पानी पीते हो जहाँ
वहीं ब्याहना मुझे"।[6]

लड़की हरेक साधारण स्त्री की तरह एक ऐसी जीवन साथी की कामना करती है जो हमेशा कबूतर के जोड़े के समान उसके साथ निभाए, घर–बाहर सभी कामों में उसका हाथ–बँटाए और उसके सुख–दुःख के भागीदार बने। वह

आगे कहती है कि वह हमेशा अपनी लोक संस्कृति के पुरोदा हो और संगीत में पारंगत हो। वह चाहती है कि वसंत के दिनों में रोज उसके जूड़े के खातिर पलाश के फूल लाने वाला हो अर्थात सहृदय हो तथा सदा अपनी पत्नी के परवाह करने वाला हो। लड़की के इस भोली चाहत को उकेरती है निम्न पंक्तियाँ :–

"जिसे खाया नहीं जाये
मेरे भूखे रहने पर
उसी से ब्याहना मुझे!!"[7]

अतः कहे तो 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा!' कविता लोक संवेदना के महीन– दीप्त रंग से ओतप्रोत है। कविता में जब युवती अपनी पिता से वर के चयन के बारे में विधेय एवं निषेध की पंक्तियों से गुजरते हुऐ अपनी बात कहती है। उसका इस तरह उन्मुक्त मनोभाव से कहना आधुनिक भाव–वोध व प्रतिरोध का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह प्रचलित पितृसत्तात्मकता पर भी चोट करने वाली है।

संदर्भ :–

1. निर्मला पुतुल – नगाड़े की तरह बजते शव्द, अरुण कमल, आवरण पृष्ठ से उद्धृत
2. निर्मला पुतुल – नगाड़े की तरह बजते शव्द, उतनी दूर मत ब्याहना बाबा – पृ सं 49
3. वही पृ.सं 49
4. वही पृ.सं 50
5. वही पृ.सं 50
6. वही पृ.सं 51
7. वही पृ.सं 52

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. निर्मला पुतुल – नगाड़े की तरह बजते शव्द, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 18, इंस्टिटुशनल ऐरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, 110003, संस्करण 2005

मो 7356108164, ईमेल : shameemriyas78@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 107-110

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सत्य अहिंसा और करूणा के प्रतीक– गुरू घासीदास

–दासरथी जांगड़े,
शोधार्थी हिंदी विभाग, अटल बिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

संत शिरोमणि बाबा गुरु घासीदास जी का जन्म 18 वीं शताब्दी के मध्य काल में ऐसे समय में हुआ जब समाज में अनेक प्रकार की बुराइयां व्याप्त थी जातिवाद, छुआछूत आदि।

इतिहास गवाह है कि जब समाज में इस तरह की अराजकता, अन्याय, अत्याचार का दमन करने के लिए समय–समय पर विभिन्न संतो और महापुरुषों का जन्म हुआ है जैसे –गौतम बुद्ध, संत रविदास, संत कबीर दास, गुरु नानक देव, संत तुकाराम, संत एकनाथ आदि। इसी कड़ी में समाज में फैली विभिन्न बुराइयों की समाप्ति के लिए बाबा गुरु घासीदास जी का जन्म छत्तीसगढ़ राज्य की छोटे से गांव गिरौदपुरी तहसील –कसडोल, जिला –बलौदा बाजार– भाटापारा जो उस समय सोनाखान रियासत में शामिल था। वहां सन 1756 को 18 दिसंबर, दिन– सोमवार को हुआ था।

इनके पिता महंगूदास और माता अमरौतीन तथा दादा मेदिनी दास थे जो कृषि कार्य कर साधारण किसान के रूप में जीवन–यापन करते थे। इनके दादा एवं पिताजी कुशल वैद्य भी थे। जिनका प्रभाव बचपन में गुरु घासीदास पर भी पड़ने के कारण इन पर भी वैध कार्य की क्षमता बढ़ गई। '' संत गुरु घासीदास सिर्फ वैद्य थे, उन्होंने कोई शल्य चिकित्सा का प्रयोग नहीं किया क्योंकि उस जमाने में अविष्कार नहीं हुआ था, फिर भी जितना भी बन पड़ता था उन्होंने समाज की सेवा की है। देखते ही देखते दो या तीन दशकों तक अनेक रोगों का निदान किया है जिसे कालांतर में अनुयायी लोग चमत्कार मानते हैं।''[1]

गुरू घासीदास की शिक्षा :–

बाबा गुरु घासीदास जी के जन्म काल में मनुवादी व्यवस्था कायम थी, उस समय चारों वर्णों में से चौथा वर्ण जिसे शूद्र कहा जाता था को शिक्षा का अधिकार नहीं था, साथ ही किसी भी वर्ण के महिलाओं को भी शिक्षा का अधिकार नहीं था। इसीलिए बाबा घासीदास जी को निरक्षर होने का दंश झेलना पड़ा।

''उन्होंने जो भी ज्ञान अर्जित किया है। वह अनेक संत महात्माओं की संगति का ही परिणाम है। ऐसे अनेक महापुरुष भले ही वह स्कूली शिक्षा ग्रहण ना कर पाए हो किंतु कुछ ऐसे विलक्षण प्रतिभा के धनी होते हैं, जो अपनी प्रतिभा का उद्घाटन कर निश्चित ही इस धराधाम की मानवता के उद्धारक या जगत का मसीहा बन जाते हैं जो जगत पूज्य हो जाते हैं।''[2]

ऐसे समय में जब समाज में स्त्री शूद्रों न धीयताम् को चरितार्थ किया जाता था, तब बाबा गुरु घासीदास ने किसी भी प्रकार से स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए। फिर भी उन्होंने अपने आत्मज्ञान से जो शिक्षा पाए उसे समाज में मंत्र के रूप में परोस कर समाज में विभिन्न प्रकार की व्याप्त बुराइयों को समाप्त कर दिखाएं और इन्हीं मंत्रों को बाबा गुरु घासीदास जी के सप्त सिद्धांत कहा जाता है जिनके कारण इन्हें सत्य अहिंसा और करुणा के प्रतीक कहा जाता है। येसिद्धांत जो आज भी प्रासंगिक हैं इनका विवरण निम्नानुसार है–

1. सतनाम पर विश्वास करो :–

कहा जाता है कि बाबा गुरु घासीदास जी सत्यवादी और साधु पुरुष थे। हमेशा सत्य पर विश्वास करते थे।

इसीलिए उन्हें सत्पुरुष के अवतार भी मानते हैं। उन्होंने कहा है कि सत्य पर धरती खड़ा है जो कि व्यावहारिक रूप से भी सत्य है क्योंकि सभी लोग अपने जीवन में सत्य के बदले अपने हित के लिए सत्य का सहारा लेते हैं। इसीलिए उनका यह पहला मंत्र 'सतनाम पर विश्वास करो' सार्थक था। क्योंकि सत्य की सदा विजय होती है। इसीलिए कहा भी गया है कि 'सत्य ही ईश्वर है ईश्वर ही सत्य है'। और 'सत्य ही मानव का आभूषण है'।

''आदि नाम सत्य नाम है ,सत्य ही है जग सार।
सत्यनाम के जपनते, सब जन उतरे पार।।''[3]

बाबा घासीदास जी द्वारा समाज में जाकर सत्य के महत्व को बताया जाता था और सब सत्य के विश्वासी हो गये। हर कार्य को सत्यता के साथ किया करते थे तथा अपने जीवन में सत्य पर भरोसा करते हुए सादा जीवन उच्च विचार की भावना को मान्यता देते थे इसीलिए उन्हें सत्य के पुजारी या सत्य का प्रतीक कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा।

2. मूर्ति पूजा मत करो :-

बाबा गुरु घासीदास जी ने समाज को संदेश दिया कि–'मूर्ति पूजा मत करो' क्योंकि मूर्ति पूजा से अंधविश्वास, रूढ़िवाद, ढोंग, और पाखंड का जन्म होता है। पाखंडियों के द्वारा अपने को श्रेष्ठ बनाए रखने के लिए समाज में अंधविश्वास का बीजारोपण किया जाता है जिससे समाज में उनके द्वारा की गई प्रत्येक बातों को अंधभक्त बनकर अक्षर सह पालन करते हैं। जिसके कारण सही और गलत की पहचान नहीं कर पाते और पाखंडियों की चंगुल में फंसकर समय, धन, तन और मन को गवाते हुए अपने दिमाग को पराभूत कर देते हैं जिससे अपने प्रत्येक निजी व बड़े काम तथा विभिन्न कार्य की शुरुआत के लिए अपने मन से ही तिथि आदि तय नहीं कर पाते हैं और पाखंडियों के ऊपर आश्रित रह जाते हैं साथ हीअपने सोचने व समझने की शक्ति खो देते हैं।

इस संबंध में महान तर्क आबादी संत कबीर दास जी ने भी कहा है कि–

''पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार।।''[4]
''मूर्ति पाथर सब ढोंग है ,बाम्हन पंडन व्यापार।
नाना विधि मूरती बनाई के, बेचौ खुले बाजार।।''[5]

मूर्ति पूजा के अंतर्गत पाखंडियों के प्रेरणा से मंदिरों में विभिन्न देवताओं के नाम पर अपने समस्याओं के निदानार्थ बलि प्रथा चलता है जिसमें पशुबलि और नरबलि दिया जाता है। तथा इसी बहाने हिंसा का राह अपनाया जाता है जो उचित नहीं है इसीलिए बाबा जी के द्वारा मूर्ति पूजा का निषेध करने से वे अहिंसा के भी प्रतीक हैं।

3. जाति पांति के प्रपंच में मत पड़ो :-

घासीदास जी ने देखा और पाया कि समाज में कुछ लोगों के द्वारा अपनी सत्ता कायम रखने के लिए पूरे समाज को चार वर्णों में बांटकर चौथा वर्ण के ऊपर क्रमशः अपना हुकूमत चलाया करते थे जिसके कारण भी लोगों में कभी बदले की भावना जन्म लेता था तथा इसके परिणाम स्वरूप भी ईर्ष्या, द्वेष, और अहंकार आदि के दुष्प्रभाव समाज के विकास पर पड़ता था।

बाबा जी ने सभी जीवों के प्रति आपसी प्रेम रखने के संदेश दिए और कहा कि –मानव मानव एक समान है। जिसे 'मानव मानव एक समान 'कहा है। नर हो या नारी हो सभी को समान अधिकार मिलना चाहिए। इसी के परिणामस्वरूप आज महिलाओं और पुरुषों को समान अधिकार मिलती है। अतः स्पष्ट है कि बाबा जी के इस सिद्धांत से समता, समानता का भाव दिखाई देता है। जिसके लिए बाबा जी को काफी लंबे समय तक संघर्ष करना पड़ा इसीलिए हम सभी को सामाजिक एकता की भावना से ही व्यवहार करना चाहिए जिससे समाज और देश का विकास सुनिश्चित हो सके। उन्होंने जातिवाद के विरोध में कहा है–

''जाति पाँति की कल्पना, बढै रोग जिमि दाद।
सतनाम मलहम मिले, मिटे सकल अपवाद।।''[6]

4. नशा सेवन मत करो :-

बाबा घासीदास जी ने अपने समय में देखा कि समाज के लोग नशा सेवन कर अपने कर्तव्यों को पहचान नहीं पाते थे। जिसके कारण परिवार में गरीबी, अशिक्षा और कलह का निवास होता था तथा उस परिवार का नाश होना निश्चित था, जिस परिवार में नशा सेवन किया जाता था। क्योंकि नशा नाश का कारण है सभी जानते हैं छोटे–छोटे बच्चे भूखे मरते हैं। बीमारियों का सही इलाज नहीं हो पाता क्योंकि नशा अन्य कई बड़े समस्याओं को आमंत्रित करता है।

नशा हिंसा को जन्मदाता है क्योंकि नशा करने पर लोग अहिंसक, निर्दयी हो जाते हैं दया का भाव नहीं रह पाता है नीति –अनीति का ध्यान नहीं रह पाता है। बाबा जी ने अपने अनुयायियों ने इस संदेश को अपने जीवन में अमल किया और जीवन को सुधार कर लिया।

''चाहे मत मतौना ले, जेमा जाय पराण।
नशा नाश शरीर है, बचाय राखो शान।।''[8]

5. मांस सेवन व जीव हत्या मत करो :-

बाबा गुरु घासीदास जी ने सभी जीवो के प्रति दया और करुणा का भाव रखने को कहा है इसलिए हम सभी को चाहिए कि मांसाहार सेवन नहीं करना है। सभी जीव एक समान होते हैं। जीव हत्या करना हिंसा की प्रवृत्ति है। गुरु घासीदास जी सत्य व अहिंसा के पुजारी थे उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार से हमारे शरीर को कोई चोट पहुंचाए तो दर्द होता है उसी प्रकार अन्य जीवो को भी दर्द होता है इसीलिए हम सभी को अहिंसा का पालन करना चाहिए। कहा भी गया है कि 'जैसा खाओगे अन्न वैसा बनेगा मन'।

''मांस मदिरा जो तजे, सो सतनामी कहाय।
नर देही ल पाय कर ,पशु कर वृत्ति हटाय।।''[9]

समय–समय पर समाज के उद्धार के लिए विभिन्न ऋषि–मुनियों ने भी कहा है कि हमारा भोजन सात्विक होना चाहिए। मांस भक्षण के लिए जीव हत्या करना पड़ता है, जो अहिंसा के विपरीत है मांस भक्षण से काम, क्रोध, लोभ और मोह का जन्म होता है।

6. पर नारी स्त्री को माता जानो :-

गुरु जी ने नारियों को सम्मान करने की सलाह दी है, और कहा कि बेटी और बेटा में समानता होना चाहिए क्योंकि मनुवादी व्यवस्था में नारियों समस्त अधिकारों से वंचित रखा जाता था। नारी चाहे किसी भी वर्ण या जाति की हो उसे शिक्षा, संपत्ति आदि का अधिकार नहीं था। बाबा गुरु घासीदास जी समतावादी संत थे उन्होंने नारियों के दुख दर्द को समझा और अपने सिद्धांत में कहा कि संसार के सभी जीव माताओं से ही जन्म लेते हैं पुरुष भी माताओं के ऋणी होते हैं। माताओं (नारियों) के साथ विभिन्न प्रकार के अत्याचार किया जाता था जैसे –सती प्रथा, दासी प्रथा लागू था। जिससे उनकी करुणा को समझकर बाबा जी ने कहा कि यदि हम अपने जीवन में नारियों में माता, बहन और बेटी का रूप देखें तो निश्चित ही समाज अनेक बुराइयों का खात्मा होगा।

उन्होंने कहा कि गायों को भी माता के रूप में माना है क्योंकि वह भी हमें अपने दूध से पालन पोषण करती हैं इसलिए कभी भी यदि कोई गाय दूध नहीं देती हो तो उसे हल मे जोतना पाप है। कहा भी गया है–

'गईया ला नागर मा, झन जोत मोर संत।
असंग दोष लागत हारे दुख होगावे अंत।।''[10]

7. दोपहर में हल मत चलाना :-

गुरुजी ने कहा कि दोपहर में हल चलाना बंद करो क्योंकि उस समय सुबह से बैलों से हल जोताई करते थे। और दोपहर में किसान अपना भोजन मंगा कर खा लेता था लेकिन पशुओं को दूसरा व्यक्ति जोताई करता था जिसके कारण पशुओं को भोजन व पानी नहीं मिल पाता था जो कि हिंसात्मक कार्य है। इसलिए उन्होंने लोगों को समझाया कि

दूर से लाया गया भोजन जिसे खेत में खाया जाता है वह दूषित हो जाता है और दूषित भोजन हमारे शरीर के लिए नुकसान दायक होता है जिससे प्रेरित होकर उनके समस्त अनुयायियों ने दोपहर में हल चलाना बंद कर दिये। इस प्रकार बाबा जी के संदेश का पालन करते हुए हिंसा के बदले अहिंसा धर्म का पालन करने लगे। इसीलिए तो कहावत है –'अहिंसा परमो धर्मः'।

''मझनी मझनियां नागर, मत जोत संत मोर।
खेत ब्यारी खाय ले, रोग सतावे ओर।।''[11]

बाबा गुरु घासीदास के संघर्षों से स्पष्ट होता है कि उनका जीवन पूरा विपरीत दिशा में पानी के बहाव को परिवर्तित करने से कम नहीं था। सभी असंभव कार्य उनके तर्कों और आत्म चिंतन का ही प्रभाव था क्योंकि वह निरक्षर थे। लेकिन एकांत होकर चिंतन–मनन करके सभी समस्या का समाधान कर लेते थे। वे विषम परिस्थितियों का सामना किये और सतनाम पंथ की स्थापना किये। उनके सभी कार्य अनुकरणीय हैं इसीलिए वे आज भी प्रासंगिक हैं।

निष्कर्ष :-

बाबा गुरु घासीदास जी ने अपने जीवन काल में समाज के उत्थान के लिए अपने सिद्धांतों को मंत्रों के रूप में प्रयोग किये और सभी की समस्याओं के निदान के लिए संघर्ष करते हुए अपना जीवन समर्पित कर दिये। उन्होंने समाज के लोगों की समस्याओं के समाधान के लिए जो सिद्धांत दिए वह सभी आज भी प्रासंगिक हैं निश्चित ही संत शिरोमणि गुरु घासीदास जी सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, समता, राष्ट्रीय एकता, स्वतंत्रता, और मानवता आदि के सच्चे अर्थों में प्रतीक हैं। इनका संघर्ष पूर्ण रूप से सन् 1820 ई0 से 1830 ई0 तक गंभीरता पूर्वक चला। हम सभी मानव समाज इनके ऋणी हैं। यदि मानव समाज सप्त सिद्धांतों के अलावा कुछ ही सिद्धांतों को अपने जीवन में अमल कर ले, तो अपने विकास के साथ में देश के भी सर्वांगीण विकास में भी अपना सहयोग निश्चित रूप से प्रदान कर सकेगा।

संदर्भ :-

1. स्वरूप सर्वोत्तम, गुरु घासीदास और उनका सतनाम आंदोलन, सम्यक प्रकाशन (2019) पृष्ठ–96।
2. वही पृष्ठ –42 ।
3. कन्नौजे मेघनाथ, माटी बोलती है, अंकुर प्रकाशन (1984) पृष्ठ –36 ।
4. नृसिंह खेमराज मनोहर दास, सिर्फ सतनामियों के लिए तृतीय संस्करण (फरवरी 2017) पृष्ठ –41 ।
5. नृसिंह खेमराज मनोहर दास, संत शिरोमणि गुरु घासीदास नामायण, (सतनाम धर्म ग्रंथ) पृष्ठ– 628 ।
6. वही पृष्ठ– 593 ।
7. धृतलहरें सुकुलदास, गुरु घासीदास चरित्र ग्रंथ समायण सतनाम पोथी (सन 2000) पृष्ठ – 167 ।
8. वही पृष्ठ 176।
9. वही पृष्ठ 170 ।
10. वही पृष्ठ 172 ।

dasrathijangde2500@gmail.com
ग्राम सूपा पो.आ. बड़े भंडार तह. पुसौर, जिला रायगढ़ (छ.ग.)
पिन नंबर. 496100
9302983034,7974489164

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 111-114

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उत्तराखण्ड के होली गीतों का गायन क्रम

–डॉ. पंकज उप्रेती

संगीत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, टनकपुर, चम्पावत (उत्तराखण्ड)

भारतवर्ष के होली पर्व में ब्रज की होली का जो निराला रूप है, उसमें उत्तराखण्ड की होली का स्वरूप भी कम नहीं है। होली का पर्व वस्तुतः हर्ष, उल्लास और ऋतु परिवर्तन का ही पर्व है जो भारत के अलावा कई अन्य देशों में मनाया जाता है। उल्लास और मनोरंजन को जन सामान्य होलिका और प्रहलाद के प्रसंग से जोड़कर देखता है, किन्तु होली त्यौहार में मनोविनोद, गीत–संगीत, मिलना, रंग खेलना एक पक्ष है और होलिका दहन दूसरा। उमंग और मनोरंजन के इस त्यौहार की अपनी आंचलिकता भी है। जो इसके संगीत में प्रकट होती है। उत्तराखण्ड में होली की दीर्घ परम्परा है और यहाँ होली गीत गायन के दो प्रकार हैं– खड़ी होली और बैठकी होली। खड़ी होली ग्रामीण अंचल की ठेठ सामुहिक अभिव्यक्ति है जबकि बैठकी होली को नागर होली भी कहा जाता है।[1] बैठकी होली शास्त्रीय संगीत की बैठकों की तरह होते हुए भी लोकमानस से इस प्रकार जुड़ी हैं कि उस महफिल में बैठा हुआ प्रत्येक व्यक्ति उसमें अपने को कलाकार/गायक मानता है। यानी कि मंच और दर्शक/श्रोता के बीच कोई दूरी नहीं होती है। विभिन्न रागों से सजी होली बैठकी की इस परम्परा में अनगिनत गीत हैं जिन्हें श्रुतियों से पीढ़ी दर पीढ़ी गाया जा रहा है।

उत्तराखण्ड के कुमाऊँ अंचल में इस उत्सव की शुरुआत कब हुई यह तय कर पाना कठिन है किन्तु अनुमानतः मध्यकाल में दसवीं–ग्यारहवीं सदी से इसका प्रारम्भ माना जाता है। गढ़वाल अंचल के टिहरी व श्रीनगर शहर में कुमाऊँ के लोगों की बसासत और राजदरबार के होने से होली का वर्णन मौलाराम की कविताओं में आता है।[2] इस काल में मैदानी क्षेत्र से भिन्न–भिन्न मानव समुदायों का आगमन यहाँ हुआ, जो अपने साथ विरासत में अपनी संस्कृति भी लाये तथा उसका चलन प्रारम्भ किया। जब एक स्थान से कोई संस्कृति दूसरे स्थान पर जाती है तो वह धीरे–धीरे वहाँ की विशेषताओं को भी अपने में समेटते हुए वहाँ की हो जाती है। कुमाऊँ की होली में भी ऐसा जा सकता है। कहते हैं 16वीं सदी में कुमाऊँ में होली गायन की परम्परा का आरम्भ राजा कल्याण चंद के समय में हुआ। कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द ने 1697 में 'दशहरे का भवन' अपने महल में बनवाया, उसमें दशहरे के दिन राजसभा होती थी।[3] चंद राजाओं, कत्यूरियों, मणकोटियों, पंवार वंशीय राजाओं तथा अन्य राजघरानों के बीच आपसी सम्बन्ध कैसे ही रहे हों, कलाकारों का सम्बन्ध काफी घनिष्ठ रहा है। राजशाही के जमाने में कई संगीत मर्मज्ञ यहाँ आए और कई जिज्ञासु ज्ञान अर्जित करने के उद्देश्य से बाहर गये।[4] चन्द राज्यकाल में राजा प्रद्युमन शाह ने रामपुर के दरवारी संगीतज्ञ अमानत हुसैन को अपने यहाँ बुलाया। प्रद्युमन शाह को गोरखा आक्रमण से पूर्व सन् 1778 के लगभग हरदेव जोशी ने अल्मोड़ा के राजसिंहासन पर बिठाया था। होली गीत से भी राजा के संगीत प्रेमी होने की पुष्टि होती है– ''तुम राजा प्रद्युमन शाह मेरी करो प्रतिपाल। आज होली खेल रहे हैं, सकल सभासद खेल रहे हैं, कर धर सुन्दर थाल री।'' कहते हैं ग्वालियर, मथुरा से भी मुस्लिम संगीतज्ञ यहाँ आते रहे। 1850 से होली की बैठकें नियमित होने लगीं तथा 1870 से वार्षिक समारोह के रूप में मनाया जाने लगा। शास्त्रीय संगीत से उपजी कुमाऊँ की बैठ होली के स्वरूप को बनाने में उस्ताद अमानत हुसैन का नाम सर्वप्रथम आता है।[5]

कुमाऊँ की होली के काव्य स्वरूप को देखने से पता चलता है कि कितने विस्तृत भाव इन रचनाओं में भरे हैं। इसी प्रकार इसका संगीत पक्ष भी शास्त्रीय और गहरा है। पौष के प्रथम रविवार से होली गायन की यहाँ जो परम्परा बन चुकी है, उसकी नींव बहुत सुदृढ़ है।[6] गायन की शुरुआत निर्वाण की रचनाओं से होता है–

गणपति को भज ले, रसिक वह आदि कहावे।
माता उमा के गोद में बैठकर, चतुर भुजा को दिखावे,
सूरपाकार श्रवण किमसिम करी, माता को हर्षाऐ।। रिसक0

निर्वाण के होली गायन में विष्णुपदी रचनाओं में ईश्वर की भक्ति और आध्यात्म के प्रसंग छिड़ते हैं। वैराग्य भाव की रचनाएं भी इसमें बनी रहती हैं। ज्ञानपरक और भक्तिपरक गीतों को होल्यार गाते हैं–

क्या जिन्दगी का ठिकाना, फिरत मन क्यों रे भुलाना।
कहां गये भीम कहां दुर्योधन, कहां पारथ बलवाना,
कहां गये भीष्म द्रोण करण से,
पल में जान न जाना कठिन जिन भारत ठाना।।[7]

पौष की सर्द रातों में होली का यह गायन शुरु होता हैं जिसमें देर रात्रि तक लोग जुटते हैं। एक के बाद एक रचनाओं की प्रस्तुति होती है। अधिकांश गीत राग काफी में गाये जाते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

भव भजंन गुण गाऊं, मैं अपने राम को रिझाऊं।
गंगा न नहाऊं जमुना न नहाऊं, न कोई तीरथ जाऊं,
अड़सठ तीरथ हैं या घट भीतर, उन्हीं में मल–मल नहाऊं।।[8]

होली गायन का यह क्रम बढ़ने पर होल्यार ज्यादा ही मस्ती में आने लगते हैं और रात्रि के अलावा अन्य समय भी बैठकों का दौर चल पड़ता है। ऐसे में समयानुसार रागों का चयन करते हुए गीत होते हैं। आदि कवि पं. लोकरत्न पन्त 'गुमानी' की प्रसिद्ध रचना जिसे राग श्यामकल्याण में गाया जाता है–

''मुरली नागिन सों, वंशी नागिन सों
कह विधि फाग रचायो, मोहन मन लीनो।।मुरली0
व्रज बांवरो मोसे बांवरी कहत है, अब हम जानी,
बांवरो भयो नन्दलाल।।मोहन0
सूरन के प्रभु गिरिधर नागर, कहत गुमानी
दरस तिहारो पाया।।मोहन[9]

पौष के बाद बसन्त पंचमी आते ही गीतों में नई बहार आने लगती है और बसन्त के होली गीतों का गायन भी होने लगता है। उदाहरण के लिये–

मनसुख लाओ मृदंग नाचत आई चन्द्रावलि पग बांध घुंघरवा।
ताल पखावज बाजन लागे, अरु डफली मुरचंग।
'चारु' प्रिया संग भयामसुन्दर पर, बरसाओ नवरंग।।[10]

इसी प्रकार कोटद्वार निवासी श्री महेशानन्द गौड़ की होली रचनाएं बहुत लोकप्रिय हैं। काफी राग पर गाई जाने वाली एक लोकप्रिय रचना–

सबको मुबारक होली, फागुन ऋतु शुभ अलबेली।
घर–घर अंगना रंग अबीर है, खुशियों की रंगरेली,

तन रंग लो तुम प्रभु के रंग में, रंग लो मन की चोली।।''[11]

शिवरात्रि आते ही होली गीतों में शिवभक्ति भी दिखाई देती है। गायक गाने लगते हैं–

आज सदाशिव खेलें होरी।
जटा जूट में गंग विराजे, अंग वभूत रमोरी,
वाहन बैल, ललाट चन्द्रमा, मृगछाला और झोली,
संग में नाग की पटोरी।।

इसके बार होली का चौथी चरण का गायन श्रृंगार से भरपूर होता है। काफी, खमाज, देश, भैरवी तमाम रागों के स्वरों पर आधारित होली गीत गाये जा रहे हैं। अब प्रस्तुत हैं कुछ होली गीत–

पीलू

मद की भरी चली जात गुजरिया।
सौदा करना है कर ले मुसाफिर,
चार दिनों की लारी बजरिया।।

शमाज

आज राधे रानी चली, चली ब्रज नगरी,
ब्रज मण्डल में धूम मची है।
वशन आभूषण सजे सब अंग–अंग पर,
मानो शरद ऋतु चन्द्र चली (री)।

देश

चलो री चलो सखी नीर भरन को, तट जमुना की ओर
अगर–चन्दन को झुलना पड़ो है, रेशम लागी डोर।

बिहाग

बलम तोरे झगड़े में रैन गई
कहाँ गया चन्दा कहाँ गये तारे,
कहाँ तोरी प्रीत की रीत।।

परज

तोरी वंसुरिया श्याम, करेजवा चीर गई।
सुध बुध खोई चैन गवायो, जग में हुई बदनाम,
तोरे रंग में रंग दी उमरिया, तोरी हुई घनश्याम।।

बागेश्वरी

अचरा पकड़ रस लीनो,
होरी के दिनन में रंग को छयल मोरा।
अबीर गुलाल मलुंगी वदन में, केशर रंग बरसा

इसी प्रकार सहाना, झिंझोटी, जोगिया, जयजयवन्ती, विहाग, परज सहित अन्य रागों में भी कई होली रचनाएं बैठकों में गायी जाती हैं। इनके गायन का शास्त्रीय अंदाज होते हुए भी लोक की चाल अर्थात ताल है जो इसे पृथक शैली का दर्जा देता है।

सन्दर्भ :-

1. पुराने समय में जब पहाड़ के गिने–चुने नगरों में सम्पन्न/सक्षम लोगों के वहाँ बैठने का प्रबन्ध किया जाता था और महफिल होती थी, उस बैठकी को ही नागर अर्थात नगर होली कहा जाता था।
2. कुमाऊँ का होली गायन : लोक एवं शास्त्र, डॉ. पंकज उप्रेती, पृष्ठ– 11
3. संगीत सुधा, डॉ. पंकज उप्रेती, पृष्ठ– 105
4. वहीं, पृष्ठ– 105
5. वहीं, पृष्ठ– 106
6. दूरदर्शन उत्तराखण्ड/उ.प्र. पर प्रस्तुति
   https://www.youtube.com/watch?v=kcghxltg_lo
7. स्पर्श हिमालया चैनल की प्रस्तुति, 28 दिसम्बर 2020 htts:// youtu.be/p0iJgNFJhYI
8. दूरदर्शन उत्तराखण्ड प्रस्तुति पहाड़ की बैठकी होली। 3 जनवरी 2011,
   https://www.youtube.com/watch?v=_zR9lsbFi6A
9. कुमाऊँ का होली गायन : लोक एवं शास्त्र, पृष्ठ– 155
10. स्व. चारु चन्द्र पाण्डे 'चारु' लोकभाषा और अपनी रचनाओं के लिये साहित्य अकादमी के भाषा सम्मान से सम्मानित हुए थे।
11. pighaltahimalaya यूट्यूब चैनल पर देखे जा सकते हैं– मेलों के गीत, आंठू–सातू के गीत, संस्कार गीत, होली, रामलीला, बैर–फाग, छपेली, समूह नृत्यगीत, सीमान्त क्षेत्र के उत्सव, देवालय, कार्य–व्यवहार इत्यादि।

पत्र व्यवहार का पता–
डॉ. पंकज उप्रेती
जे.के.पुरम्, सेक्टर डी, छोटी मुखानी
हल्द्वानी, जिला नैनीताल उत्तराखण्ड)
पिन– 263139
मो.न.– 9411301014
9411770280

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 115-122

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय कृषक और कृषि समस्या समाधान

–डॉ. जगदीश प्रसाद मौर्य

सह–आचार्य, भूगोल, स्व.पं.न.कि.शर्मा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। देश की लगभग 60–70 पतिशत जनसंख्या जीविकोपार्जन हेतु कृषि पर ही प्रत्यक्ष रूप से निर्भर करती है, भारतीय कृषि मानसून का जूआ है जिस वर्ष मानसून अच्छा होता है उसी वर्ष आय भी अच्छी होती हैं साथ ही औधोगिक क्षेत्र की प्रगति तथा उपलब्धि भी कृषित कच्चे माल की आपूर्ति पर निर्भर करती है। के कृषि उत्पादो के निर्यात से बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है। 1947 से 2017 के सात दशको अर्थात 70 वर्षो के इस विकास क्रम का यह सफर वैसे तो बहुत लम्बा नही है, लेकिन इस कम समय की अवधि में देश में जो कुछ भी परिवर्तन हुआ है चाहे वह कृषि, उद्योग, मेडिकल या इंजीनियरिंग क्षेत्र हो जिसमें निजी व सार्वजनिक उपक्रम हो, सभी महत्वपूर्ण है। जहाँ तक कृषि क्षेत्र का प्रश्न है यह अपने आप में महत्वपूर्ण ही नही वरन् विश्व के सभी विकासशील राष्ट्रो के लिए अनुकरणीय है।

सन् 1947 के पश्चात् देश के विकास के लिए कृषि ही प्रथम प्राथमिकता थी क्योंकि देश अपने आप में भुखमरी, गरीबी, आर्थिक व सामाजिक उथल–पुथल, बढती बेरोजगारी जैसी विशाल समस्याओं से ग्रसित था। कृषि के अलावा भारत में और कोई दूसरा विकल्प नही था। अतः देश में कृषि विकास का मार्ग अपनाया और हरित क्रान्ति के सहारे देश को 70 के दशक में खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर बना दिया। यह भारत के लिए एक सम्मान जनक स्थिति थी लेकिन प्रचार–प्रसार के अभाव में दूसरी तरफ देश की बढ़ती जनसंख्या वृद्धि को रोक पाने में असफल प्रयास रहा जिसके परिणामस्वरूप विकास के सभी आयाम आधे–अधूरे रहे, क्योकि जो खाद्यान्न 60–70 करोड़ लोगो के लिए था। वह एक अरब लोगो में बॉटा गया अर्थात भूखमरी तब भी साथ नही छोडी और वर्तमान में लगभग 25 प्रतिशत जनसंख्या आधे भूखे पेट भोजन पर ही गुजारा कर रही है, यानि देश की लगभग 33 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गरीबी रेखा के नीचे ही अपना जीवनयापन कर रही है।

भारतीय कृषि मानसून पर पूर्णतः निर्भर करने वाली है परन्तु यह तथ्य मानसून की अनियमितता, अनिश्चिता, असमानता, अरूपता तथा चलन के कारणो से देश की कृषि को अधिक प्रभावित करती है। देश के कई राज्यो में सिंचाई सुविधाओ वर्षभर निरन्तर बनी रहे ऐसे प्रयासो का विस्तार करके वर्षा की निर्भरता को कम करने का प्रयास किये जा रहे है। वर्तमान में वर्षा एवं भूमि दोनो ही बढ़ती जनसंख्या एवं मांग की पूर्ति करने में असफल रहे है। वर्षा का क्रम पर्यावरण प्रदुषण के कारण बिगड़ चुका है, जिससे देश की अधिकतर नदियॉ, नाले, व बॉध सूख चुके है एवं पर्यावरणीय तंत्र नष्ट होने को है। इस प्रकार देश के सामने बहुत बडी समस्या एवं चुनौती हो चुकी है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसमें 70 प्रतिशत भारतीय लोग किसान है। वे भारत देश के रीढ़ की हड्डी के समान है। खाद्य फसलो फल–फूल और तिलहन का उत्पादन करते है। वे वाणिज्यिक फसलो के उत्पादक है वे हमारे उद्योगो के लिए कुछ कच्चे माल का उत्पादन करते है। इसलिए वे हमारे राष्ट्र के जीवन रक्त है। भारत अपने लोगो की

लगभग 60 प्रतिशत कृषि पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्भर भारतीय किसान पूरे दिन और रात काम करते है। वह खेत में बीज बोता है और रात में फसलो पर आवारा पशुओं की नजर रखकर रखवाली करते है। वह अपने पशुओं का ख्याल रखता है लेकिन वर्तमान मे आधुनिक यंत्रो (टैक्टर) के माध्यम से खेती की जाती हैं। खेती के अन्दर परिवार के सभी सदस्य मदद करते है।

भारती कृषक सबसे ज्यादा मेहनत करता है और उनकी आर्थिक स्थिति आज भी उतनी अच्छी नही है जितनी होनी चाहिए जब हम किसी किसान के दर्द या उसकी भावनाओ को व्यक्त इस शायरी के माध्यम से कर सकते है।

ऐ खुदा बस एक ख्वाब सच्चा दे दे
अबकी बरस मानसून अच्छा दे दे।

1947 से पूर्व और 1947 के पश्चात् लगभग 7 दशक की लम्बी अवधि व्यतीत होने के बाद भी भारतीय कृषक की दशा में सिर्फ 19–20 की ही अन्तर दिखाई देता है। जिन अच्छे शिक्षित किसानों की बात की जाती है उनकी गिनती उंगलियो पर ही की जा सकती है। बढ़ती आबादी, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण कृषि योग्य क्षेत्रफल में निरन्तर गिरावट आई है।

1. कृषि शिक्षा का अभाव कृषि समस्या :–

जिस देश में 1.25 अरब के लगभग आबादी निवास करती है और देश की 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर ही आधारित है उस देश में कृषि शिक्षा के कॉलज व विश्वविद्यालय नाममात्र के है उनमें भी गुणवत्तापरक शिक्षा का अभाव है भूमण्डलीकरण के दौर में कृषि पर आधुनिक तकनीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से जो इस देश में आती है उसे कृषि का प्रचार–प्रसार तंत्र उन किसानो तक पहुॅचाने में लाचार नजर आता है। यह गम्भीर व विचारणीय विषय है। राष्ट्रीय या प्रदेश स्तर पर कृषि शिक्षा के जो विश्व विद्यालय है उनमें शोध संस्थानो के अभाव में उच्च स्तरीय शोध समाप्त प्रायः से है। किसान ईश्वरीय कृपा पर आज भी निर्भर है कृषि शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों मे होना चाहिए और प्रत्येक शिक्षण संस्थान में न्यूनतम माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा अवश्य होनी चाहिए।

उचित भूमि प्रबन्धन का अभाव :–

1947 के बाद आज भी किसी प्रकार की भूमि एवं फसल प्रबन्धन की बात देश के किसी भी कोने में दिखाई नही देती, यदि राष्ट्रीय स्तर या राज्य स्तर पर यह नीति बनाई जाये कि देश के अन्दर विभिन्न जिंसो की कितनी खपत है और वह किस क्षेत्र में है इसके अतिरिक्त भविष्य के लिए कितने भण्डारण की आवश्यकता है, साथ ही कितना हम निर्यात कर सकेंगे। जिंस वार उतने उत्पादन की व्यवस्था क्षेत्रीय आधार पर करनी चाहिए। और संबंधित किसानो को इसकी शिक्षा दी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त जो शेष रहती है उस पर ऐसी फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देना चाहिए जो किसानों के लिए व्यावसायिक सिद्व हो तथा निर्यात की सम्भावनाओं को पूर्ण कर सके और आयात को न्यूनतम कर सके।

दोषपूर्ण भूमि अधिग्रहण नीति :–

केन्द्र व राज्य सरकारो द्वारा गठित विभिन्न विकास प्राधिकरणो द्वारा भूमि अधिग्रहण की नीति से कृषि योग्य भूमि के अन्तर्गत परिर्वतन किया गया बहुत ही अति आवश्यक है, औधोगिक विकास, आधारभूत सरंचना विकास व आवासीय योजनाओं हेतु ऐसी भूमि का अधिग्रहण किया जाना चाहिए जो कृषि योग्य नही है। ऊसर बंजर तथा जिसमे अत्यधिक कम फसल पैदावार होती है ऐसी भूमि का अधिग्रहण हो, कृषि उपयोग में लाए जाने वाली भूमि का अधिगृहण और उस पर निर्माण प्रतिबन्धित कर देना चाहिए। जिन किसानो की भूमि अधिगृहण की जाती है उसे वस्तुतः लीज पर लिया जाना चाहिए तथा मुवावजे के रूप में एक मुश्त भुगतान के आधार पर वार्षिक रूप से धनराशि लीज अवधि तक प्रदान की जानी चाहिए।

सरल साख प्रबन्धन का अभाव :-

प्रत्येक ग्राम सभा स्तर पर एक कृषि केन्द्र होना चाहिए जहाँ पर ग्रामीण कृषि क्षेत्र से संबंधि सभी कर्मचारी आवासीय सुविधाओ के साथ कार्यालय में कार्य कर सके। यहाँ पर एक सहकारी समिति, कृषि सहकारी समिति का विक्रय केन्द्र होना चाहिए, जिस पर कृषको के अनुसार बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि की व्यवस्था करवाई जाये जो किसनो को ऋण के रूप में उपलब्ध हो साथ ही निराई, गुडाई बुआई (जैसे–टैक्टर, थ्रेसर, कम्बाइन हार्वस्टर आदि) तथा कीट नाशक के छिड़काव यंत्र भी कम मूल्य में उपलब्ध करवाना चाहिए।

प्रत्येक किसान की फसलो को बीमा कृत करना चाहिए ताकि अतिवृष्टि, सूखा ओलावृष्टि, आग, बाढ, चोरी आदि या कोई अन्य कारण हो तो उस किसान को उसका मुवावजा/क्लेम तत्काल दिया जाना चाहिए। किसानो को ऋण दिये जाने की व्यवस्था और सुविधाओ को मजबूत तथा उदार बनाने की आवश्यकता है। साथ ही समय–समय पर किसानो का ऋण मुक्त कर दिया जाना चाहिए ताकि किसान कर्ज से मुक्त हो और आगामी फसल की तैयारी में हो।

वर्तमान में केन्द्र सरकार द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड की जो व्यवस्था की गई है, वह अच्छी तो है परन्तु उसका व्यावहारिक पक्ष देखा नही गया है, जिसे कोई सहकारी समिति अपने कार्य क्षेत्र से बाहर ऋण नही दे सकती और उस समिति से ही धन एवं कृषि उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है तब उसके किसान क्रेडिट कार्ड का कोई मतलब नही रहता।

उन्नत तकनीक की सिंचाई व्यवस्था की कमी :-

उन्नत तकनीक से सिंचाई को प्रोत्साहन देने हेतु स्प्रिंगलर सिस्टम को व्यापक रूप से कृषि क्षेत्र में लागू करना चाहिए। इस सिस्टम में जमीन के अन्दर पानी के पाईपो की फिटिंग करके उसमें भूमि के क्षेत्रफल को ध्यान में रखते हुए एक या दो जगह निकासी द्वार बना दिया जाता है। इस निकास द्वार पर धुमावदार फव्वारों को लगा दिया जाता है जो चारो तरफ घूम–घूम कर फसलो की सिंचाई करते है इस प्रणाली को अपनाने से फसलों की सिंचाई संतुलित रूप से होती है। भूमि के जलस्रोत का अत्यधिक दोहन नही होता है भारतीय किसानो को इन उन्नत सिंचाई तकनीको की जानकारी का अभाव है। जिसमें फसल उत्पादकता में कमी होती है।

रासायनिक उर्वरको के प्रयोग का दुष्परिणाम :-

वर्तमान में किसान एक ही फसल से अधिक उत्पादन लेने के प्रलोभन में रासायनिक उर्वरको का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करता है और जैविक उर्वरको से होने वाले फायदे से धीरे–धीरे वंचित हो रहा है। जैविक उर्वरक जैसे कम्पोस्ट खाद, केचुआ खाद, लेमन ग्राफ–ग्रीन में चोर आदि से मृदा की उर्वरकतामें वृद्धि, मृदा में उपलब्ध लाभदायक जीवाणुओ की संख्या के हास में कमी, पर्यावरण प्रदुषण में कमी, भूमि मे अधुलनशील तत्वो को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करना, रसायनिक खादो के मुकाबले सस्ती, टिकाउ आदि गुण जो किसान जैविक उवरको के उपयोग से प्राप्त कर सकता है। वह इन सबसे वंचित रह जाता है।

नई प्रौधोगिक कि तकनिको का अभाव :-

भारत विकाशील देशो की श्रेणी में आने वाला देश है और विकसित देशो में जैव प्रौधोगिकी, आसूचना और संचार प्रौधोगिकी नवीकरणीय ऊर्जा पौधोगिकी, अन्तरिक्ष अनुप्रयोग और नैनो प्रौधोगिकी आदि का उपयोग करके भूमि और जल की प्रति यूनिट उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होती है। लेकिन भारतीय किसान इन सभी तकनिको के अभाव से अपनी उत्पादकता को नही बढ़ा पाता भारत मे भी कृषि औधोगिक तकनिको पर विकसित करने पर ध्यान देना होगा।

क्षरित भूमि को संरक्षित करने के प्रबन्धन का अभाव :-

भारत में क्षारित भूमि जैसे अपरदित भूमि (जल, हवा), लवणीय एवं क्षारीय भूमि, जल अभाव के प्रभावित भूमि, बीहड भूमि, खनन कार्य गतिविधियो से प्रभावित भूमि को सुधार कर खेती योग्य बनाने की गतिविधियो व तकनिको का अभाव

पाया जाता है। इसके कारण उत्पादन और उत्पादकता का स्तर गिरता जा रहा है। साथ ही खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल कम होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में क्षारित भूमि को संरक्षित करके खेती योग्य भूमि का रकबा बरकरार रखा जान सकेगा। वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते है कि कृषि प्रबन्धन का सबसे अहम हिस्सा क्षारित भूमि को संरक्षित करना है। भूमि संरक्षण मिशन के जरिए जिला स्तर पर भूमि सुधार की योजनाएँ बनाई जा रही है और मृदा संरक्षण की दिशा में भी काम हो रहा है, लेकिन ये प्रयास बढ़ती जनसंख्या वृद्वि के आगे बहुत कम है।

उन्नत किस्म के बीजो का अभाव :-

अधिक उपज के लिए अच्छी भूमि, पर्याप्त वर्षा या सिंचाई व्यवस्था के साथ-साथ अन्य कृषि आदानों की आवश्यकता रहती हैं। कृषि आदानो में गुणवता युक्त बीज बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। प्रत्येक हर किसान फसल की अच्छी उत्पादकता प्राप्त करना चाहता है कि वह यह भी चाहता है कि अच्छा बीज उपयोग में ले लेकिन जानकारी के अभाव में वह ज्यादा कीमत देना भी उन्नत बीज प्राप्त नही कर पाता और इस कारण से में किसान ज्यादा मेहनत करने के बाद भी अच्छी आय प्राप्त नही का पाता।

उन्नत किस्म के बीजो का उपयोग करने से उपज अधिक होती है। बीज की अंकुरण क्षमता अधिक होती है। कम सिंचाई कम उर्वरको की आवश्यकता होती है। अगर किसान इन उन्नत किस्म के बीजों का उपयोग सही ढंग से करे तो वह अच्छी फसलीय उत्पादकता को बढ़ा सकता है।

बीज उपचार करने की तकनिको का अभाव :-

उन्नत किस्म के बीजो को किसान ले तो आता है लेकिन वो जानकारी के अभाव अशिक्षा के कारण इन बीजो को सही तरह से उपचारित किए बगैर ही खेत में बौ देता है और खामियाजा किसान को ही भुगतना पड़ता है या तो बीज अंकुरण क्षमता कम होती या फिर फसल में कीट प्रतिरोधक क्षमता में कमी आ जाती है। और इस कारण फसल उत्पादन कम हो जाती है।

कुरूक्षेत्र 2011 जुलाई, फसल उत्पादन के साथ मधुमक्खी पालन/पशुपालन को नही जोड़ पाना :-

किसान बेहतर कृषि प्रबन्ध के जरिए मिट्टी से सोना पैदा कर सकता है। लेकिन साथ में पशुपालन और मधुमक्खी पालन को भी जोडा जाए तो हम फसल उत्पादन शहद उत्पादन और डेयरी उत्पादन बढ़ा कर किसान अपनी आय में वृद्धि कर सकता है। मधु मक्खियो के कारण परागण की प्रक्रिया तेज होने से फल जल्दी लगते है। और मधुमक्खी पालन होने से शहद ज्यादा मिलता है। यानी कम लागत में अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। इसी प्रकार पशुपालन के द्वारा जैविक खाद प्राप्त कर के कृषि उत्पादन को बढ़ा सकते है। साथ ही पशुपालन में आवश्यक चारा कृषि से उपलब्ध हो सकता है। पशुपालन में प्राप्त डेयरी उत्पादन से भी किसान अपनी आय में वृद्धि कर सकता है।

लेकिन जागरूकता की कमी, निर्वय शिथिलता और बहता प्रबन्ध के अभाव के कारण यह सम्भव नही हो पाता, अगर किसान इन तकनिको को अपना ले तो वो दोहरा लाभ कमा सकता है।

दूर संचार तकनिको का अभाव :-

सूचना प्रौधोगिकी से देश-विदेशो में कृषि परिदृश्य में तेजी से बदलाव आ रहे है। लेकिन किसान के पास धन अभाव होने के कारण शिक्षा, अभाव के कारण, जागरूकता के अभाव में, मौसम सम्बन्धित जानकारी, बदलते पर्यावरण परिदृश्यो/मौसम के कारण एवं साधारण, अशिक्षित किसान यह नही समझ पाता कि वो किस तरह कम लागत, कम मेहनत में अच्छा उत्पादन कर अपनी आय में वृद्वि कर सके।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव :-

जलवायु परिवर्तन से एशिया पैसिफिक देशो में खास कर व सीधा किसानो पर असर पड़ सकता है इसके चलते

दक्षिण भारत में 2030 के दशक तक चावल की पैदावर 5 प्रतिशत की कम हो सकती है। एशियन डेवलपमैंट बंक (ADB) और पोट्सडेम इस्टीट्यूट फार क्लाइमेट इम्पैक्ट रिसर्च (PIK) ने रिपोर्ट जारी की है। उसके अनुसार एशियाई क्षेत्रों में बाढ़ तुफान का खतरा रहेगा। ये घटनाएँ भारत में दक्षिण भाग पर बुरा असर डालेगी।

दक्षिणी सदन इंडिया में चावल की पैदावार 2030 वे दशक तक 5 प्रतिशत 2050 तक 14.5 प्रतिशत 2080 तक 17प्रतिशत की कमी आ जाऐगी। गेहूँ का उत्पादन भी 8 प्रतिशत तक कम हो जाऐगा। लगभग 7 करोड लोग भारत में आने वाले पर्यावरणीय खतरो से जुडते हुए नजर आऐंगे। और भारतीय सीधे–साधे किसानो की हालत को और बिगाड़ देंगे। संक्षेप में कहा जाए तो बेहतर कृषि प्रबन्धन के लिए किसानो को मौसम के अनुरूप खेती के तौर तरीको, खाली पडी अनुपजाउ भूमि को उपजाउ बनाने, एवं किसानो को अद्यौगिक खेती व औषधीय खेती का व्यापक प्रशिक्षण दिया जाए साथ ही किसान कॉल सेंन्टर व कृषि चैनल व बैंक साख की आसान उपलब्धता जलवायु परिवर्तन के अनुसार कृषि को बढ़ावा देना और कृषि शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय व कृषि विभाग की ओर से गॉव–गॉव में जाकर प्रशिक्षण व जानकारी देनी होगी और जागृती बढ़ानी होगी।

ट्रासजैविक कृषि प्रणाली का अभाव :–

भारत जैसे देश में जहॉ किसानो के पास बीज, खाद, खरिदने के लिए पैसा नही है, ऐसे देश में ट्रासजैविक फसली प्रणाली के बारे में सोचना और बताना और सबको जानकारी देना असम्भव सा कार्य लगता है। आज गोल्डन राइप, बी. टी कपास क्रोमो लोम, सुपर राइफ, शक्तिमान कोई ट्रांसजैविक फसलो के बाजार में उपलब्ध है और इनमे उपयोग से दुष्कर व अनुपलाऊ प्रकति के जलवायु प्रदेशो में भी फसल पैदा की जा सकती है। फसल पैदावार भी विटामीन और प्रोटीन से भरपूर होती है। जैव रोगी व कीटो के प्रति जबरदस्त रोग प्रतिरोधकता होती है।

क्योकि भारतीय तकनिक अन्य देशो से पिछडे होने कारण व पेटेन्ट व्यवस्था के कारण भारतीयो के लिए ये बीज बहुत मंहगे होते है, और फिर मानसुन अनिश्चिता के चलते नुकसान होता है तो भारी नुकसान में बदल जाता है। जब तक किसानो को आर्थिक रूप से शैक्षिक रूप से मजबूत नही बनाया जाऐगा तो भारत का किसान समस्याओ से घिरा ही नजर आऐगा।

समस्याएँ :–

1. कृषि शिक्षा का अभाव।
2. उचित भूमि प्रबन्धन का अभाव।
3. सरल साख प्रबन्धन का अभाव।
4. उन्नत तकनिक सिंचाई व्यवस्था का अभाव।
5. बढते रासायनिक उवर्रको के इस्तेमाल का दुष्प्रभाव।
6. नई प्रोधोगिकी तकनिक का अभाव।
7. क्षरित भूमि को संरक्षित करने के प्रबन्धन का अभाव।
8. उन्नत किस्म के बीजो का अभाव।
9. बीज उपचारित करने में तकनिक का अभाव।
10. फसल उत्पादन के साथ पशुपालन व मधुमक्खी पालना को नही जोड़ पाना।
11. दूरसंचार तकनिको का अभाव।
12. मौसम परिवर्तन का प्रभाव।
13. ट्रांसजैविक कृषि प्रणाली का अभाव।

जल संकट के विविध आयाम है जिनमें भौतिक आर्थिक एवं पर्यावरणीय (जल की गुणवता से सम्बन्धित) आदि प्रमुख है। जनसंख्या का बढ़ता दबाव, बडे पैमाने पर शहरीकरण, बढ़ती आर्थिक गतिविधियॉ, उपभोग की बदलती प्रवृतियॉ, रहन सहन के स्तर में सुधार, जलवायु विविधा, सिंचित कृषि का विस्तार एवं जल की अधिकांश माँग करने वाली फसलो की पैदावार आदि से जल की माँग का दायरा बढा है।

सन् 2001–2016 तक भारत की आर्थिक वृद्धि विकास दर की रफ्तार :–

इस वृद्धि को प्राप्त करने के लिए पूँजी उपभोग के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनो का भी योगदान है। वृद्धि विकास दर प्राप्त करने के लिए उत्पादन व उपभोग दोनों प्रक्रिया को बढ़ना होता है साथ ही वस्तु और सेवाओ से भी पर्यावरण प्रदुषण बढ़ता जाता है। और परिणाम स्वरूप पर्यावरण क्षरण होता है।

दूसरे शब्दो में कहे तो विकास की वृद्धि दर पर्यावरण की कीमत पर मिल रही हैं। प्राकृतिक संसाधन जैसे पानी के योगदान को सकल घरेलू उत्पादन में जोडा नही जाता और इस प्रकार दीर्घ कालीन अवधि में उच्च आर्थिक वृद्धि दर हासिल करने की क्षमताऍ और आर्थिक विकास की वृद्धि दर का बढ़ता ग्राफ समाज पर लोक स्वास्थ्य पर खर्चा बढने से सीमित हो जाता है। जल के उपयोग की बेहतर स्थितियाँ जल क्षेत्र की संस्थागत क्षमताएं एवं बेहतर जल पर्यावरण, जल ढाँचे में निवेश संस्थाओ का निर्माण नीतिगत सुधार आदि से राष्ट्र के आर्थिक विकास में मदद मिलती है। आर्थिक विकास वृद्धि दर जल समस्याओं/प्रबन्धन के समाधान की कोई पूर्व निर्धारित शर्त नही है। जल के आधारभूत ढॉचे में निवेश करने संस्थागत एवं नीतिगत सुधार करके मानव विकास व आर्थिक विकास दर को उच्च किया जा सकता है।

विभिन्न सर्वे से यह तथ्य सामने आता है कि गर्म व शुष्क 300 कटिबन्धिय श्रेत्रो में बड़े स्तर पर जल संग्रहण के उपयोग ने आर्थिक विकास प्राप्त करने में एक मुख्य घटक की भूमिका निभाई है। आज किसी भी गाँव का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ पर पानी की उपलब्धता कितनी है। जिस गॉव या शहर में जल संसाधन उपलब्ध है वहाँ का विकास स्वतः ही निर्धारित हो जाती है।

उच्च जल सुरक्षा, उच्च आबादी घनत्व वाले क्षेत्रो में होती है फिर अधिकांश सिंचित कृषि वाले क्षेत्रो में या फिर दोनो क्षेत्रो में। जैसे– भारत में गंगा यमुना का मैदान जहाँ जल का उपलब्धता अधिक है तो वहाँ पर जल उपयोग प्रतिशत भी ज्यादा है। और जहाँ जल की उपलब्धता कम है वहाँ जल की उपयोग प्रतिशत अधिक हो जाता है लेकिन आर्थिक विकास न के बराबर होता है। जैसे भारत का थार मरूस्थल, लेकिन इस क्षेत्र में भी अगर जल की उपलब्धता बढ़ जाती है, तो विकास की दर भी बढ़ जाती है। जैसे इन्दरा गाँधी नहर, योजना, के पश्चिमी थार/राजस्थान को रेगिस्तान की जगह हरियाली स्थल में बदल दिया है। और पशुपालन व कृषि उत्पादन को बढ़ा दिया है। भारतीय संदर्भ में देखे तो अधिक जनसंख्या ने जल संकट समस्या के रूप को बहुत ही बढ़ा कर दिया है। जल के सर्वाधिक उपयोग के संदर्भ में सिंचित कृषि पर जल संकट का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है। गम्भीर स्थितियॉ में कृषि उत्पादकता में हास था या अनाज न होने की स्थिति में किसानो की आजीविका बुरी तरह प्रभावित होती है, जल संकट ने किसान को विभिन्न प्रकार तथा विभिन्न स्तर पर प्रभावित करती है। साथ ही किसान की अनुकूलन क्षमता, जल की उपलब्धता की स्थितियाँ एवं किसानो में सामाजिक आर्थिक स्थिती पर भी निर्भर करता है।

जो किसान अपनी आय के लिए केवल कृषि पर निर्भर नही रह कर अन्य क्षेत्रो में की कार्य रहते है। वे जल संकट का बेहतर तरिके से सामना कर पाते है। कृषि में आमदनी की कमी का असर अग्रिम और पृष्ठ सम्बन्धो के माध्यम से अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर पड़ता है। जल संकट आप में असंगति पैदा करता है। जिससे निर्मित वस्तु व सेवाओं की माँग में कमी आती है। और–दीर्घकालीन अवधि में यह समान्तर स्तर पर आर्थिक मंदी के रूप में सामने आती हैं।

ऐसी औधोगिक इकाईयों जहाँ पानी की उपलब्धता अनिर्वायता होती है। जैसे–टेक्सटाइल, ब्लीचिंग, डाईंग, लेदर प्रोसेसिंग, फूड प्रोसेसिंग, और बेवरेजेज, पल्प एवं पेपर उद्योग का जल संकट का सर्वाधिक सामना करना पडेगा, सेवा क्षेत्र में सर्वाधिक प्रभाव अतिथ्य क्षेत्र हो रेस्टोरेन्ट चिकित्सा सेवा अस्पताल एवं निर्माण रिपलएस्टेट क्षेत्र पर पड़ेगा।

जल संकट और विकास दर में अनुक्रमानुपाति संबंध निम्न प्रकार होता है। यह संबंध यह बताता है जिस देश में जल संकट ज्यादा है वहॉ की विकास दर स्वतः ही कम है। जल संकट के विविध आयाम है जिनमें भौतिक आर्थिक एवं पर्यावरणीय (जल की गुणवता से सम्बन्धित) आदि प्रमुख है आबादी का बढता दबाव, बडे पैमाने पर शहरीकरण, बढ़ती आर्थिक गतिविधियाँ, उपयोग क बदलती प्रवृतियाँ, रहन सहन के स्तर में सुधार, जलवायु विविधता, सिंचित कृषि का विस्तार एवंज ल की अधिकांश मॉग करने वाली फसलों की पैदावार आदि स`जल की माँग का दायरा बढ़ा है।

सन् 2003–2004 से ही भारत की आर्थिक वृद्वि की :–

इस वृद्वि को प्राप्त करने के लिए पूँजी उपभोग के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनो का भी योगदान है। वृद्वि विकास दर प्राप्त करने के लिए उत्पाद व उपयोग दोनो प्रक्रिया को बढना होता है साथ ही वस्तु और सेवाओं से भी पर्यावरण प्रदुषण बढता जाता है और परिणाम स्वरूप पर्यावरण उपक्षरव होता हैं।

दुसरे शब्दो में कहे तौ विकास की वृद्वि दर पर्यावरण की कीमत पर मिल रही है। प्राकतिक संसाधन जैसे पानी के योगदान को सकल घरेलू उत्पादन में जोड़ा नही जाता और इस प्रकार दीर्घकालीन अवधि में उच्च आर्थिक वृद्वि दर हासिल करने की क्षमताऐ और आर्थिक विकास की वृद्वि दर बढता ग्राफ समाज पर लोक स्वास्थ्य पर खर्चा बढने से सीमित हो जाता है।

जल के उपयोग की बेहतर स्थितियाँ जल क्षेत्र की संस्थागत क्षमताएँ एवं बेहतर, जल पर्यावरण, जल ढाँचे में निवेश संस्थाओं का निर्माण नीतिगत सुधार आदि से राष्ट्र के आर्थिक विकास में मदद मिलती है। आर्थिक विकास वृद्विदर जल समस्याओं/प्रबन्धन के समाधान की कोई पूर्व निर्धारित शर्त नहीं है। जल के आधारभूत ढॉचे में निवेश करने संस्थागत एंव नीतिगत सुधार करके मानव विकास व आर्थिक किवास दर को उच्च किया जा सकता है।

विभिन्न सर्वे से यह तथ्य सामने आता है कि गर्म व शुष्क उष्ण कटिबन्धिय देशो में बडे स्तर पर जल संगृहण के उपयोग ने आर्थिक विकास प्राप्त करने में एक मुख्य घटक की भुमिका निभाई है। आज किसी भी गॉव का विकास इस बात पर निर्भर करता है। की वहाँ पानी की उपलब्धता कितनी है। जिस गावॅ में शहर में जल संसाधन उपलब्ध है, वहॉ का किवास उन्नती स्वत ही निर्धारित हो जाती है। उच्च जल सुरक्षा, उच्च आबादी घनत्व वाले क्षेत्रों में होती है फिर अधिकांश सिंचित कृषि वाले श्रेत्रों में या फिर दोनो क्षेत्रों में।

जैसे– भारत में गंगा यमुना का मैदान जहाँ जल की उपलब्धतां अधिक है तो वहॉ पर जल उपयोग प्रतिशत भी ज्यादा है, और जहॉ जल की उपलब्धता कम है वहॉ जल कीी उपयोग प्रतिशत अधिक हो जाता है लेकिन आर्थिक विकास न के बराबर होता है। जैसे भारत का थार मरूस्थल, लेकिन इस श्रेत्र में भी अगल जल की उपलब्धता बढ़ जाती है, तो विकास की दर भी बढ़ जाती है। जैसे इन्दरा गॉधी नहर, योजना के पश्चिमी थार/राजस्थान को रेगिस्तान की जगह हरियालीस्तान में बदल दिया है। और पशुपालन व कृषि उत्पादन को बढा दिया है।

भारतीय संदर्भ में देखे तो अधिक जनसंख्या ने जल संकट समस्या के रूप को बहुत ही बढा कर दिया है। जल के सर्वाधिक उपयोग के संदर्भ में सिंचित कृषि पर जल संकट का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है। गम्भीर स्थितियॉ में कृषि उत्पादकता में हास था या अनाज न होने की स्थिति में किसानो की आजीविका बुरी तरह प्रभावित होती है। जल संकट ने किसान को विभिन्न प्रकार विभिन्न स्तर पर प्रभावित करती है। साथ ही किसान की अनुकमूल क्षमता, जल की उपलब्धता की स्थितियॉ एवं किसानो में समाजिक आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करता है।

जे किसान अपनी आस के लिए केवल कृषि पर निर्भर नही रहकर अन्य क्षेत्रों में भी कार्य करते है। वे जल संकट का बेहतर तरिके से सामना कर पाते है। कृषि में अपदनी की कमी का असर अग्रिम और पृष्ठ सम्बन्धों में माध्यम से अर्थव्यवस्था मे सभी क्षेत्रों पर पड़ता है।

जल संकट आप में असंगति पैदा करता हैं। जिसमें निर्मित वस्तु व सेवाओं की माँग में कमी आती हैं। और दिर्द्यकालीन अवधि में यह समान्तर स्तर पर आर्थिक मंदी के रूप में सामने आती है।

ऐसी औद्योगिक इकाईयॉ जहाँ पानी की उपलब्धता अनिर्वायता होती है। जैसे–टेक्सटाइल ब्लीचिंग, डाईग लेद प्रोसेसिंग फूड प्रोसेसिंग, और बेवरेजेज, पल्प एवं पेपर उद्योग को जल संकट का सर्वाधिक सामना करना पडेगा, सेवा क्षेत्र में सर्वाधिक प्रभाव अतिथ्या क्षेत्र घरेलू रेस्टोरेन्ट चिकित्सा सेवा अस्पताल एवं निर्माण/रिपलएस्टेट क्षेत्र पर पड़ेगा।

REFERENCES :-

1. Beintema, N., Adhiguru, P., Birthal, P.S. and Bawa, A.K. 2008. Public Agricultural Research Investments : India in a Global Context, NCAP Policy Brief 27, National Centre for Agricultural Economics and Policy Research, New Delhi.
2. Beintema, N.M. and Stads, G.J. 2008. Agricultural R&D Capacity and Investments in the Asia–Pacific Region, Research Brief No. II, IFPRI, Washington D.C., USA, available at: http://www.ifpri.org/sites/default/files/publications/rb11.pdf
3. DAC, 2000. Policy Framework for Agricultural Extension, Department of Agriculture and Co-operation, Ministry of Agriculture, Government of India.
4. DAC, 2010. Guidelines for Modified Support to State Extension Programmes for Extension Reforms Scheme, 2010, available at http://vistar.nic.in/projects/revised_ATMA_Guidelines.pdf
5. Government of India, 2008. National Action Plan on Climate Change, Government of India,June 2008.
6. Government of India, 2011. State of the Economy and Prospects Economic Survey, available at http://exim.indiamart.com/economic-survey10-11/pdfs/echap-01.pdf
7. Jha, D. and Kumar, S. 2006. Research resource allocation in Indian agriculture, Policy Paper 23. New Delhi: National Centre for Agricultural Economics and Policy Research. Ministry of Agriculture, Govt. of India, 2012.
8. Ministerial Reply on Over 4,500 posts of agricultural scientists vacant in the Indian Parliament as Reported by the Times of India, Web Source: TNN | Dec 19, 2012, 03.41AM IST.
9. National Commission on Farmers, 2006, report available at http://agricoop.nic.in/NCF/NCF%20Report%20-%203.pdf
10. NSSO, 2005. Situation Assessment survey of farmers: Access to modern technology for farming, National Sample Survey, 59th round (January- December 2003). Report 499 (59/33/2). New Delhi: Government of India, Ministry of Statistics and Programme Implementation.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 123-125

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वेद पुराण उपनिषद में राष्ट्रीय भावना

–डॉ. राजेन्द्र सिंह बिश्ट

हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कपकोट बागेश्वर (उत्तराखण्ड)

संस्कृत साहित्यकारों की राष्ट्र–चेतना का प्रांजल दर्पण है। वेदों से लेकर वर्तमान काल तक के संस्कृत साहित्य सृष्टाओं ने अपनी जन्मभूमि भारतभूमि तथा अपने देश भारतदेश के प्रति भारतीयों के मनो मन्दिर में प्रेम, आदर और श्रद्धा के जो दीप जलाए हैं, उनके आलोक से इस ग्रन्थ का प्रत्येक पृष्ठ आलोकित है। अपने राष्ट्र की महिमा, गरिमा और मान–मर्यादा की रक्षा–सुरक्षा के सम्बन्ध में हमारे संस्कृत साहित्यकारों ने अपने विविध काव्यों के माध्यम से जो उपदेश दिए हैं। जो सन्देश सुनाए हैं। राष्ट्र के हित में राष्ट्रभक्त शूर–वीर नर नारियों द्वारा किए गए शौर्यपूर्ण आत्मबलिदानों की जो रोमांचक कथाएँ कही हैं। भारत और भारतीयता के अतीत एवं वर्तमान की जो हृदयावर्जक झाँकी सजाई है। भविष्य की जो आशापूर्ण परिकल्पनाएँ की हैं। उन सबका मर्मस्पर्शी सारसर्वस्व इस ग्रन्थ में मधुमक्षिकान्याय से प्रस्तुत किया गया है। फलस्वरूप यह ग्रन्थ संस्कृत साहित्यकारों के देशभक्ति से भरपूर राष्ट्रिय भावों के देदीप्यमान बहुमूल्य मोतियों का कोश कहा जा सकता है। जो लोग जननी जैसी अपनी जन्म भूमि भारत भूमि के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं। जिनकी अपने ज्ञान–भारत भारत–देश पर आस्था है। जिनमें अपने राष्ट्र भारतराष्ट्र के प्रति गौरव स्वाभिमान के भाव हैं। जिन के लिए अपने राष्ट्र का मान–सम्मान सर्वोपरि है। जिन्हें अपनी भारतमाता की प्रतिष्ठा की रक्षा–सुरक्षा करते रहने का ध्यान है। जो अपने देश की समृद्धि में लगे हुए हैं। ऐसे सभी महापुरुषों के हृदय को आह्लादित करने वाला प्रस्तुत पत्र संस्कृत–शोध क्षेत्र में एक नये आयाम का उद्घाटन करता है।

युगों युगों से भारत एक राष्ट्र रहा है। वेदों में भी राष्ट्र भावना विद्यमान है। आधुनिक शोध से ज्ञात हुआ है कि भारत के सभी लोगों का गुणसूत्र (DNA) लगभग 40000 वर्षो से एक ही है। माता–पिता व सन्तानों को मिलाकर जैसे परिवार बनता है वैसे ही मातृभूमि, समान पूर्वज, पुत्ररूप समाज, समान संस्कृति से मिलकर एक राष्ट्र बनता है। राष्ट्र यह भावनात्मक कल्पना है, प्राचीन काल से यह भाव देखने को मिलता है वेद, पुराण आदि कई ग्रंथो में इसी भाव का वर्णन मिलता है। इतिहास व पुरातत्व के आधार पर भी कम से कम 8000 वर्षो से तो यह एक राष्ट्र के रूप में विद्यमान है। यह 'नया राष्ट्र' अथवा 'बन रहा राष्ट्र' नहीं है (जैसा 19 सदी के पाश्चात्य विद्ववानों ने तथ्यहीन दुष्प्रचार किया भारत एक राष्ट्र के रूप में विद्यमान नहीं था व पुरातन राष्ट्र भी नहीं) भारत एक प्राचीन राष्ट्र है, यहाँ धर्म, जाती व राष्ट्रीयता की दृष्टि से एक जन रहते हैं। यह अनेक राष्ट्रों का समूह (उपमहाद्वीप) भी नहीं है, बल्कि उत्तर से दक्षिण तक एक राष्ट्र था और है।

''उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चौव दक्षिणम्।
वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।'' वि.पु.२.३.१

भारत हिन्दु राष्ट्र है, इस राष्ट्र को बनाने वाले व इसको पहचान देने वाले हिन्दु ही हैं। यहाँ का धर्म, संस्कृति और समाज हिन्दु नाम से परिचित है, दर्शन, जीवन पद्धति भी हिन्दु है। भारत हमारे लिए भूखण्ड मात्र नहीं अपितु

आराध्य देव है। नदियों, पर्वतों, पेड–पौधों, पशुओं आदि की ओर देखने का हिन्दु समाज का समान दृष्टिकोण सभी पवित्र व पूज्य हैं। जीवनादर्शों 'स्त्री, धन, अतिथि, त्यागी पुरुष आदि' के प्रति समान दृष्टिकोण रखने वाले व इस दर्शन को मानने वाला समाज हिन्दु कहलाया।

''हिमालयद् समारभ्य यावदिन्दु सरोवरम्।
तं देव निर्मितं देशं हिन्दुस्थानं प्रचक्ष्यते।'' –बार्हस्पत्य शास्त्र

स्वामी विवेकानन्द ने भी दुनिया को इसी दर्शन का सन्देश दिया। हिन्दु ही इस राष्ट्र की पहचान है। विविधता होने पर भी यह एकात्म प्राचीन हिन्दु राष्ट्र है।

वेदों से आरम्भ हुई राष्ट्रीय भावना पुराणों में उच्चतम स्थान पर पहुंची। भारतीय संदर्भ में वेद और पुराण राष्ट्रीय भावना के प्रेरणापुंज कहे जा सकते हैं। आजादी के बाद के कालखण्ड में संस्कृत साहित्य में महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस, पं. नेहरू, सरदार पटेल, लोकमान्य तिलक, चंद्रशेखर आजाद, वीर सावरकर सरीखे भारत के महान सपूतों की गौरव गाथा का वर्णन मिलता है। विद्वानों का मत था कि भारतीय जनमानस प्राचीन भारत की संस्कृति और परंपराओं के प्रति जाग्रत है।

राष्ट्रीयता की अवधारणा वैदिक साहित्य से ही मिलने लगती है। वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः (ऋग्वेद 9/23) अथवा माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (अथर्व. 12/1/12) जैसे मंत्र राष्ट्रीयता की ही अभिव्यक्ति हैं। वाल्मीकि रामायण का जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' एवं श्रीमद्भागवत का अहो भुवः सप्त समुद्र वत्या द्वीपेषु, वर्षेहवधि पुण्यमेतत् राष्ट्र के प्रति राग भाव को ही व्यक्त करते हैं। एक निश्चित भू–भाग के प्रति मातृभाव, उसके विविध प्राकृतिक परिवेश से साहचर्य के कारण उत्पन्न अपनत्व की भावना तथा उसमें निवास करने वाले लोगों की एकता, सुरक्षा एवं समृद्धि की आकांक्षा से ही उस भावभूमि का निर्माण होता है जिसे राष्ट्रीयता की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। राष्ट्रीयता की यह भावना किसी भी रूप में संकुचित नहीं होती और इसका निर्माण उन सांस्कृतिक मूल्यों से होता है जो उस भू–भाग में निवास करने वाले लोगों की जीवन पद्धति का हिस्सा होते हैं। इस राष्ट्रीयता का आधार अपने लोगों के प्रति विशुद्ध रागात्मक भाव होता है न कि दूसरों के प्रति अनात्म भाव। आचार्य शुक्ल ने इसे ही देशबद्ध मनुष्यत्व के अनुभव की संज्ञा दी है और इस अनुभव को देशप्रेम से जोड़ा है।

उन्होंने देशप्रेम को प्रेम का ही एक रूप माना है– 'देशप्रेम' है क्या? प्रेम ही तो है। इस प्रेम का आलंबन क्या है? सारा देश अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी, नाले, वन, पर्वत, सहित सारी भूमि। प्रेम किस प्रकार का है? यह प्रेम साहचर्यगत प्रेम है। जिनके बीच हम रहते हैं, जिन्हें बराबर आंखों से देखते हैं, जिनकी बातें बराबर सुनते रहते हैं, जिनका हमारा हर घड़ी का साथ रहता है, सारांश यह है कि जिनके सान्निध्य का हमें अभ्यास पड़ जाता है, उनके प्रति लोभ या राग हो जाता है। देशप्रेम यदि वास्तव में अन्तःकरण का कोई भाव है तो यही हो सकता है। भारतीय साहित्य में 'सर्वं खल्विदं ब्राह्म' 'वासुदेव सर्वमिति' 'सर्वभूतेषु' की सर्वत्र अभिव्यक्ति है अतः दूसरों के प्रति अनात्म भाव का प्रश्न ही नहीं उठता। यहां समाज का विभाजन 'विलीवर्स' और 'नान विलीवर्स' या 'मोमिन' या 'काफिर' के रूप में अथवा 'सर्वहारा' और 'बुर्जुआ' के रूप में नहीं किया गया है। अतः यदि रचनाकार राष्ट्रीयता को साहित्य–सृजन के लिए उपजीव्य के रूप में ग्रहण करता है तो यह कार्य स्तुत्य है। इस राष्ट्रीयता का अधिष्ठान सांस्कृतिक है, राजनीतिक नहीं। जो राष्ट्रीयता को 'नेशन स्टेट' की अवधारणा से जोड़ते हैं और उसकी तुलना पश्चिम के राष्ट्रवाद से करते हैं, वे केवल पश्चिम के चश्मे से ही चीजों को देखते हैं। छायावाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पंत का यह कहना युक्तियुक्त है कि हमारा विशाल देश राष्ट्र की भावना या कल्पना से वैदिक युग से परिचित रहा है।

साहित्य मानव जाति की अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसने मनुष्य की रुचि को परिष्कृत किया है, उसकी

संवेदना को तीव्र किया है, उसे कल्पनाशील और अनुभूति–प्रवण बनाया है तथा अपने स्व का विस्तार करके उसे वृहत्तर समाज के प्रति समर्पित होना भी सिखाया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता के आधार पर कहें तो कविता (साहित्य) मनुष्य के हृदय को स्वार्थ–सम्बंधों के संकुचित मण्डलों से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भावभूमि पर ले जाता है, जहां जगत की विभिन्न गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। साहित्य के स्वरूप एवं प्रयोजन पर साहित्य–सर्जना के साथ ही चर्चा होती रही है। समष्टि के कल्याण की कामना साहित्य का लक्ष्य बताया गया है। भागवतकार ने अपनी रचना के माध्यम से चराचर जगत में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा की है।

गोस्वामी तुलसीदास सारे जगत को 'सीय राममय' देखते हैं, जायसी 'मानुषी प्रेम' को 'वैकुण्ठी प्रेम' में पर्यवसित हो जाने को अंतिम लक्ष्य मानते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार साहित्य का काम है ह्मदय का योग कराना, जहां योग कराना ही अन्तिम लक्ष्य है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार सारे मानव समाज को सुन्दर बनाने की साधना का ही नाम साहित्य है। वे साहित्य को ऐन्द्रिय संतुष्टि का ही साधन मानने से इन्कार करते हैं और मनुष्य को पशु सामान्य वृत्ति से ऊपर उठाना साहित्य का लक्ष्य मानते हैं। समूची मनुष्यता जिससे लाभान्वित हो, एक जाति दूसरी जाति से घृणा न करके प्रेम करे, एक समूह दूसरे समूह को दूर न रखकर पास लाने का प्रयत्न करे, कोई किसी का आश्रित न हो, कोई किसी का मोहताज न हो, कोई किसी से वंचित न हो, इस महान उद्देश्य से ही साहित्य प्रणोदित (प्रेरित) होना चाहिए। प्रत्येक देश का साहित्य अपने देश की भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थिति से सम्बद्ध होता है। साहित्यकार अपने देश की अतीत से प्राप्त विरासत पर गर्व करता है, वर्तमान का मूल्यांकन करता है और भविष्य के लिए सपने बुनता है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि वह राष्ट्रीय आकांक्षाओं से परिचालित होता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर यद्यपि साहित्य के वैश्विक संदर्भ को वरीयता देते हैं, पर देशात्म बोध को भी कम महत्वपूर्ण नहीं मानते। वे लिखते हैं– 'प्रत्येक देश का साहित्य मुख्यतः अपने पाठकों के लिए होता है, किंतु उसके भीतर हम उस स्वाभाविक दाक्षिण्य की प्रत्याशा करते हैं, जिससे वह दूर पास के सभी अतिथियों के लिए भी आसन जुटा पाता है। जिस साहित्य में वह आसन बिछा हुआ है, वही साहित्य महत साहित्य है, सभी युगों के मनुष्य उस साहित्य का स्थायित्व सुनिश्चित करते हैं, उसकी प्रतिष्ठा भित्ति सभी मानवों के चित्त जगत में है।' रवीन्द्रनाथ ठाकुर देशप्रेम के नाम पर किये जाने वाले दिखावे की भर्त्सना करते हैं, पर साहित्य में देशप्रेम की व्यंजना को महत्वपूर्ण बताते हैं– 'वर्तमान समय में यदि कहा जाए कि देश में देश के लिए भाषण दो, तर्क करो, तब यह बात सभी लोग अत्यन्त सहजता से समझ सकेंगे, किन्तु यदि कहा जाए 'देश को जानो और उसके बाद स्वयं अपने हाथों से यथासाध्य देश की सेवा करो' तब देखता हूं कि इसका अर्थ समझने में लोगों को विशेष कष्ट होता है।'

संदर्भ संकेत :

1. वि.पु.२.३.१
2. बार्हस्पत्य शास्त्र
3. ऋग्वेद 9/23
4. अथर्व. 12/1/12

rajubisht1974@gmail.com

मो0 – 9412909681

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha **ISSN : 2395-7115**
February 2021 Page No. : 126-130

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और ईश्वरचंद्र विद्यासागर

–इबरार खान, शोधार्थी (पी.एच.डी.),
कल्याणी विश्वविद्यालय, HL. 34, BL.NO. 13, आर्यसमाज, कांकिनाड़ा, उत्तर 24 परगना, पश्चिम बंगाल।

शिक्षा का अर्थ केवल वर्णों और शब्दों को पहचानना, उसका उच्चारण करना या उसके लिखने की कला नहीं होती और न ही डॉक्टर, इंजिनियर, साइंटिस्ट, शिक्षक आदि बनना ही उसका उद्देश्य मात्र होता है। बल्कि शिक्षा वह माध्यम है जो मानव को उसके मानव होने की पहचान देती है, मानव समाज और जंगल राज का फर्क बताती है। शिक्षा वह आदर्श है जो व्यक्ति को 'मैं' के बजाय 'हम' का पाठ पढ़ाती है। और यह 'हम' शब्द केवल मानव, समाज, देश या सम्पूर्ण मानव जाती तक ही सिमित नहीं होता, अपितु इस 'हम' शब्द में किसी भी प्रकार के भेद–भाव से रहित सम्पूर्ण सृष्टि समाहित होती है, जो विविधता और बहुलतावाद की विशेषता वाले विश्व में एक साथ मिलकर रहने की सिख देती है। शिक्षा का यह व्यापक अर्थ एवं आदर्श स्वरूप ईश्वरचंद्र विद्यासागर के व्यक्तित्व में बखूबी परिलक्षित होता है। जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी न केवल अपने अध्यापक होने की गरिमा की रक्षा की, बल्कि विभिन्न दबाओं से जूझते हुए कभी अपने आदर्शों एवं कर्तव्य के साथ समझौता नहीं किया। तत्कालीन सिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु कई अतिमहत्वपूर्ण, आवश्यक एवं सफल कदम उठाये, पारंपरिक लिक से हट कर शिक्षा व्यवस्था को नई दिशा दी। शिक्षा ग्रहण के सिमित दायरों को तोड़ कर सर्व साधारण का अधिकार माना।

यही वजह है की उन्हें विद्या का सागर कहा गया। परन्तु वर्त्तमान समय के शिक्षा व्यवस्था पर नजर डाले तो हम पाते हैं कि आज शिक्षा का व्यवसायीकरण हो रहा है, शिक्षा का उद्देश्य अर्थोपार्जन मात्र रह गया है, भाषा जो शिक्षा का माध्यम मात्र थी, आज वह उसका दायरा बन गयी है। शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य शिक्षा का प्रचार प्रसार नहीं बल्कि राजनितिक उल्लू सीधा करने का एक जरिया बन गया है, जिसका मकसद देश को साक्षर बनाना नहीं बल्कि देश को साक्षर दिखाना है। ऐसे वर्त्तमान शिक्षा व्यवस्था को ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे अध्यापक, उनके आदर्शों एवं उनकी शिक्षा निति की अत्यन्य आवश्यकता है।

प्राचीन भारत में शिक्षा की एक सतत् धारा युगों से बहती चली आ रही थी, जिसने जीवन और साहित्य को लगातार प्रभावित किया। जिस समय भारत में शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी, उस समय संस्कृत शिक्षा का माध्यम थी ना की दायरा। छात्रों को वैदिक ग्रंथों सहित व्याकरण, कानून और दर्शन इत्यादि की भी शिक्षा दी जाती थी, जिसका उद्देश्य उन्हें केवल थोथा ज्ञान देना, पदवी पाना या अर्थोपार्जान आदि नहीं बल्कि परिवर्तनशील समाज में सक्रिय भागीदारी हेतु सशक्त बनाना था। यही वजह है कि प्राच्यवादी विद्वान भी इस शिक्षा व्यवस्था के प्रसंशक रहे हैं एवं वेदान्त को भारत की प्रतिभा की एक अनोखी अभिव्यक्ति के रूप में देखा है।

तत्कालीन एशियाटिक सोसाइटी के अध्यक्ष श्रीमान विलियम जोंस के अनुसार– "संस्कृत भाषा जितनी भी प्राचीन रही हो, उसकी संरचना अद्भूत है, वह ग्रीक से अधिक परिपूर्ण, लैटिन से अधिक प्रचुर और इन दोनों से अधिक उत्कृष्ट रूप से परिष्कृत है।" अधकारी संतोष कुमार, विद्यासागर एंड दा रिजेनेरेसन ऑफ बंगाल, सुवर्णरेखा प्रकाशन, कलकत्ता

1980, पृष्ठ संख्या 24., अर्थात उस समय शिक्षा का उद्देश्य सत्य की खोज एवं जीवन का सौन्दर्य था। शिक्षक का जीवन एक तपस्वी के सामान था जिसे न तो धन का मोह था न पद की लालसा थी तो बस शिक्षा के आदान प्रदान के माध्यम से एक स्वस्थ एवं प्रगतिशील समाज की कामना। "ऐसा कहा जाता है कि केवल ब्राह्मणों को ही संस्कृत की विद्याओं का अध्ययन करने का अधिकार था, लेकिन छन्दोग्य उपनिषद में दिए गए प्रवचनों से पता चलता है कि कोई भी व्यक्ति भले ही उसका जन्म कहीं भी हुआ हो, उसे यह अधिकार प्राप्त है, बशर्ते वह सच्चा हो और उसे ज्ञान की असली प्यास हो।" अधकारी संतोष कुमार, विद्यासागर एंड दा रिजेनेरेसन ऑफ बंगाल, सुवर्णरेखा प्रकाशन, कलकत्ता 1980, पृष्ठ संखुया 24.

परन्तु धीरे–धीरे शिक्षा की यह व्यापक विचारधारा, जाती, धर्म, भाषा एवं भौगोलिक सीमाओं आदि में लगातार संकीर्ण, स्थिर और रुढ़िवादी होती चली गयी। यही वजह है कि विद्यासागर ने घ्फ. जे. मौअत को लिखे एक खत में लिखा था– "भारतीय पढ़े–लिखे लोगो से यूरोपीय अग्रिम विज्ञान को अपनाने के लिए राजी करना एक निराशाजंक कार्य प्रतीत होता है। (It appears to be a hopeless task to conciliate the learned of India to the acceptance of the advancing science of Europe-)" पृष्ठ संख्या– 28, कहने को वर्त्तमान में पहले के मुकाबले शिक्षा का प्रचार प्रसार कई ज्यादा हुआ है, स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटीज, इंस्टीटिउट्स आदि की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। परन्तु यह केवल संख्यायिक वृद्धि और शिक्षा के महत्त्व का ह्रास है। इन शिक्षण संस्थानों से निकलने वाले विद्यार्थी किसी कंपनी से बन कर निकलने वाले प्रोडक्ट की तरह हैं जिसमें सभी को एक ही तरह के अकार, स्वाद और रंग–रूप में ढाल कर एक जैसे रैपिंग में सजाकर, बाजार में अर्थोपार्जन के लिए उतार दिया जाता है। तो ऐसे में ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे व्यक्ति के आदर्शों की वर्त्मान शिक्षा व्यवस्था को सख्त जरुरत महसूस होती है।

यदि वर्त्मान समय की शिक्षा व्यवस्था की बात की जाय तो यह कहना गलत नहीं होगा कि शिक्षा का प्रचार प्रसार तीब्र गति से होता हुआ नजर आता है। शिक्षण संस्थानों की संख्याओं में लगातार वृद्धि होती दिखाई देती है। यदि केवल 2011 से 2017 तक के आंकड़ों पर नजर डाले तो शिक्षण संस्थानों की विकास गति की तीब्रता स्पष्ट दिखाई देती है। जैसा कि 'अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण' (ALL INDIA SURVEY OF HIGHER EDUCATION) के 2011–12 के रिपोर्ट के अनुसार, उस समय "भारत में 642 विश्वविद्यालय, 34908 महाविद्यालय थें।"ख आल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन 2011–12 (प्रोविस्नल), गवर्मेंट ऑफ इंडिया, एम. एच. आर. डी., डिपार्टमेंट ऑफ हायर एजुकेशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या–4/11, वहीँ वर्ष 2016–17 के रिपोर्ट के अनुसार यह संख्या बढ़ कर "864 विश्वविद्यालय और 40026 महाविद्यालय" आल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन 2016–17 (प्रोविस्नल), गवर्मेंट ऑफइंडिया, एम्. एच. आर. डी., डिपार्टमेंट ऑफ हायर एजुकेशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या–4/50 हो गयी। तो साधारण सी बात है कि इस दौरान विद्यार्थियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। परन्तु इस विकास के दुसरे पहलु पर नजर डाले तो परिस्थितियां बिलकुल विपरीत नजर आती है।

हमारी शिक्षा व्यवस्था ऐसी है कि विद्यार्थी जैसे जैसे उच्च शिक्षा की और बढ़ता है विद्यार्थियों के एक बड़े हिस्से के लिए शिक्षा अर्जित करने के रास्ते बंद होते चले जाते हैं। जैसे कि देश भर में महविद्यालयों से लाखों की संख्या में विद्यार्थी स्नातक (ग्रेजुएशन) की उपाधि प्राप्त कर के निकलते हैं, परन्तु उनमे से बेहद कम प्रतिशत विद्यार्थियों को ही एम्. ए. में दाखिला मिल पाता है और शेष का सफर वहीं अंजाम पा जाता है। इसी प्रकार प्रतेक वर्ष एक विश्वविद्यालय से सैकड़ों की संख्या में स्नातकोत्तर की उपाधि विद्यार्थी प्राप्त करते हैं और उनमे से केवल कुछ का दाखिला एम. फिल. में हो पाता है और उससे भी कई कम पीएच. डी. तक पहुँच पाते हैं और बाकियों का शिक्षा का सफर खत्म होता जाता है। यानी प्रत्येक वर्ष करोड़ों की संख्या में विद्यार्थियों का सफर शुरू होता है और जैसे जैसे वो उच्च शिक्षा की और बढ़ते

हैं, वह करोड़ों की संख्या, हजारों और सैंकड़ों में तब्दील होती चली जाती है। जैसा कि आल इंडिया सर्वे ऑन हायेर एजुकेशन 2016–17 के रिपोर्ट के अनुसार– " देश भर में दाखिला लेने वाले कुल विद्यार्थियों में 79.39: विद्यार्थियों ने अंडर ग्रेजुएट, पोस्ट ग्रेजुएशन में 11.2 प्रतिशत और एम.फिल., पीएच.डी. में 0.5 प्रतिशत विद्यार्थियों का दाखिला हुआ।" आल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन 2016–17 (प्रोविस्नल), गवर्मेंट ऑफइंडिया, एम. एच. आर. डी., डिपार्टमेंट ऑफ हायर एजुकेशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या–11/50

अर्थार्त हमारी शिक्षा व्यवस्था यह पहले से ही तय कर के चलती है कि, करोड़ों में से चंद लोग ही उच्चतम शिक्षा को प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे शिक्षा व्यवस्था रोजगार का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। देश भर में ऐसे बेरोजगारों की एक बहुत बड़ी जमात है जिन्होंने स्नातक एवं स्नातकोत्तर की उपाधि हासिल कर राखी है। यहाँ तक कि पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त किये हुए डोक्टरेट बेरोजगारों की संख्या भी कम नहीं है। अर्थात् हमारी शिक्षा व्यवस्था बहुत समृद्ध और विकासशील है परन्तु ना तो उसकी कोई दिशा है, न कोई मंजिल और न कोई आधार, वह महज एक खानापूर्ति मात्र है जिसका उद्देश्य केवल देश को साक्षर दिखाना है।

अब यदि विद्यासागर की शिक्षा नीति की और ध्यान केन्द्रित करे तो हम पाते हैं कि उनके लिए शिक्षा का अर्थ अक्षरों को पढ़ना और लिखना नहीं बल्कि शिक्षा का सम्बन्ध आपके व्यक्तित्व के विकास और समाज कल्याण से जुड़ा हुई थी। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि युवकों को पूर्ण शिक्षा प्राप्त हो जिससे देश में ज्ञान का प्रसार हो सके। इसके लिए उन्होंने योजना बनाई और तदनुसार कार्य आरम्भ किया। वह मानते थें कि विधा प्रसार के लिए शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना, उनका सुसंचालन इस योजना का बहुत महत्वपूर्ण पक्ष है। उन्होंने अपने जीवन में कभी धन को महत्त्व नहीं दिया यहाँ तक कि जब वे 50 रूपए महीने पर कार्यरत थें और बड़ी मुश्किलों से गुजारा करते थें वैसे में उन्होंने 90 रूपए मासिक की नौकरी को केवल मार्शल साहब से अपने लगाओ के लिए ठुकरा दिया। परन्तु वे शिक्षा और रोजगार के महत्त्व को भली–भाँती समझते थें। यहीं कारण था कि जब वे फोर्ट विलियम कॉलेज में अध्यापक के रूप में कार्यरत थें और कॉलेज में निरिक्षण के उद्देश्य से लार्ड हार्डिंग आयें तो विद्यासागर ने उनसे निवेदन किया कि– "जो लोग संस्कृत कॉलेज की परीक्षाएं पास करते हैं, उन्हें प्रायः बेकार ही रहना पड़ता है। पहले कानून, समिति की परीक्षा पास करने पर संस्कृत के विद्वानों की नियुक्ति 'जज पंडित' के पद पर हुआ करती थी, किन्तु इस समय तो इस और भी ध्यान नहीं दिया जाता। फिर संस्कृत पढ़े–लिखे लोग किस प्रकार अपने जीवन का निर्वाह करे?" हृदय श्री व्यथित, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आशा प्रकाशन, 1973, पृष्ठ संख्या– 25, विद्यासागर का यह प्रयास सफल भी रहा।

"लार्ड हार्डिंग विद्यासागर जी की बातों से अधिक प्रभावित हुए। उन्होंने 1846 ई. में बंगाल में संस्कृत के सौ विद्यालयों को आदेश प्रदान किया। उन्होंने अपने आदेश में इस बात का भी उल्लेख किया कि जो लोग संस्कृत कॉलेज की परीक्षा पास कर चुके हैं, वे ही लोग इन विद्यालयों में अध्यापक के पद पर नियुक्त हो सकेगे। उन्होंने इन विद्यालयों के लिए अध्यापक चयन करने का दायित्व भी मार्शल साहब और विद्यासागर जी के ही सपुर्द किया था।" हृदय श्री व्यथित, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आशा प्रकाशन, 1973, पृष्ठ संख्या– 25, विद्यासागर इस तथ्य से बखूबी वाकिफ थें कि केवल शिक्षण संस्थानों का खुलना काफी नहीं जरुरी है मुश्किल परिस्थितियों में भी उसे कायम रखना। इसी कारण जब कलकत्ता विश्वविद्यालय के अधिवेशनों में जब संस्कृत कॉलेज को उठा देने प्रस्ताव पेश किया गया तो विद्यासागर ने अकेले ही इसका घोर विरोध किया। संस्कृत कॉलेज आज भी कोल्कता में ईश्वरचंद्र विद्यासागर की कीर्ति स्तम्भ के रूप में सहस्त्रों विद्यार्थियों को संस्कृत की शिक्षा दे रहा है।

वर्त्मान समय में शिक्षा में व्यवस्था कम और व्यवसाय ज्यादा दिखाई देता है। प्राथमिक शिक्षा मुफ्त और उच्च शिक्षा के लिए डोनेशन के नाम लाखों करोड़ों का व्यापार चलता है जहाँ मध्यवर्ग का पहुंचना बेहद मुश्किल और निम्न

वर्ग के लिए लगभग असंभव हो जाता है। प्राथमिक एवं उच्च विद्यालयों की हालत और बुरी जहाँ कहने को हर कुछ के लिए मुफ्त सुविधाएं उपलब्ध हैं परन्तु विद्यार्थियों को इसका कोई लाभ नहीं मिल पाता। इन विद्यालयों के शिक्षकों की दशा तो और दयनीय है। उन्हें बच्चों को पढ़ाने के अतिरिक्त ऐसे बहुत से कार्य भी सौपे जाते हैं जिनकी कल्पना कर पाना भी मुश्किल है। लगातार नए–नए विद्यालय, महाविद्यालय आदि खुल रहे है परन्तु आवश्यकता से कई कम शिक्षकों की नियुक्ति होती है। लगभग प्रत्येक विद्यालयों, महाविद्यालयों में कम–ओ–बेश पार्ट टाइम शिक्षक, कॉन्ट्रैकचुअल एवं गेस्ट टीचर्स मौजूद है और विचारनिए बात यह है कि सालों से यह अस्थाई पद पर रह कर बहुत मामूली और अनिश्चित आय पर पुरे लगन से अपनी जिम्मेदारी निभाते हैं। परन्तु उसी काम के जब इन्हें स्थाई पद देने की बात आती है तो ये नाकाबिल माने जाते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि यदि ये काबिल नहीं तो फिर अस्थाई रूप से साल–दर–साल ये उसी जिम्मेदारी को कैसे निभाते आ रहे हैं। आये दिन प्रश्न पत्रों के लीक होने की, नकली डिग्री आदि की घटनाएं होती रहती हैं। विद्यालयों की झूठी प्रतिष्ठा के लिए और विद्यालयों के सीट्स खाली रखने के लिए कमजोर से कमजोर बच्चे को पास कर दिया जाता है। जो स्कूल तो पास कर जाते है पर समाज और जीवन में अपना कोई स्थान नहीं बना पाते। वहीं उच्च शिक्षा के परीक्षाओं में पास न कर पाने के कारण कई बच्चे प्रतेक वर्ष आत्म–हत्या कर लेते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार "वर्ष 2015 में परीक्षा में फैल होने के कारण 2630 विद्यार्थियों ने आतम हत्या की।" एक्सीडेंटल देथ्स एंड सुईसाइड्स इन इंडिया 2015, नेशनल क्राइम रिकार्ड्स ब्यूरो, मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स, पृष्ठ संख्या–201, यह व्यवस्था की कमजोरी है जहाँ विद्यासागर जैसे लोगों उनके आदर्शों की जरुरत है। वह एक कर्तव्यनिष्ठ अध्यापक थें। वे चाहते थें कि जब विद्यार्थी परीक्षा पास करके कार्य क्षेत्र में उतरे तो वह योग्य निकले, इसलिए वह अपने छात्रों की कड़ी परीक्षा लिया करते थें।

एक बार मार्शल साहब ने उनसे कहा था– "यदि आप परीक्षा कुछ सरल करदें तो अच्छा होगा।" ह्रदय श्री व्यथित, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आशा प्रकाशन, 1973, पृष्ठ संख्या– 23, इस पर विद्यासागर जी ने उत्तर दिया– "यह कैसे हो सकता है? परीक्षा को सरल करने से क्या कॉलेज का स्तर गिर नहीं जायेगा? भले ही इसके लिए मुझे पद–त्याग करना पड़े पर मैं कॉलेज के शिक्षा स्तर को निचे नहीं गिरने दूंगा।" ह्रदय श्री व्यथित, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आशा प्रकाशन, 1973, पृष्ठ संख्या– 23, अध्यापक के रूप में उनकी कर्तव्यनिष्ठा और अनुशासन के उदाहरण के तौर पर विद्यासागर के जीवन की एक और घटना को देखा जा सकता है– "एक बार विद्यासागर ने स्कूलों के निरीक्षण की रिपोर्ट पेश की। उस पर डायरेक्टर मिसर यंग साहब ने कहा कि 'इसको ठीक बना कर लिखो, इसका मतलब था कि रिपोर्ट ऐसी लिखो जिसे ऊपर के अफसर समझें कि काम अच्छा हो रहा है। परन्तु विद्यासागर रिपोर्ट में एक अक्षर बदलने को राजी न हुए। अंततः इस्तीफा भेज दिया।" बंधोपाध्याय श्री चंडीचरण, करुणासागर विद्यासगर, विद्यासागर ग्रंथमाला कार्यालय, इलाहाबाद, 1970, पृष्ठ संख्या–24, ब्राह्मण परिवार के होते हुए भी उन्होंने कभी जाति प्रथा का समर्थन नहीं किया और संस्कृत कॉलेज के दरवाजे सबके लिए खोल दिए। उन्होंने सामूहिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा एवं शिक्षा के लिए मात्र भाषा के प्रयोग का समर्थन किया।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षत हम देखते है की वर्त्तमान में शिक्षा का विकास तो हो रहा परन्तु न तो उसकी कोई दिशा है न मंजिल और नाही कोई सामाजिक आधार। वह केवल एक व्यवसाय मात्र रह गया है। देश को साक्षर बनाने के बजाय केवल उसे साक्षर दिखाकर ही व्यवस्था संतुष्ट है। ऐसे में एक स्वस्थ एवं शिक्षित समाज हेतु विद्यासागर की शिक्षा सम्बंधित अवधारणाओं एवं उनके आदर्शों के अनुसरण की सखत जरुरत है।

संदर्भ :-

1. अधिकारी संतोष कुमार, विद्यासागर एंड दा रिजेनेरेसन ऑफ बंगाल, सुवर्णरेखा प्रकाशन, कलकत्ता 1980, पृष्ठ सं 24.
2. अधिकारी संतोष कुमार, विद्यासागर एंड दा रिजेनेरेसन ऑफ बंगाल, सुवर्णरेखा प्रकाशन, कलकत्ता 1980, पृष्ठ सं. 24.
3. पृष्ठ संख्या– 28
4. आल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन 2011–12 (प्रोविस्नल), गवर्मेंट ऑफइंडिया, एम. एच. आर. डी., डिपार्टमेंट ऑफ हायर एजुकेशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या–4/11
5. आल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन 2016–17 (प्रोविस्नल), गवर्मेंट ऑफइंडिया, एम. एच. आर. डी., डिपार्टमेंट ऑफ हायर एजुकेशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या–4/50
6. आल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन 2016–17 (प्रोविस्नल), गवर्मेंट ऑफइंडिया, एम. एच. आर. डी., डिपार्टमेंट ऑफ हायर एजुकेशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या–11/50
7. हृदय श्री व्यथित, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आशा प्रकाशन, 1973, पृष्ठ संख्या– 25
8. हृदय श्री व्यथित, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आशा प्रकाशन, 1973, पृष्ठ संख्या– 25
9. एक्सीडेंटल देथ्स एंड सुईसाइड्स इन इंडिया 2015, नेशनल क्राइम रिकार्ड्स ब्यूरो, मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स, पृष्ठ संख्या–201
10. हृदय श्री व्यथित, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आशा प्रकाशन, 1973, पृष्ठ संख्या– 23
11. हृदय श्री व्यथित, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आशा प्रकाशन, 1973, पृष्ठ संख्या– 23
12. बंधोपाध्याय श्री चंडीचरण, करुणासागर विद्यासगर, विद्यासागर ग्रंथमाला कार्यालय, इलाहाबाद,1970, पृष्ठ संख्या–24

मो. एवं व्हाट्सएप संख्या : 9330392663

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 131-133

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विद्यासागर स्त्री अधिकारों के संरक्षक : पत्र पत्रिकाओं के विशेष सन्दर्भ में

–लिली साह

कलकत्ता विश्वविद्यालय (शोधछात्रा)

मीडिया संचार का ऐसा माध्यम है जिसके जरिए हम समाज में घटित हो रहे किसी भी प्रकार की घटना, शिक्षा, एवं किसी भी प्रकार के विज्ञापन का प्रचार–प्रसार बहुत ही जल्दी एवं आसानी से जनता तक पंहुचा सकते हैं। पहले मीडिया शब्द का प्रयोग केवल प्रिंट मीडिया के रूप में होता था जिसमे समाचार पत्र, प्रपत्र, और पत्रिकाएँ शामिल थीं। संचार के प्रमुख माध्यमों में समाचार पत्र और पत्रिकाएँ अपना स्थान रखती हैं तथा ये जन माध्यम के रूप में भी प्रचलित हैं। यह जनता से जुड़ने का सबसे सस्ता और सुलभ माध्यम है। भारत में सन 1674 में छापे की पहली मशीन आई। भारत का पहला अखबार 'बंगाल गजट' माना जाता है जिसका प्रकाशन 1780 में हुआ तभी से प्रिंट मीडिया का प्रयोग निरंतर होता आ रहा है। पत्र–पत्रिकाओं का प्रयोग लगातार राष्ट्र की उन्नति तथा उसकी गलतियों एवं कमजोरियों को चिन्हित करने के लिए किया जा रहा। मीडिया का लोगो के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है इस कारण रूढ़ियों को अनदेखा करना, मिथकों को बढ़ावा देने का काम पत्र–पत्रिकाएँ नहीं करती। आलेख, सूचनाओं के प्रकाशन द्वारा पत्र–पत्रिकाएँ जन को ज्ञान की सभी शाखाओं (इतिहास, भूगोल, साहित्य, तकनीक, कृषि, शिक्षा, प्रकृति, समाज) से जोड़ने का काम करती हैं। पत्र–पत्रिकाएँ समय समय पर राजनितिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, और शैक्षिक समस्याओं को जन समूह के समक्ष रखती हैं मीडिया समाज को आकार देने तथा उसे मजबूत बनाने का काम करती है। आजादी के दौरान भी बहुत से आन्दोलनों को सफल बनाने त्तथा लोगों को आन्दोलन से जोड़ने में समाचार पत्र और पत्रिकाओं की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

19वी शताब्दी में सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन पर बंगाल के समाचार पत्र और पत्रिकाओं का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसी कारण विद्यासागर ने खुद को अपने समय के पत्र–पत्रिकाओं के साथ जोड़ा। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम एक प्रमुख समाज सुधारक के रूप में लिया जाता है। ये पत्रकार नहीं थे और न ही इन्होंने पत्रकारिता को अपने जीवनयापन के रूप में चुना परन्तु विद्यासागर मीडिया की शक्ति जानते थे। यहीं कारण है कि जब उन्होंने समाज में स्त्रियों की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया तो सबसे पहले उन्होंने पत्र–पत्रिकाओं का सहारा लिया। एक अच्छा और सच्चा पत्रकार वो है जो समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को समझे तथा जनता के बीच जो कमजोरियां है उन्हें पहचान कर उनमे सुधार करने का प्रयत्न करें, और इसे ही विद्यासागर ने अपनाया। विद्यासागर जिन पत्रिकाओं से जुड़े हुए थे उनमें बांग्ला भाषा के 'तत्वबोधिनी पत्रिका', 'सर्वसुखकारी पत्रिका', 'सोमप्रकाश' और अंग्रेजी समाचार पत्र ' Hindu Patriot' के नाम शामिल हैं।

19वीं शताब्दी के शैक्षिक और सामाजिक सुधारों को लाने में समाचार पत्र और पत्रिकाओं की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। विधवा विवाह की स्थापना, बहु विवाह पर रोक, बाल विवाह पर रोक इन सभी सुधारों को आरम्भ करने

के माध्यम के रूप में विद्यासागर मीडिया का सहारा लेते हैं। सामाजिक स्तर पर इतने बड़े सुधार करने के लिए उन्हें ये मालूम था कि यह कठिनाई भरा कार्य है और अगर इसमें सफलता चाहिए तो इसके लिए ऐसे माध्यम की आवश्यकता है जिसका जुड़ाव आम जन के जीवन में काफी गहरा हो। इस कारण जब विधवाओं को समाज में सम्मान के साथ जीवन यापन करने की बात आई तो सबसे पहले उन्होंने बांग्ला भाषा में प्रकाशित होने वाली 'तत्वबोधिनी पत्रिका' को चुना। 'तत्वबोधिनी पत्रिका' एक मासिक पत्रिका थी जिसका प्रकाशन 10 अगस्त 1843 को अक्षय कुमार दत्ता के संपादन में हुआ। पत्रिका का मुख्य उद्देश्य "ब्रह्म ज्ञान विशेष कर वेदों की शिक्षा को संप्रेषित करना"[1] (the principal objectives of the magazine were to communicate Brahma knowledge especially the teachings of the Vedas) था। इस पत्रिका के संपादक मंडल में एक नाम ईश्वरचंद्र विद्यासागर का भी था। इस पत्रिका में जनवरी 1855 ई में 'विधवा विवाह होना उचित की ना–प्रथम प्रस्ताव' नाम से एक आलेख प्रकाशित हुआ। विद्यासागर यह भली–भाँति जानते थे कि अन्धविश्वासी समाज में इसका विरोध किया जाएगा।

अतः उन्होंने शिक्षित वर्ग को तैयार करने के लिए शास्त्रों का उदहारण दिया। "अनेक ग्रंथो के आलोड़न विलोड़न के उपरान्त उन्हें 'परासर संहिता' में विधवा विवाह के पक्ष में प्रमाण प्राप्त हुआ। उसमें स्त्रियों के पुनर्विवाह की व्यवस्था भी दी गयी थी"[2]। इस आलेख के प्रकाशित होते ही बहुत से लोग विद्यासागर के समर्थन में आए और बहुत से लोगो ने उनकी निंदा भी की। अक्टूबर 1855 में ही 'विधवा पुनर्विवाह (द्वितीय प्रस्ताव) इस पत्रिका में प्रकाशित हुआ। उस समय के प्रसिद्ध कवि ईश्वरचंद्र गुप्त ने भी अपनी कविताओं के जरिये विद्यासागर का समर्थन किया उससे प्रभावित होकर विद्यासागर ने तुरंत इन दोनों आलेखों को पुस्तक के रूप में 'hindu widow remarraige' नाम से अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित करवाया। इस पुस्तक का बंगाली समाज में क्या प्रभाव पड़ा इस सन्दर्भ में विद्यासागर कहते हैं –"मुझे विश्वास था कि पुस्तक को संकलित करने में मैंने जो भी प्रयास किया था वो शून्य होगा। लेकिन भाग्यवश लोगो ने इतनी जिम्मेदारी के साथ जवाब दिया कि एक सप्ताह के भीतर ही मेरी पुस्तक की 200 प्रतियाँ बिक गयीं" ।[3]। (I believed that all the effort I had invested in compiling the book would be for nought but as luck would have it] people responded so earnestly to my publication of the book that in a title over a week the first 200 copies were exhausted) इन सबके अलावा विद्यासागर ने हस्ताक्षर अभियान भी चलाया विधवा विवाह के समर्थन में, तत्पश्चात विधवा विवाह को कानूनी मान्यता मिली।

विद्यासागर ने तथा कथित कुलीनों में बहुविवाह की प्रथा को रोकने के विषय में योजना बनाई। जिसके तहत उन्होंने फिर से पत्र–पत्रिकाओं का सहारा लिया। 'बहुविवाह रहित होवा उचित किना' नाम से लेख अगस्त 1871 में प्रकाशित हुआ। 'बहुविवाह' प्रथा के खिलाफ विद्यासागर ने 'सर्वसुखकारी' पत्रिका में जो लिखा उससे प्रभावित होकर पूर्व बंगाल जो अब बांग्लादेश है वहाँ से रासबिहारी मुखर्जी जैसे व्यक्ति इनका समर्थन करने लगे। विद्यासागर ने इस आन्दोलन को चलाने के लिए भी पहले लेख आदि लिखे फिर कुछ प्रपत्रों को प्रकाशित कर उनका वितरण करवाया इस प्रकार जब वातावरण तैयार हो गया तो उन्होंने हस्ताक्षर अभियान आरम्भ किया। "विद्यासागर के प्रयत्न से 21 हजार व्यक्तियों ने बहुविवाह प्रथा के विरोध में निकाले गए पत्रक पर हस्ताक्षर कर दिए।"[4] बहुविवाह के विरुद्ध संघर्ष के लिए विद्यासागर ने जो आन्दोलन आरम्भ किया था उसके लिए उन्होंने अनेक पत्रक प्रकाशित करवाए थें। उन पत्रकों से एक में लिखा था– " स्त्रियाँ अबलायें मानी जाती हैं और इस प्रकार सामजिक ढाँचे ने उन्हें पुरुषों के अधीन कर रखा है।

इसी कारण उन्हें कम सुविधा प्राप्त है ... शक्तिशाली पुरुष समुदाय अपनी प्रसन्नता के अनुसार ही उन पर अत्याचार करता रहता है और उन्हें दबाये रहता है। इससे बचाव का कोई उपाय न देखकर उन्हें यह सब सहन करना पड़ता है।"[5] इससे स्पष्ट है कि वेदों के अध्ययन के कारण विद्यासागर यह जानते थे की स्त्री और पुरुष सामान है दोनों

के अधिकारों में अंतर स्वार्थ के कारण किया गया जा रहा हैं। परन्तु जनता का पूरा सहयोग और प्रमाण के अभाव में विधवा पुनर्विवाह की तरह बहुविवाह कानूनी नियम के रूप में स्थापित न हो सका। ब्रिटिश सरकार ने इसके पक्ष में कोई काम नहीं किया। इसके साथ ही विद्यासागर ने बाल विवाह के विरुद्ध भी 'सर्वसुखकारी' पत्रिका में 1850 में आलेख लिखा। 'सर्वसुखकारी' पत्रिका का प्रथम प्रकाशन अगस्त 1850 को मिताली चटोपाध्याय के संपादन में हुआ। विद्यासागर 'सोमप्रकाश' पत्रिका से भी जुड़े हुए थे यह एक साप्ताहिक पत्रिका थी जिसका प्रकाशन नवम्बर 1858 कलकत्ता से हुआ। ऐसा माना जाता है कि विद्यासागर इस पत्रिका के संस्थापक थे पर स्वास्थ बिगड़ने के कारण उन्होंने इस पत्रिका की जिम्मेदारी पंडित द्वारकानाथ को दे दी।

अतः हम यह देख सकते हैं कि स्त्रियों को समाज में अधिकार दिलाने के लिए विद्यासागर ने सबसे पहले स्त्रियों कि समस्या को समझने की कोशिश कि जिसके तहत उन्हें यह अनुभव हुआ कि स्त्रियों में शिक्षा का अभाव है या फिर यह कहा जा सकता है कि उस समय स्त्रियों के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। तो सबसे पहले स्त्रियों को शिक्षा दिलाने के लिए स्कूल की व्यवस्था की गयी। दूसरे चरण में विद्यासागर ने विधवाओं के पुनर्विवाह को सामाजिक तथा कानूनी मान्यता दिलवाई और तीसरे चरण में उन्होंने जनता का ध्यान बहुविवाह प्रथा और बाल विवाह पर केन्द्रित किया। विधवा पुनर्विवाह को स्थापित करने में इनके बहुमूल्य योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। साथ ही साथ पत्र–पत्रिकाओं द्वारा सामजिक पुननिर्माण का जो प्रयास किया गया उसे भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। तकनिकी विकास के कारण मीडिया अब केवल प्रिंट मीडिया तक ही सीमित नहीं रह गयी हैं। अब इसमे इंटरनेट भी जुड़ गया है जिस कारण मीडिया के दो रूप हमारे सामने है एक प्रिंट मीडिया और दूसरा सोशल मीडिया। सोशल मीडिया के जरिये तुरंत ही जनमानस तक अपनी बात पहुंचाई जा सकती हैं। विद्यासागर ने प्रिंट मीडिया के माध्यम से समाज सुधार का जो कार्य किया वो आने वाली पीढ़ियों के प्रेरणादायक है।

1. www.shodhganga.com, samadar sunanda, educational contribution of ishwarchandra vidyasagar, kalyani university
2. कौशिक अशोक, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 1992, पृष्ठ संख्या 57
3. Vidyasagar Ishwarchandra, Hindu Widow Remarriage, Columbia University Press, 2012, Pg. 71
4. कौशिक अशोक, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली,1992, पृष्ठ संख्या 58
5. कौशिक अशोक, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली,1992, पृष्ठ संख्या 76

182 G G ROAD NAIHATI
24 PGS (N) PIN- 743165
WEST BENGAL
M 8337039741

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 134-136

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मातृभाषा–आधारित बहुभाषी शिक्षा की अनिवार्यता
(राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रारूप 2019 के सन्दर्भ में)

–चन्द्रशेखर नाथ झा

सहायक प्राध्यापक एवं रिसर्च स्कॉलर, ग्रिजली कॉलेज ऑफ एजुकेशन, झुमरी तिलैया, कोडरमा, (झारखण्ड)।

सारांश :–

भारत जैसे विविधता वाले देश में विभिन्न भाषाएँ विश्व में सबसे समृद्ध वैज्ञानिक, बेहद परिनिष्ठित और परिष्कृत है। ऐसे में देश की अखंडता और एकता के लिए यह आवश्यक है कि हमारे विद्यार्थी इस विशाल और समृद्ध भाषारूपी संसार से वाकिफ हों। यद्यपि इसमें कई चुनौतियाँ भी हैं, जैसा कि हाल के वर्षों में हमने बहुभाषिकता की उपेक्षा की, उसका अपमान भी किया परन्तु आवश्यकता आज इस बात की है कि बहुभाषिकता भारत की जरूरत है और इसलिए भारत के प्रत्येक विद्यार्थियों का यह दायित्व है कि वह बहुभाषिकता को उचित सम्मान दें।

प्रस्तावना :–

यह सर्वविदित है कि कि भारत एक बहुभाषा–भाषीवाला एक देश है जहाँ प्रमुख तौर पर 22 भाषाओं क्रमशः असमिया, बांग्ला, बोड़ो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिन्धी, तमिल, तेलुगू व उूर्द को भारतीय संविधान के आठवीं अनुसूची से दर्जा प्राप्त है। इसमें कोई दोमत नहीं कि इनमें से प्रत्येक भाषा की अपनी गरिमा है और सभी भाषाएँ अपने–आप में महत्वपूर्ण है परन्तु इतना होने के बावजूद भी भारत देश की कोई भी एक भाषा ऐसी नहीं दिखती जिसे देश के सभी नागरिक उच्चारण कर सके, बोल सके या समझ सके परन्तु इनमें केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो सबसे अधिक बोली भी जाती है और समझी भी जाती है।

आलेख विस्तार :–

वास्तव में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर शिक्षा का माध्यम क्या हो? वस्तुतः हिन्दी भाषा को संविधान के अनुच्छेद 343 'क' के द्वारा राजभाषा का दर्जा दिये जाने के बाद भी मातृभाषा का विवाद सुलझ नहीं सका है क्योंकि हिन्दी भाषा को राजभाषा का दर्जा प्रदान करने के बावजूद भी पन्द्रह वर्षों के लिए अंग्रेजी भाषा को सह–राजभाषा का दर्जा दिये जाने से भाषा की समस्या जस की तस ही है। इतना ही नहीं अपितु पिछले 64 वर्षों के शैक्षिक लक्ष्यों में हुए परिवर्तन के उपरान्त भी भाषाई स्तर पर लॉर्ड मैकाले की भाषा व्यवस्था से भारत खुद को पृथक नहीं कर सका है।

बदलते समय के परिणामस्वरूप 1956 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद ने भाषाई समस्या का समाधान हेतु भारत में त्रिभाषा–सूत्र को लागू करना माना। 1968 की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी बल देकर कहा गया कि सभी राज्य सरकारों को माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा–सूत्र को लागू करना चाहिए। इसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने भी स्वीकार किया जिसके तहत यह कहा गया कि हिन्दी भाषा–भाषी राज्यों में हिन्दी व अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त किसी एक

आधुनिक भारतीय भाषा, जिसमें किसी दक्षिण भाषा को प्राथमिकता दी जाये तथा वैसे राज्य जहाँ हिन्दी भाषा नहीं बोली जाती हो, वहाँ क्षेत्रीय भाषा व अंग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी भाषा को रखने पर जोर दिया जाये।

यद्यपि त्रिभाषा–सूत्र भारत में भाषाई विवाद का स्थायी समाधान के रूप में अवश्य उभरा किंतु राजनीतिक रोटियाँ सेंकने वाले ने यहाँ भी उलझने व पेचीदगी पैदा की है। हाल ही में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के प्रारूप को जब सरकार ने प्रकाशित किया तो तथाकथित राजनेताओं ने हिन्दी भाषा की अनिवार्यता और उसे लागू करने पर सवालिया निशान उठाने लगे। बिना किसी अध्ययन के विवाद उठाना जायज नहीं था क्योंकि कहीं भी इस शिक्षा नीति में हिन्दी भाषा की अनिवार्यता पर बल नहीं डाला गया है बल्कि उल्टे यह कहा गया है कि इस बहुभाषी देश में बहुभाषिक क्षमताओं के विकास और इनके बढ़ावे के लिए त्रिभाषा–सूत्र को शिद्दत के साथ अमल में लाया जाएगा। पूरे देश में भारतीय भाषाओं के अध्ययन और इनके बढ़ावे के लिए सभी राज्य अन्य राज्यों के साथ अनुबंध भी कर सकते हैं जिसके अंतर्गत एक दूसरे राज्य से भारी मात्रा में भाषा शिक्षकों की सेवाओं को लिया जा सकेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 का प्रारूप ने यह माना है कि 2 वर्ष से लेकर 8 वर्ष तक की उम्र में बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता बहुत ही प्रखर होती है, साथ ही बहु–भाषिकता बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के लिए बेहत फायदेमंद है, इसलिए बच्चों को अब उनके आरंभिक वर्षों में ही बुनियादी अवस्था और उसके बाद तीन भाषाओं को सिखाया जाएगा।

वस्तुतः हमारे शिक्षाविदों ने भले ही मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा व्यवस्था को त्रिभाषा–सूत्र में पिरोकर भाषा की समस्या का हल खोज लिया हो परंतु सरकारी काम–काज और रोजगारोन्मुख भाषा के रूप में त्रिभाषा–सूत्र को पर्याप्त जगह न मिलने के वजह से स्थिति यथावत् ही है क्योंकि आज भी क्षेत्रीय भाषा में शिक्षित युवा वर्ग रोजगार पाने और आधुनिक समाज में स्वयं को बहुत ही पीछे खड़ा हुआ पाता है।

ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व और राजभाषा हिन्दी को कमतर आँकने से त्रिभाषा–सूत्र की संकल्पना भी कमजोर हुई है और कहना न होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 73 वर्षों के बाद भी भाषा के स्तर पर भेदभाव ज्यों का त्यों सबके सामने है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को उल्लेखनीय बतलाते हुए भारत में प्रचलित मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा की अनिवार्यता पर बल डालते हुए कहता है कि बहुभाषिकता भारत की अनिवार्यता है क्योंकि यह किसी भी व्यक्ति के सीखने के अवसरों को समृद्ध करने और उसकी समझ को व्यापक करने में यह एक वरदान है ना कि कोई बोझ। नीति इस बात से सहमत है कि यदि विद्यालय में बच्चों को कम उम्र में ही अलग–अलग भाषा को पढ़ने का माहौल मिले तो वे बहुत तेजी से विभिन्न भाषाओं को सीखने में सक्षम हो जाते हैं। बहुभाषी बच्चे एकल भाषी बच्चों की अपेक्षा अपने जीवन में बेहतर मुकाम हासिल कर रहे हैं क्योंकि बहुभाषी बच्चे अनेक तरह के साहित्य और अनेक भाषा के शब्दों को अभिव्यक्ति करने लगते हैं जो उन्हें बेहतर संवाद और चिंतन करने में काफी मदद करते हैं।

हम सब जानते हैं कि भारत की भाषा दुनियाँ की सबसे समृद्ध और वैज्ञानिक भाषाओं में से एक है जिसने भारत को एक अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। हालाँकि अंग्रेजी भाषा के प्रति भारतीय जनमानस में इतना आकर्षण है कि वो भूल जाते हैं कि हमारी भाषा अन्य भाषाओं से ज्यादा प्रासंगिक है क्योंकि इसका अपनापन सम्पूर्ण देश को जोड़ता है। बावजूद आज भी ज्यादातर लोग भारत में शिक्षा का माध्यम और संवाद की भाषा के रूप में अंग्रेजी को ही तवज्जो देते हैं।

नीति ने नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा है कि यदि हम वास्तव में भारत में समानता लाना चाहते हैं तो जल्द ही अंग्रेजी भाषा को रोकना होगा और इसके लिए पढ़े–लिखे और अभिजात वर्ग जो मामूली 15: ही है को ज्यादा कोशिश करनी होगी। आज अभिजात वर्ग और बाकी के समाज में एक गहरी खाई बन गई है, उसे हमें पाटने की जरूरत है।

यद्यपि नीति इस बात को भी स्वीकारती है कि बच्चे धारा–प्रवाह अंग्रेजी बोलें और रोजमर्रा के सभी काम भी इसमें करें परंतु भारतीय सन्दर्भ में इन बच्चों को भारतीय भाषाओं का ही इस्तेमाल करना चाहिए ताकि इनके प्रचार–प्रसार में सहायता मिल सके।

निष्कर्ष :–

निःसंदेह इस बात से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि भारत जैसे विविधता वाले विशाल देश में 130 करोड़ भारतीयों के भाषाओं के समायोजन व उनकी श्रेष्ठता के साथ न्यायिक रूप से शैक्षिक व्यवस्था का आयोजन करना बेहद चुनौतीपूर्ण है परंतु इसके बावजूद भी जिस प्रकार किसी एक स्वर विशेष से संगीत के रागों की सर्वश्रेष्ठ धुने नहीं बन सकती, क्योंकि किसी एक स्वर की प्रधानता में विविध प्रकार के स्वरों का समायोजन संगीत के आकर्षण को पुष्पित करता है, ठीक उसी प्रकार भारत में भी मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा का सफल क्रियान्वयन ही एक ऐसा मधुर स्वर लहरी दे सकेगा जिससे संपूर्ण भारत, विश्व के मानचित्र पर अपना एक अलग स्थान बना सकेगा। जिसे न केवल भारत देश अपितू पूरा संसार चकित हो उन्हें मुग्ध भाव से निहारेगा।

संदर्भ :–

1. एनसीईआरटी, 2006, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, नई दिल्ली।
2. प्रारूप, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019, नई दिल्ली।
3. भारत सरकार, एम0एच0आर0डी0, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986
4. गुप्ता, एस0पी0, (2006) ''भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ,'' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
5. श्रीवास्तव, एल0, (2015) , ''शैक्षिक समावेशन के संदर्भ में मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा,'' एनसीईआरटी, 'भारतीय आधुनिक शिक्षा,' जुलाई 2015, वर्ष–36, अंक।
6. डिजीटल स्त्रोत : en.m.wikipidea.org
7. www.nmrc.jnu.org

cnjha1983@gmail.com
मोबाईल नं0 9534468422

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 137-139

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासियों की सच्ची संघर्ष गाथाओं में समाज की चिंता

–डॉ. सुरेखा जवादे

सहायक प्राध्यापक, सेंट थॉमस महाविद्यालय, आबांधा, भिलाई, छ.ग.

समाज में व्याप्त आदिवासियों, दलितों, मजदूरों शोषित–पीड़ित वर्ग, महिलाओं की समस्याओं आज भी कगार पर खड़ी है, जो उन्मुक्त होकर स्वच्छन्दता का असहसास करना चाहती है। न्यूनतम मजदूरी, मानवीय गरिमा, सड़क, पेयजल, अस्पताल, स्कूल की सुविधा से वंचित भूमिहीन होने को अभिशप्त इन आदिवासियों और दलितों को आजादी के इतने साल बाद भी न्याय नहीं मिला सका। दलितों और साधन–हीनों के हृदयहीन शोषण का चित्रण और इसी संदेश को सही जगह पहुंचाने का प्रयास जारी रहा ताकि अनन्त काल से गरीबी–रेखा के नीचे साँस लेने वाली विराट मानवता के बारे में लोगों को सचेत किया जा सके।

बंगला साहित्यकार महाश्वेता देवी के लेखन में बंगला भाषा के अंतर्गत विविध रचनाओं, काव्य ग्रंथों, दर्शन, धर्म एवं विषय कृतियों का समावेश होता दिखाई देता है। बंगला लिपि देवनागरी लिपि से कुछ अलग होने के बावजुद दोनों में बहुत समानता भी दिखाई देती है। लेखिका ने कलकत्ता में बैठकर नहीं बल्कि सागर, जबलपुर, पूना, इंदौर, ललितपुर के जंगलों, झाँसी, ग्वालियर, कालपी में हुए स्वतंत्रता संग्राम सन् 1857–58 में इतिहास के मंच पर जो कुछ हुआ उन तमाम संघर्षो को अपने लेख में लिखने का प्रयास किया है। लेखिका ने क्रांति के तमाम अग्रदूतों और यहाँ तक के अंग्रेज अफसरों तक के साथ न्याय करने का प्रयास किया हैं। इनकी सभी मूल रचनाओं के काल्पनिक पात्र हमारे देश के दीन–हीन समुदाय के बहुत करीब हैं।

'अरण्येर अधिकार' के लिए उन्हें सन् 1979 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया। साहित्य अकादमी से पुरस्कृत 'अरण्येर अधिकार' में बिरसा मुण्डा आदिवासी समुदाय को समाज से मुख्यधारा में जुड़ने की शासकीय स्वीकृति मिली। शोषित और पीड़ित वर्ग के साथ होने वाली पीढ़ा को एक तरीके से दूर किया है। सन् 1986 में पद्मश्री पुरस्कार एवं सन् 1996 में भारतज्ञान पीठ पुरस्कार, सन् 1997 में क्रिसटिव संचार कला के लिए रेमन मैगसेसे पुरस्कार, सन् 2006 में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। 'अरण्येर अधिकार' के माध्यम से मुण्डा आदिवासी वर्ग समाज की मुख्य धारा से जुड़ सका, उन्हें लगने लगा की आदिवासियों के बारे में उनका दायित्व और भी बढ़ गया है। उनके बारे में ओर अधिक जानने की कोशिश जारी रखी। आदिवासी इलाकों में जाती और उनके सुख दुख में शरीक होती। उनका लेखन शोषित आदिवासी समाज और उत्पीड़ित दलितों में केन्द्रित हो गया। न्यूनतम मजदूरी, मानवीय गरिमा, सड़क, पेयजल, अस्पताल, स्कूल की सुविधा से वंचित भूमिहीन होने को अभिशप्त इन आदिवासियों और दलितों को आजादी के इतने साल बाद भी न्याय नहीं मिला हैं। यही चिंता का कारण रहा। दलितों और साधन–हीनों के हृदयहीन शोषण का चित्रण और इसी संदेश को सही जगह पहुंचाने का प्रयास जारी रहा ताकि अनन्त काल से गरीबी–रेखा के नीचे साँस लेने वाली विराट मानवता के बारे में लोगों को सचेत किया जा सके। समाज में व्याप्त आदिवासियों, दलितों, मजदूरों शोषित–पीड़ित वर्ग, महिलाओं की समस्याओं आज भी कगार पर खड़ी है, जो उन्मुक्त होकर स्वच्छन्दता का असहसास

करना चाहती है। नील छवी में नशे एवं अश्लील फिल्में किस तरह से युवा वर्ग को खोखला करती है। रचनाओं के माध्यम से मुख्य धारा से बाहर रखे गये। आदिवासी वर्ग की अस्मिता के सवाल को सशक्तता के साथ उठाया गया जो आदिवासियों की सच्ची संघर्ष गाथाएं है। इन महागाथाओं में समाज की चिंता का बेचेनी के साथ सामने आने का पहला अवसर है।

महाश्वेता देवी ने अपनी सशक्त कलम से समाज में हो रहे इस अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई और समाज की इस अव्यवस्थित व्यवस्था के खिलाफ लेखनी के माध्यम से चोट करती रही, ताकि समाज की इस अनीतिगत व्यवस्था में सुधार लाया जा सके। उनकी सभी रचनाएं सामाजिक असमानता के आस–पास ही थी। साहित्यकार, उपन्यासकार, लेखक एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता ने देश की एक सौ से भी ज्यादा रचनाएं, जनजातियों एवं 25 लाख आदिवासियों को समर्पित कर दी और उनके जीवन की कुरूपता एवं दुख को अपनी रचनाओं में उल्लेखित किया है। उनकी रचनाएं देश के ग़रीब आदिवासी लोगों के खिलाफ सामाजिक भेदभाव, छुआछुत, शोषण पर केन्द्रीत हैं उन्होंने जीवन में जनजातिय समुदाय का कल्याण करने एवं उनके उत्थान के लिए अनेक कार्य किये। पश्चिम बंगाल के पुरूलिया जिले में आदिवासी समुदाय उत्थान के लिए बड़े पैमाने पर भी कार्य किये। आदिमजाति कल्याण के क्षेत्र के लम्बे समय तक कार्य करते हुए पश्चिम बंगाल की 'उराव वेलफेयर सोसायटी' और 'भारतीय बांधव लिबरेशन मोर्चा' के साथ जुड़ी और आदिवासी संयुक्त एसोसिएशन की संस्थापक सदस्य रही। सन् 1980 में आदिवासी पत्रिका बर्तीका का संपादन कार्य शुरू किया। सशक्त सामाजिक कार्यकर्त्ता की भूमिका अदा करते हुए आदिवासीयों के उत्पीड़न, अन्याय एवं भारतीय समाज के सबसे निचले दलित वर्गो की मुक्ति के लिए विरोध प्रदर्शन करते हुए, उन्हें न्याय दिलाने के लिए अभियान चलाया गया। प्रतिभाशाली और एक प्रख्यात कार्यकर्त्ता के रूप में अंतराष्ट्रीय स्तर पर उन्हें ख्याति प्राप्त हुई । आजादी के 71 वर्ष बाद भी आदिवासी वर्ग मूलभूत सुविधाएं पाने में आज भी वंचित है। अर्थात् जीवन के तीन दशकों का समय उनके द्वारा जल, जंगल और जमीन की लड़ाई के संघर्ष में खर्च कर दिया। उन्होंने पश्चिम बंगाल की दो जनजातियों लोधान और शबर पर विशेष कार्य किये है।

'रूदाली' और 'हजार चौरासी की माँ' पर आधारित हिन्दी फिल्म बन चुकी है यह फिल्मे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसित हुई है। इनकी रचनाएं कई भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनुवादित की गई है। महिला उत्पीड़न पर आधारित इस फिल्म में मुख्य किरदार निभाने वाली व अदाकारा डिपल कपाड़िया तथा 'हजार चौरासी की माँ' जिसके निर्देशक गोंविद निहलानी के निर्देशन में अभिनेत्री जया बच्चन को भी इस फिल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के तहत राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

'टेरोडेक्टिल' में आदिवासी लोग आदिवासियों द्वारा उत्पादित शराब और आदिवासी युवतियों के चहेते अहंकारी युवक सीधे आदिवासियों की बस्ती तक पहुँचते है दर्शाया की भारत की कुल आबादी के आठ फीसदी वाला आदिवासी वर्ग आज भी नेतृत्व विहीन है। उन्हें जीविकोपार्जन के लिए कड़ा श्रम करना पड़ता है। शासकीय व्यवस्था से पूछा है कि आदिवासियों के लिए जो कानून बने है वह कितने लागू हुए है। कागजी विकास की योजनाएं फाइलो तक सीमित है धरातल पर कुछ भी नजर नहीं आता। आदिवासियों के बारे में दिल्ली की समझ अंग्रेजो जैसी है। इतिहास मिथक और वर्तमान राजनैतिक यर्थाथ के पहलुओं को सजोते हुए सामाजिक परिवेश की मानवीय पीढ़ा को स्वर देती है। खेतीहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी न मिलने, किसान के संघर्ष की गाथा में अंततः वह आत्महत्या के लिए मजबूर हो रहा है। मजदूर वर्ग को न्यूनतम मजदूरी आन्दोलन के बाद भी नहीं मिल रहीं है। इस असंवेदनशील व्यवस्था को शासन नहीं रोक पा रहा है। सामाजिक व्यवस्था में हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई गई है। किसान निचली जाति के लोग मजदूर बंधुआ बन कर कार्यकर रहे है। इनकी महिलाएं स्वर्ण वर्ग की रखेल बन कर रह गई है।

26 मई सन् 1998 को महाश्वेता देवी महाराष्ट्र में बारामती क्षेत्र मे पहुँचकर आदिवासी जनजाति, पारधियों के लिए महाराष्ट्र के पारधी समुदाय के ही सामाजिक कार्यकर्त्ता लक्ष्मण गायकवाड़ के साथ मिलकर कार्य किया। पारधी समुदाय को शिक्षित होने के लिए प्रेरित भी किया। विशेषकर इस समुदाय की महिलाओं को अवश्य ही शिक्षित किया जाये क्योंकि शिक्षा तीसरे नेत्र की तरह है। शिक्षा से ही न्याय एवं अन्याय को तय किया जा सकता है। सन् 1998 की फरवरी में डी नोटिफाइड जाति के बूधन शवर की मौत हुई थी। पुरूलिया जिला पुलिस प्रशासन ने इस मौत को आत्महत्या करार दिया था। परन्तु महाश्वेता देवी पुलिसियां कार्यवाही से संतुष्ट नहीं थी उन्होंने पश्चिम बंगाल खेड़िया शवर कल्याण समिति की ओर से 23 फरवरी 1999 में हाईकोर्ट में जनहित याचिका दायर की ,समिति ने यह मुकदमा जीत लिया अर्थात लेखिका ने लेखन कार्य के अलावा अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाहन करते हुए अन्याय के खिलाफ न्याय प्राप्त किया। सामाजिक कार्यकर्त्ता रहते हुए सामाजिक भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास आन्दोलन एवं लेखन दोनों ही माध्यम से किया। भारत की जनजाति लोगों के अधिकार को दिलाने के लिए उनके द्वारा किये गये अथक कार्य उनके जीवन का एक हिस्सा है। अत्याचारों के खिलाफ जारी उनकी जंग केवल लेखन कार्य तक ही समिति नहीं थी बल्कि धरातल पर वे पीड़ित पक्ष को संगठित कर उन्हें अधिकारों के प्रति जागरूक कर व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करते हुए जीवन भर नजर आती है।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 140-142

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लोक भाषा संर्वधन में नाथपंथ का योगदान

–डॉ0 आरती सिंह

महाराणा प्रताप पी0जी0 कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर।

बज्रयान शाखा में योगी 'सिद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुए वे अपने मत का संस्कार जनता पर भी डालना चाहते थे। इससे वे संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त अपनी बानी अपभ्रंश मिश्रित देशभाषा या काव्यभाषा में भी बराबर सुनाते रहे। वज्रयानियों की योगतन्त्र साधनाओं में मद्य तथा स्त्रियों का विशेषतः डोमिनी, रजकी आदि का अबाध सेवन एक आवश्यक अंग था। सिद्ध कण्हपा डोमिनी का आह्वान गीत इस प्रकार गाते हैं–

''नगर वाहिरे डोबी तोहरि कुड़िया छइ।
छोइ जाइ सो बाध्य नाड़िया।''(1)

गोरखनाथ के नाथपंथ का मूल भी बौद्धों की वज्रयान शाखा है। चौरासी सिद्धों में गोरखनाथ (गोरक्षपा) भी गिन गये हैं। पर यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपना मार्ग अलग कर लिया। गोरख ने पतंजलि के उच्च लक्ष्य, ईश्वर प्राप्ति को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया। वज्रयानी सिद्धों का लीला क्षेत्र भारत का पूरबी भाग था। गोरखनाथ ने अपने ग्रंथ का प्रचार देश के पश्चिमी भागों में राजपूताने और पंजाब में किया। पंजाब में नमक के पहाड़ों के बीच बालनाथ योगी का स्थान बहुत दिनों तक प्रसिद्ध रहा। जायसी की पद्मावत ने 'बालनाथ का टीला' आया है।

''यहां पर यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि चौरासी सिद्धों में बहुत से मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार, लकड़हारे, दरजी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। अतः जाति–पाति के खंडन तो वे आप ही करते थे। नाथ सम्प्रदाय भी जब फैला, तब उसमें भी जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत से लोग आये जो शास्त्रज्ञान संपन्न न थे, जिनकी बुद्धि का विकास बहुत सामान्य कोटि का था।''[2]

इस पंथ का प्रचार राजपूताने तथा पंजाब की ओर ही अधिक रहा। अतः जब मत के प्रचार के लिए इस पंथ में भाषा के भी ग्रंथ लिखे गए तब उधर की ही प्रचलित भाषा का व्यवहार किया गया। उन्हें मुसलमानों को भी अपनी बानी सुनानी रहती थी जिनकी बोली अधिकतर दिल्ली के आसपास की खड़ी बोली थी। इससे उसका मेल भी उनकी बानियों में अधिकतर रहता था। इस प्रकार नाथपंथ के इन जोगियों ने परम्परा साहित्य की भाषा या काव्य भाषा से, जिसका ढाँचा नागर अपभ्रंश या वज्र का था, अलग एक 'सधुक्कड़ी' भाषा का सहारा लिया जिसका ढाँचा कुछ खड़ी बोली लिये राजस्थानी था। देश–भाषा की इन पुस्तकों में पूजा, तीर्थाटन आदि के साथ हज, नमाज आदि का भी उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार की एक पुस्तक का नाम है, 'काफिरबोध'। [3]

देशभाषा में लिखे गोरख पंथ की पुस्तकें गद्य और पद्य दोनों में है और विक्रम संवत् 1400 के आसपास की रचनाएं हैं। इनमें साम्प्रदायिक शिक्षा है। इस समय की जो पुस्तकें पायी गयी हैं उनके नाम ये हैं – गोरख–गणेश–गोण्डी, महादेव–गोरख–संवाद, गोरखनाथ जी की सत्रह कला, गोरख बोध, दन्त गोरख–संवाद, योगेश्वरी साखी, नखइ बोध, विराट पुराण, गोरखसागर, गोरखनाथ कीबानी ये सब ग्रन्थ गोरख के नहीं उनके अनुयायी शिष्यों के रचे हैं। गोरख के

समय जो भाषा लिखने–पढ़ने में व्यवहृत होती थी उसमें प्राकृत या अपभ्रंश शब्दों का बहुत मेल अवश्य रहता था।

भारतीय सन्त साहित्य नाथ योग से प्रभावित है। महाराष्ट्र के मराठी के आदिकवि श्री मुकुन्द राज (सन् 1128–1200) ने भी अपनी गुरू परम्परा आदिनाथ से ही मानी है। इससे यह तो प्रकट ही हैं कि महाराष्ट्र का सन्त काव्य नाथपंथ से सीधे सम्बन्ध है। गुजरात के मध्यकालीन सन्त कवियों पर नाथ योगियों का चाहे सीधा प्रभाव न हो, किन्तु कबीर पंथ से विशेष प्रभावित है। सिखपन्थ या नानक पन्थ के प्रवर्तक गुरू नानक देव ने 'गोरखहटड़ी' में नाथ योगियों से ज्ञान चर्चा की थी।

सिख गुरूओं तथा पंजाबी साहित्य में नाथ–पन्थ की सूचना मिलते है। राजस्थानी भाषा में भी नाथमत का प्रभाव प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यों तो राजस्थान में रचित पूरा 'सन्त साहित्य' नाथ पंथ से प्रभावित हैं। किन्तु 'जसनाधी', 'निरंजनी' और 'अलखिया' सम्प्रदाय का साहित्य विशेष रूप से नाथ पंथ से प्रभावित है।

मराठी, गुजराती, पंजाबी और रास्थानी लोक भाषाओं में नाथपंथ का योगदान मिलता है। तमिल, कन्नड़, मलयालम, बंगला, उड़िया नाथपंथ का प्रभाव उत्तर से दक्षिण भारत के लोकभाषाओं में देखने को मिलता है।

कन्नड़ का मध्यकालीन साहित्य नाथपंथ से विशेष रूप से प्रभावित है। मलयालम में भी नाथपंथ के नाथयोग का साहित्य मिलता है। मध्यकाल के मलयज्लम साहित्य में 'नाथपंथ' लिखा गया है।

उड़िया भाषा में नाथ साहित्य की रचना चतुर मात्रा में हुई है। उड़ीसा के लगभग सभी जिलों में नाथमत के अनुयायी पाये जाते हैं। उड़िया लोकभाषा में नाथपंथ का नाथ योग की प्राचीनतम पोथी गोरखनाथ रचित 'शिशुवेद' मानी जाती है।

डॉ0 अजय कुमार पटनायक का कथन है–''शिशुवेद' योग–तत्व सम्बन्धी एक पांडित्य ग्रन्थ है, जो नाथ धर्माचार्यों के कायासाधन में मार्गदर्शक साबित होता था। शिशुवेद की महान् आध्यात्मिकता अद्भुत योग साधना प्रणाली तथा इसमें निहित कूट भाषा का प्रभाव समग्र उड़िया सन्त साहित्य में देखा जा सकता है।'' [4]

'पंचसखा साहित्य 'शून्य संहिता' आदि ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इसमें नाथ योगियों एवं उनके सिद्धान्तों की विस्तृत चर्चा है। उड़ीसा में गोरखनाथ के नाम से 'अण्टांगयोग', 'सप्तागयोग' एवं 'सप्तांग' ये तीन ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। इन तीन ही ग्रन्थों में 'हठयोगसाधना' की चर्चा विस्तार से की गयी है। सोलहवीं शताब्दी के बाद उड़िया लिपि में लिखित कुछ हिन्दी रचनाएं भी प्राप्त हुई है, जिसमें नाथ योगियों की स्फुट कथाएं कही गयी हैं। उड़िया के लोकगीतों में भी गुरू गोरखनाथ और मत्येन्द्रनाथ का उल्लेख मिलता है।

बंगला भाषा में भी नाथमत का साहित्य पाया जाता है। गोरखनाथ जी की भाषा बंगला के सन्निकट होना इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने उनके विचारों में प्रचारक नाथ योगियों ने बंगाल में नाथ पंथ का व्यापक प्रचार किया था और तेरहवीं शती के आरम्भ से सोलहवीं शती तक बंगला लोक भाषा में नाथमत के पोषक विचार व्यक्त किये गये।

भारत की पड़ोसी देश 'नेपाल' में नाथपंथ का न केवल प्रभाव पड़ा है, वरन् उसकी स्थापना और विकास में भी गोरखनाथ का आशीर्वाद ही कार्य करता रहा है। नेपाल में 'जोसमनी सम्प्रदाय का प्रचार हुआ। इस सम्प्रदाय का साहित्य नाथमत से पूर्णतः प्रभावित है। नेपाल की पूरी संस्कृति पर नाथपन्थ का गहरा प्रभाव है। यदि कहा जाए कि 'कश्मीर' से लेकर 'असम' तक पूरे पहाड़ी अंचल की लोक भाषाओं में नाथपंथ वर्णित है।

पूरे देश का लोक साहित्य नाथ से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ है। हिन्दी, बंगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, गढ़वाली आदि सभी भाषाओं ने लोक साहित्य में गुरू गोरखनाथ या भतृहरि या मत्सेन्द्रनाथ या गोपीचन्द के गीत मिलते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं –''कबीर आदि निर्गुण मतवादी सन्तों की वाणियों के बाहरी रूप रेखा पर विचार

किया जाए तो मालूम होगा कि यह पूर्णतः भारतीय है और बौद्ध धर्म के अन्तिम सिद्धों और नाथपन्थी गोपियों के पद आदि से उसका सीधा सम्बन्ध है। वे ही पद, वे ही राग रागिनियां, वे ही दोहे, वही चौपइयां कबीर आदि ने व्यवहार की है जो उक्त मत के मानने वाले अनेक पूर्ववर्ती संतों ने की थी। क्या भाव, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या छन्द, क्या पारिभाषिक शब्द सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्ग दर्शक है।''[5]

कबीर के बाद के भी अनेक सन्तों ने गुरू गोरखनाथ के प्रति पूज्य भाव प्रकट किया है। सुन्दरदास, मलूकदास, हरिदास, (रविरंजनी सम्प्रदाय के सन्त) दुख हरन दास जैसे सन्तों ने प्रचलित लोक भाषा में नाथपंथ के प्रति श्रद्धा प्रकट किये हैं।

सन्त साहित्य से इतर प्रेममार्गी शाखा के सूफी कवियों पर गोरखनाथ का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। सम्पूर्ण प्रेमगाथाओं में नायक (साधक) नायिका (साध्य) से मिलन के लिए योग का ही सहारा लेता है। जायसी कृत 'पद्भावत', कुतुबन की मृगावत, मंझन की मधुमालती उस्मान की चित्रावली, मुल्लादाउद का चंदापन और नूर मुहम्मद के अनुराग बांसुरी में नाथपंथ और गोरखनाथ की प्रवृत्ति से प्रभावित का चित्र. बखूबी देखा जा सकता है। उस्मान कृत चित्रांव के 'परेवा खण्ड' में गोरखपुर के गोरखनाथ मंदिर और योगी गोरखनाथ का विस्तार से वर्णन किया गया है। उसी परम्परा में लोक और विशेष रूप से पूर्वांचल के गांव देहात में सारंगी बजाकर एक योगी जाति घूम–घूमकर भिक्षाटन करते थे जो राजा भरथरी और गोपीचन्द के प्रसंग को बहुत ही मधुर ढंग से गाकर सुनाते थे। इन सारे गीतों में गोरखनाथ का नाम अवश्य आता है। ये गीत लोक भाषा भोजपुरी, अवधी, बुंदेली, कन्नौजी आदि में पर्याप्त रूप में मिलते है। इतना ही नहीं राजस्थान और पंजाब की प्रेम गाथाओं जैसे 'ढोला मारू रा दूहा' और हीर रांझा आदि में भी गोरखनाथ की अहम भूमिका मिलती है। राजस्थान में बोली जाने वाली दर्जनों बोलियों के लोकगीतों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गोरखनाथ और उनके प्रदेय का स्मरण होता है।

इस तरह हम देखते हैं कि पश्चिमोत्तर भारत की लोक भाषाओं में गहराई तक गोरखनाथ एवं नाथपंथ का योगदान है।

सन्दर्भ :–

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ0 21
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ0 26
3. डॉ0 पीताम्बर दत्त, बड़थ्वाल, पृ0 82
4. डॉ0 पीताम्बर दत्त, बडथ्वाल, पृ0 32
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–'हिन्दी साहित्य की भूमिका' पृ0 31

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 143-145

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में स्त्री विमर्श

–डॉ. ज्योति मौलेखी

सहा. प्राध्यापक हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय तल्ला सल्ट अल्मोड़ा।

विविध प्रतिभाओं के धनी छायावाद के जनक जयशंकर प्रसाद का कहानीकार के रुप में हिन्दी में उनका अत्यधिक महत्त्व रहा है, और उस महत्त्व को कई दृष्टियों से आका जा सकता है। प्रसाद हिन्दी के आरम्भिक कहानीकारों में एक हैं। उनकी 'ग्राम' कहानी हिन्दी कहानी की आरम्भिक कहानियों में गिनी जाती है। देवेश ठाकुर जयशंकर प्रसाद के कथा साहित्य के विषय में लिखते है –''प्रसाद पहले कहानीकार है जिन्होनें हिन्दी को बंगला, अंग्रेजी तथा फ्रेंच अनुवादों से मुक्त कर उसके स्वरुप को मौलिकता और स्थिरता प्रदान की''। 'प्रसाद की साहित्य – दृष्टि, डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ट संख्या 223

जयशंकर प्रसाद ने कुल उनहत्तर कहानियॉ लिखी हैं ये कहानियां उनके महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह प्रतिध्वनि 1926, आकाशदीप 1929, आंधी 1931, तथा इन्द्रजाल 1936 में संग्रहित है। उनकी कहानियों की विशिष्टता उनके पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का उद्घाटन काव्यात्मक अभिव्यक्ति और कहानी की मार्मिकता अन्त में निहित है। यद्यपि कविता और नाटक का शिल्प कभी–कभी कहानी में भी प्रमुख हो उठती है, ''कहानियों में प्रसाद की कविताओं से पहले एक विशेष प्रकार का लोककथात्मक वैचित्र और भावोन्मुखता मिलती है। कथा का बाहरी ढांचा विशेष भावात्मक प्रवृत्ति या मन के विशेष आवेग मानसिक उथल– पुथल के लिए प्रयुक्त किया हुआ लगता है।'' 'प्रसाद की सम्पूर्ण कहानिया एवं निबन्ध सम्पादक –डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र पू. सं. 7

प्रसाद के कथा साहित्य में नारी की उपस्थिति के सम्बन्ध में डॉ. भटनागर ने अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है– ''व्यापक रुप से ही युग की सबसे बड़ी समस्या नर–नारी के संतुलित सम्बन्ध की है। समाज का सम्बन्ध अप्राकृतिक और दुर्बल होगा, वहॉ समाज जर्जर होगा और राष्ट्र की नीव भीतर–भीतर खोखली होती रहेगी। प्रसाद ने अपने नाटकों और अपने कथा साहित्य में इस समस्या के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। आधुनिक युग नारी के मूल प्राकृतिक द्वन्द्व उसके सामाजिक और पारवारिक महत्त्व उसकी मूल प्रेरणाओं उसके नये पुराने बन्धनों और उसके मन की छाया लोकों पर विषद रुप विचार किया है।'' 'प्रसाद साहित्य में उदात्त तत्त्व, डॉ. गौरी शंकर राय विमल पृ. 225,

प्रसाद के कथासाहित्य के अनेक नारी पात्र न केवल शिक्षित है बल्कि स्त्री समाज को शिक्षित करने के लिए प्रयत्नशील भी रहते हैं। 'कंकाल' की गाला और 'तितली' बालिका विद्यालय स्थापित कर महिला शिक्षा के लिए संकल्पशील है। तितली निर्धन और अवैध बच्चों को न केवल पढ़ाती है बल्कि उसका पोषण भी करती है।

चम्पा बुधगुप्त के वैभव सम्पदा को तिलांजलि देकर निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए द्वीप में ही रह जाती है। वही भौला भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर हिन्दू धर्म में दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात्

ग्रामवासियों की सेवा का व्रत लेती है। इस प्रकार प्रसाद के नारी–पात्र प्रगतिशील है। यही नही वे पुरुष की नारी के प्रति एकाधिकार की प्रवृत्ति को भी चुनौती देते हुए कहती है कि स्त्रियों को स्वयं घर–घर जाकर दुःखी बहनों की सेवा करनी चाहिए। पुरुष उन्हें उतनी ही शिक्षा व ज्ञान देना चाहते है जितना उनके स्वार्थ में बाधक न बने। घरों के भीतर अंहकार है, धर्म के नाम पर ढोंग की पूजा है और शील तथा आधार के नाम पर रुढियां है।

''एक खास प्रकार के नारी पात्रों की सृष्टि में प्रसाद अद्वितीय हैं जो अपने निश्छल प्रेम, त्याग और बलिदान से पाठकों के मन में अमिट प्रभाव छोड जाती है। 'अकाशद्वीप' की चम्पा, 'देवरथ की सुजाता, पुरस्कार की मधुलिका आदि प्रसाद की अनुपम नारी सृष्टि है। नियति और समाज से एक साथ संघर्षरत नारी का ऐसा चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।'' 'हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र – पृ.सं. 582

प्रसाद जी का मानना है कि प्रेम महान है। प्रेम उदार है। प्रेमियों को भी वह उदार और महान बनाता है। प्रेम का मुख्य अर्थ है 'आत्मत्याग'। ''प्रणय का जीवन अपने छोटे–छोटे क्षणों में भी बहुत दीर्घजीवी होता है।'' 'इन्द्रजाल सालवती जय शंकर प्रसाद – पृ. सं. 375

प्रसाद जी ने तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति का सजीव चित्रण किया है। उनकी कहानियों के नारी पात्र अवस्था के विरुद्ध विद्रोह करती है और पुरुष की नारी के प्रति एकाधिकार की प्रवृत्ति को चुनौति देती है। वे सामाजिक कुरीतियों से अपने ढंग से लड़ती है तथा आडम्बर पूर्ण धार्मिक रीतियों का विरोध करती है। देवरथ की सुजाता को धार्मिक रीतियों की ओट में भैरवी बना दिया जाता है जिसके कारण आर्यमित्र का प्रणय–निवेदन अस्वीकार कर देती है परन्तु संघर्स्थवर द्वारा उसे पापचारिणी करने का आदेश देने पर वह विद्रोही स्वर में कहती है– ''किसके पाप का प्रायश्चित, तुम्हारे या अपने? चुप रहो, असत्यवादी, वज्रयात्री– नरपिशाच.....। 'प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियां एवं निबन्ध, संपा. सत्यप्रकाश मिश्र पृ.सं. 336

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में नारी जीवन का जीता–जागता चित्र मिलता है। उनकी कहानियों का उद्‌गम मानव के परिष्कृत भाव बिन्दु से हुआ है। उनमें नारी जीवन के विविध आयामों को जीवन्त बनाया गया है। उन्होनें अपने कहानियों के द्वारा आदर्शवाद और यथार्थ को समन्वित किया है। समन्वय की यह भावना उसके जीवन दर्शन का निरुपण ही है।

साथ ही उन्होने जोर देकर कहा है कि नारी के आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने की आवश्यकता है क्योकि ''आर्थिक पराधीनता ही संसार मे दुःख का कारण है।'' 'प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियां एवं निबन्ध, संपा. सत्यप्रकाश मिश्र पृ.सं. 37

आदिकाल से लेकर आज तक भी स्त्रियों के अधिकार सीमित रहे हैं धार्मिक–सामाजिक, रीति–रिवाजों की ओट में स्त्रियों पर तरह–तरह के अत्याचार होते रहे हैं। आज भी स्त्रियों को दोयम दर्जे का समझा जाता है। ''प्रसाद की नारियां कही अबला की पराकाष्ठा पर है, तो कही समस्त अबला जीवन का इतिहास का कारुणिक स्वरुप उपस्थित करती है। उनकी दृष्टि में नारी जीवन का निर्माण विधाता की अनोखी सृष्टि है। अतएव उसके मान–सम्मान और मर्यादा की रक्षा के लिए प्रसाद का हृदय व्यथित रहता है।'' 'प्रसाद साहित्य में उदात्त तत्त्व, गौरीशंकर राय विमल पृ. सं. 246

प्रसाद जी अपने छोटे से जीवनकाल में अत्यन्त उत्कृश्ट साहित्य लिखकर सदा के लिए अमर हो गये। उनकी कहानियों में ही नही वरन् उनके सम्पूर्ण गद्य साहित्य में उनकी हर महिला पात्रा स्वाभिमानी एवं स्वावलम्बी होने की इच्छा रखती है तथा अपने स्वत्व के लिए मर–मिटती है।

सन्दर्भ सूची :-

1. प्रसाद की साहित्य – दृष्टि, डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, पृष्ट संख्या 223
2. प्रसाद की सम्पूर्ण कहानिया एवं निबन्ध सम्पादक – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र पृ. सं. 7
3. प्रसाद साहित्य में उदात्त तत्त्व, डॉ. गौरी शंकर राय विमल पृ. 225
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र – पृ.सं. 582
5. इन्द्रजाल सालवती जय शंकर प्रसाद – पृ. सं. 375
6. प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियां एवं निबन्ध, संपा. सत्यप्रकाश मिश्र पृ.सं. 336
7. प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियां एवं निबन्ध, संपा. सत्यप्रकाश मिश्र पृ.सं. 37
8. प्रसाद साहित्य में उदात्त तत्त्व, गौरीशंकर राय विमल पृ. सं. 246

मो. – 9897827811

jyotimaulekhi21@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 146-149

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नैतिक मूल्य और उच्चतर शिक्षा एवं भाषा

–कमल भूरिया

शोधार्थी, भाषा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

मानव जगत में अन्य प्राणियों और वनस्पतियों से भिन्न है। मनुष्य ने सामाजीकरण की प्रक्रिया में अपने लिए कुछ नियम बनाए और संयमिति जीवन के लिए स्वयं को तैयार किया तथा नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को स्वयं के जीवन चरित्र में उतारा। शिक्षा देश के सर्वांगीण विकास की मुख्यधारा से जुड़ी एक अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी है। शिक्षा मनुष्य के सामाजीकरण और नागरिकों के निर्माण की एक अत्यंत महत्वपूर्ण तथा सशक्त आधारशिला के रूप में कार्य करती है। किसी भी सशक्त राष्ट्र का निर्माण उस राष्ट्र में रहने वाले लोगों के नैतिक और आध्यात्मिक माध्यम से ही सम्भव है। राष्ट्र के प्रति सच्ची–निष्ठा और प्रेम आपसी सामंजस्य एवं सद्भाव अनुशासन और स्थापित कानूनी प्रावधानों एवं मूल्यों के अनुसार अपना आचरण रखना उच्चतर शिक्षा एवं भाषा के लिए अनिवार्य है।

''हिन्दू धर्म सृष्टि का आदि धर्म है। जिस प्रकार वेद अपौरूषेय हैं, उसी प्रकार हिन्दू धर्म भी अपौरूषमेय है। ईश्वरीय धर्म है।

हिन्दू धर्म की मान्यता है कि नैतिकता एक आत्मगत गुण है, जिसे समाज में रहकर ही अर्जित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत चरित्र–शिक्षा, लोकतांत्रिक चेतना की शिक्षा राष्ट्रीय अखण्डता की शिक्षा, समसामायिक मूल्यों का समावेश हो जाता है। कहने का अर्थ यह है कि नैतिक शिक्षा वैयक्तिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, मानसिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय श्रेयस्कर मूल्यों का समुच्चय है। यही कारण है कि अनेक पश्चिमी चिंतक भारतीय प्रतिमानों को समझने में रूचि लेने लगे हैं।'' नैतिक मूल्य और भाषा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृष्ठ–1–2,

अच्छी शिक्षा केवल ज्ञान और कला (हुनर) को प्रदान करने के साथ–साथ समाज में जीवन–मूल्यों को भी प्रतिस्थापित करती है। शिक्षा शास्त्रियों का मानना है कि शिक्षा ज्ञान रूपी प्रकाश और आध्यात्मिक शक्ति का वह जीवन पुंज है, जो हमारे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक नैतिक विकास यात्रा के लिए समाज की विकास यात्रा के लिए समाज की अंतःनिहित प्रकृति में आमूलचूल परिवर्तन लाती है। इसी लिए कहा गया है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नैतिक मूल्य और उच्चतर शिक्षा एवं भाषा के लिए समुचित जीवन दर्शन में नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक चिंतन की आवश्यकता है। इसके लिए शिक्षा व्यवस्था के संचालन के लिए पर्याप्त जिम्मेदार एवं संवेदनशील तंत्र का होना व्यवस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए महत्वपूर्ण है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार जीवन में मानवीय मूल्य ही सत्य होते हैं, तथा नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य किसी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक समाज को आन्दोलित करते हैं। धर्म में प्रेम, अहिंसा के साथ–साथ शांति का विस्तार होता

है। इसी कारण से यह कहा गया है कि धर्म में ही सत्य, शांति, प्रेम, अहिंसा को मानवीय जीवन का अहम् पहलू माना गया है।

''हिन्दू धर्म ने नैतिकता को काल–निरपेक्ष माना जबकि मूल्य का भावकाल–सापेक्ष है। अतः नैतिक भावना ही सभी धर्मों में व्याप्त नैतिक–शिक्षा की साझा पूँजी है। नैतिकता तो धर्म के बिना भी रह सकती है किन्तु कोई धर्म नैतिकता के बिना नहीं रह सकता। सभी धर्मों के मध्य नैतिकता एक सेतु का काम करती है।'' नैतिक मूल्य और भाषा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृष्ठ–7–8,

नैतिक मूल्यों के सम्बन्ध में यह सामान्य अवधारणा है कि इन्हें औपचारिक रूप से पढ़ाया या सीखाया नहीं जा सकता है। जीवन मूल्य हमें सही जीवन जीने की अनुभूति प्रदान करते हैं, और इन्हें केवल सामान्य रूप से महसूस किया जा सकता है तथा जीवन मूल्य (नैतिक मूल्य) आचरण के माध्यम से परिलक्षित एवं प्रतिबिंबित होते हैं। इसी कारण से जीवन में नैतिक मूल्य की शिक्षा एक कठोर चुनौती होती है। परिवार, शिक्षण संस्थाएँ और समाज सामाजिक जीवन के साथ–साथ नैतिक मूल्य स्थापित करने का कार्य भी करते हैं।

परिवार में ही व्यक्ति को जन्म लेने के बाद मानवीय सम्बन्धों का महत्व समझ में आता है और बालक परिवार की जीवन शैली अपनाते हुए बालक का विकास होता है। बालक बचपन में पारिवारिक वातावरण से प्रारम्भिक अनौपचारिक शिक्षा ग्रहण करता है जो कि उच्चतर शिक्षा तक अनवरत् जारी रहती है। परिवार द्वारा दिये गये संस्कार बालक के साथ जिन्दगीभर साथ रहते हैं तथा परिवार के ही संस्कारों का प्रभाव हमारे व्यक्तित्व में सदैव परिलक्षित होते हैं। इसी लिए कहा गया है कि परिवार व्यक्ति की प्रथम पाठशाला होती है, तथा बालक की माँ प्रथम गुरू होती है। बालक के जीवन में नैतिक मूल्य माता–पिता के माध्यम से ही विस्तार पाते हैं।

भारत में परिवार, सामाजिक व्यवस्था की सबसे छोटी एवं महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार का ही विस्तारित रूप समाज और राष्ट्र होता है। यदि हम व्यवहार और आचरण में नैतिक मूल्यों को यथार्थ रूप में स्वीकारें तो उस समाज का निर्माण होगा जिसके द्वारा स्वस्थ राष्ट्र की आधारशिला रखी जा सकती है। वैसे सामाजिक ढ़ाँचा और सामाजिक मान्यताएँ कभी–कभी किसी भी काल में एक समान नहीं रहती है। यह इस बात का परिचायक है कि समाज एक परिवर्तनशील सामाजिक व्यवस्था का नाम है, जिसमें सकारात्मक और संरचनात्मक परिवर्तन होता रहता है।

पुरातन संयुक्त परिवार से टूटते परिवार और सुखद जीवन जीने वाले परिवारों से भौतिकवाद से ग्रसित वर्तमान समय के साथ भागते हुए अशांत परिवार इसके उदाहरण हैं। वर्तमान में माता–पिता के पास बच्चों को देने के लिए समय नहीं है। इसी कारण से बच्चों के क्रियाकलापों पर माता–पिता का नियंत्रण नगण्य होता चला जा रहा है। परिवार और समाज में भौतिक संसाधनों का महत्व भावनाओं से ऊपर हो चुका है। अतः कहा जा सकता है कि जीवन में नैतिक मूल्यों को स्थापित करने की प्रथम कड़ी ही कमजोर होगी तो आगे की समस्त कड़ियाँ जोड़ पाना सम्भव नहीं हो सकेगा।

''भाषा और साहित्य का अध्यापन तो कुछ और मुश्किल–सा काम है। इसमें हजारों सावधानियों की जरूरत पड़ती है। खासतौर से उस हिन्दी भाषा में जिसका सारा सौन्दर्य उच्चारण पर टिका हुआ है। उच्चारण से ही अर्थ प्रकट होता है। यह अशुद्ध हो तो अर्थ या तो ठीक से प्रकट नहीं होता या फिर हो ही नहीं पाता।'' नैतिक मूल्य और भाषा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृष्ठ–51,

शैक्षणिक संस्थाएँ मनुष्य के जीवन का दूसरा पढ़ाव होता है। जहाँ बालक पारिवारिक अनौपचारिक शिक्षा के बाद बालक औपचारिक और संस्थागत शिक्षा की ओर कदम रखता है जहाँ उसे शिक्षक और सहपाठी प्रभावित करते हैं। बच्चों

के बालपन पर शिक्षक का प्रभाव स्थाई एवं अनुकरणीय रहता है। इसी कारण से जब भी नैतिक मूल्यों की चर्चा होती है वहाँ पर शैक्षणिक संस्थाओं की उपयोगिता एवं उपादेयता पर चर्चा अनिवार्य रूप से होगी।

महाविद्यालयीन एवं विश्वविद्यालय स्तर पर नैतिक मूल्यों की पठन–पाठन की बात उच्च शिक्षा व्यवस्था के परिदृश्य में बहुत भिन्न होती है। क्योंकि उच्चतर शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश लेने वाले प्ररिपक्व छात्रों में विकसित मस्तिष्क विचारधारा जीवन मूल्य पारिवारिक परिदृश्य की भिन्नता के साथ छात्र महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेते हैं। छात्र परिवार और स्कूल के बाद उच्च शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश लेते हैं। बालकों की मानसिक विचारधारा मूल्यों के प्रति आस्था एक निश्चित आकार ले चुकी होती है।

''स्वतंत्रता के बाद राज्यसत्ता जनता के हाथ में आई। लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह आवश्यक हो गया कि देश का राजकाज लोक भी भाषा में हो, अतः राजभाषा के रूप में हिन्दी को एकमत से स्वीकार किया गया। 14 सितम्बर, 1949 ईस्वी को भारत के संविधान में हिन्दी को मान्यता प्रदान की गई। तब से राज कार्यों में इसके प्रयोग का विकासक्रम आरम्भ होता है। संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है।'' नैतिक मूल्य और भाषा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृष्ठ–113,

उच्च शिक्षा में छात्रों को यहाँ देश के अधिक जिम्मेदार नागरिक के रूप में स्वीकृत इस युवा पीढ़ी को नैतिक मूल्यों के प्रति संवेदनशील बनाने पर तथा यथार्थवादी विचारों को मजबूत बनाने पर जोर दिया जाना चाहिए जिससे बालक अपने चारों ओर रहने वाली अच्छी बुरी घटनाओं का विवेचन एवं विश्लेषण कर सकें तथा जो अनुचित है, उसका विरोध कर सकें। यहाँ उनकी सामाजिक उपयोगिता मूल्यों का विकास राष्ट्रीय सन्दर्भ में किया जाना चाहिए जिससे छात्रों की शक्ति का राष्ट्र निर्माण में उपयोग नैतिक मूल्यों के माध्यम से विस्तार कर सकें।

भाषा की शिक्षा को सभी महान दार्शनिक, साहित्यकार, चिंतक, विचारक और वैज्ञानिक राष्ट्र विकास हेतु अनिवार्य प्रक्रिया एवं संसाधन मानते हैं। सभी पक्ष शिक्षा को ज्ञान के अलग संस्कार की पूँजी भी स्वीकारते हैं। अतः आवश्यकता है कि उच्चतर शिक्षा व्यवस्था के ढ़ाँचे में नैतिक मूल्यों को इस प्रकार परिमार्जित करना होगा कि जिससे नैतिक मूल्यों की परिकल्पना उच्चतर शैक्षणिक संस्थाओं के प्रति स्थापित हो सकें। इसके लिये निम्न प्रयास किया जाना आवश्यक है

1) शिक्षा विद्यार्थी केन्द्रित बनाई जाए न कि निर्देशात्मक।
2) शिक्षक, छात्रों को उच्चतर शिक्षण संस्थाओं में शैक्षणिक कार्य में सहयोगी एवं परामर्शी की भूमि निभाएँ न कि केवल अध्यापन करें।
3) भाषा, शिक्षक और विद्यार्थी के बीच पारस्परिक, वैचारिक, नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन करें।
4) शिक्षा अरूचिकर और सैद्धांतिक ज्ञान के अलावा छात्रों को आनंददायक, रूचिकर और व्यवहारिक धरातल पर यर्थाथवादी प्रतीत हो।
5) महाविद्यालयीन शिक्षा रोजगारोन्मुखी हुनर प्रदान करने वाली बने।
6) महाविद्यालयीन शिक्षण संस्थाएँ रूचिकर और समाज के लिए उपयोगी बातों से भरी हुई हो तभी जाकर वे एक सभ्य संस्कारवान नागरिक उत्पन्न कर सकेगा।

सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने शिक्षा को राष्ट्र के विकास की एक आधारभूत इकाई मानते हैं।

अमर्त्य सेन के अनुसार – ''शिक्षा वास्तव में दक्षता विकास की एक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के विकल्पों को विस्तारित करते हुए राष्ट्र को सशक्त बनाती है।''

'यदि उच्च शिक्षा को इन उद्देश्यों की पूर्ति करना है और संस्कारवान व्यक्तियों का निर्माण करना है तो नैतिक शिक्षा को एक अलग दृष्टिकोण से पाठ्यक्रम का अंश बनाते हुए समाज और राष्ट्र के सन्दर्भ में नैतिक मूल्यों की व्यवस्था स्थापित करनी होगी। औपचारिक कक्षाध्यापन के स्थान पर अवलोकन और प्रादर्शों का उपयोग करते हुए संवेदनशीलता में वृद्धि करनी होगी। हमें एक खाका तैयार करना होगा, आवश्यक संसाधन जुटाने होंगे और एक संरचना की आवश्यकता होगी तभी जाकर उच्च शिक्षा के छात्रों को शिक्षा व्यवस्था, उसका आकार और संचालन के बारे में जानकारी हो सकेगी। तभी जाकर शिक्षा निरस, अरूचिकर और मात्र सैद्धांतिक ज्ञान के स्थान पर आनंददायक उपयोगी रूचिकर और व्यवहारिक धरातल प्रदान कर सकेगी। महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में प्रवेश ले चुके छात्रों की मानसिक विचारधारा और मूल्यों के प्रति आस्था निश्चित आकार ले चुकी होती है। अतः उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों के लिये नैतिक शिक्षा और भाषा पूर्णतः अनौपचारिक और अवलोकन आधारित होनी चाहिए। शिक्षण संस्थानों में छात्रों को नैतिक मूल्यों के प्रति संवेदनशील बनाने पर ज्यादा बल देना चाहिए। शिक्षाप्रद कहानियों का वाचन, महापुरूषों की जीवनी के अंश का नाटकीय मंचन और जीवन में घटित किसी प्रेरणादायक प्रसंग का प्रस्तुतीकरण आदि कार्य होने चाहिये। इसके साथ ही साथ नैतिक मूल्यों की शिक्षा को पाठ्यचर्चा का अनिवार्य अंग बनाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नैतिक मूल्य और भाषा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रवीन्द्रनाथ टाकुर मार्ग, बाणगंगा, भोपाल, संस्करण 2017
2. नैतिक मूल्य और भाषा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृष्ठ–1–2
3. नैतिक मूल्य और भाषा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृष्ठ–7–8
4. नैतिक मूल्य और भाषा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृष्ठ–51
5. नैतिक मूल्य और भाषा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृष्ठ–113

मो.नं. 9827305539

ईमेल–bhuriyakamal4@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 150-155

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सामाजिक असमानता और समकालीन हिन्दी कविता

–डॉ. अनिता एस कर्पूर 'अनु',
कवयित्री व लेखिका, सह प्राध्यपिका, हिन्दी विभाग, वासवी परिसर, जैन कॉलेज, बेंगलूरु।

सामाजिक असमानता आज भी दुनिया में फैली हुई है। रंगभेद, नस्लभेद, वर्णव्यवस्था, जातिगत विषमता जो सदियों पहले व्यक्ति में व्याप्त थी, वह आज भी समाज में विष की तरह व्याप्त है। सैंकडों वर्ष पहले एक विशाल जनसमुदाय इसका शिकार बना था। वेदों व पुराणों में माना गया है कि शूद्र का जन्म ब्रह्मा के पैरों से हुआ है। शूद्र द्विज की सेवा करने के लिए ही पैदा हुए है। विडम्बना यह है कि इस आधुनिक तकनीकी दुनिया में यह असमानता कम होनी चाहिए थी वरन् यह तो और भी बढ रहा है। रंगभेद अनेक वर्षों तक रहा। इन्सान को इन्सान नहीं समझते थे। अफ्रीका एवं अमेरीका के लोगों के बीच भी यही परेशानी थी। काले–गोरे के चक्कर में यह लोग एक दूसरे को मार काटते रहे। यह भेद हटाने के लिए अनेक दंगे हुए। अंत में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में रंग एवं नस्ल को लेकर इती हुई। फिर भी अछूत एवं दलित नाम से व्यक्ति परेशान होने लगा।

युवा समाज शास्त्री विवेक कुमार ने अपने विचार को बताते हुए कहते है कि, 'भूमण्डलीकरण के बदलते हुए परिवेश में दलितों ने भी अपने लिए कुछ सकारात्मक ढूँढ लिया है। इंटरनेट तथा सूचना क्रांति के माध्यम से दलितों ने प्रवासी भारतीयों को खोजा है। दक्षिण एशिया, दक्षिण अफ्रीका, वेस्टैंडीज, यूरोप, अमेरिका आदि अनेक उपमहाद्वीपों में बसे अप्रचासी भारतीय दलित जिन्हें हम 'दलित डायस्पोरा' के नाम से भी पुकार सकते हैं, आज इन्हीं माध्यमों से अपने आपको जुड़ा पाते है। उन्होंने इस अप्रवासी भारतीयों के सहारे मलेशिया, लंदन बैंकुवर तथा अमेरिका में कई अंतर्राष्ट्रीय समेलन भी आयोजित कर अप्रवासी दलित भाइयों में एकता स्थापित की है।'[१]

दलित जो जातिवाद एवं वर्णव्यवस्था के कारण आज भी पीड़ित है। वैश्वीकरण की इस दुनिया में जहाँ पर हम बदलाव की अपेक्षा रखते है, वहाँ आज भी व्यक्ति जाति के नाम पर परेशान होता दिखाई दे रहा है। साहित्यकारों ने भी दलित संघर्ष करते हुए साहित्य के माध्यम से दलितों को सहारा देकर अपनी जगह हासिल करने के लिए प्रयत्न किया है। दलित काव्य का एक एक शब्द पुकार पुकार कह रहा है कि हम भी मनुष्य ही है, हमें प्रताड़ित ना करों। सामाजिक विद्रुपताओं को राष्ट्रीय समस्या के रुप में अंकित करने के लिए दलित काव्य का सहारा लिया गया है। यह मात्र कहने के लिए रह गया है कि जाति बंधन खत्म हुआ है, छुआछुत मिट गया है, सच तो यह है कि आज भी आधुनिकता की दुहाई देते हुए मनुष्य रुढीवादी बनता जा रहा है। बल्कि वह जाति के नाम पर इन्सान को मानसिक रुप से कमजोर करने की कोशिश कर रहा है।

जातीय दंश को 'वर्णवद का पहाडा' कविता में जयप्रकाश कर्दम जी ने यों व्यक्त किया है।

''नहीं उठ पाए तुम अपनी
जातीय अहं मन्यता की संकीर्णता से
त्मने सुनायी हमें प्रेम के कहानियाँ

सिखाया भाईचारे का सबक
जगाए तुमने राष्ट्रीयता के भाव भी
हमारे भीतर
लेकिन चूक नहीं पाए तुम
पढ़ाने से वर्णावाद का सबक।''[२]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपने साहित्य में दलित जाति जो पिछड़ा वर्ग कहलाती है, उनके दर्द एवं समस्या को उजागर करते हुए जाति व्यवस्था को आदिम सभ्यता का हथियार स्वीकारा है। जाति इन्सान की तरक्की में बाधा बनती है, इसके बारे में अपनी कविता 'जाति' में विचारों प्रस्तुत करते हुए बताया है कि,

''जाति आदिम सभ्यता का
नुकीला औजार है
जो सड़क चलते अदमी को
कर देता है छलनी
एक तुम हो
जो अभी तक चिपके हो जाति से
न जाने किस.....ने
तुम्हारे गले में डाल दिया है जाति का फंदा।'[३]

समाज में स्थित आक्रोश एवं विद्रोह दलित कविताओं में परिलक्षित होता है। एक मौन जिंदगी को नया आयाम देने का प्रयास दलित कविता के माध्यम से हुआ है, ऐसा कहे तो गलत न होगा। दलित साहित्य दबी कुचली जनता की आवाज, अस्वीकार, कटुता, नकारात्मकता, एक ललकार भरी आगाज है।

जगन्नाथ पंडित जी ने अपने कथन में यों कहा है कि, दलित चेतना और दलित सवर्ण मानसिकता और दलित विरोधी गतिविधियों के प्रतिरोध का साहित है। यह दलितों और उनकी चेतना से जुड़े रचनाकारों का एक सृजनात्मक प्रयास है।'[४]

अस्पृश्यता या आरक्षण दासता का दूसरा स्वरुप है। आरक्षण के द्वारा जो भी व्यक्ति कहीं पर भी नौकरी या फिर दाखिला मिल जाय तो उसे सरकारी दामाद या फिर रिजर्व कोटेवाले का बिरुद दिया जाता है। यह दो शब्द उसके लिए नई गाली होती है। उसकी खिल्ली भी उडाई जाती है। काबिल होने के बावजूद उसको कई बार अपमानित होना पडता है। इस बारे में जयप्रकाश कर्दम जी ने अपनी कविता आरक्षण में आक्रोश व्यक्त करते हुए बताया है कि,

''तुम्हें खटकता है
सरकारी नौकरियों में मेरा आरक्षण
मेडिकल या इंजिनियरिंग कॉलेजों में मेरा एडमिशन
अग लगती है तुम्हें
मेरी उपलब्धियों से
क्या केपिटेशन फीस
यानी रिश्वत देकर एडमिशन लेना
उचित है?''[५]

कई बार काबिल होने के बावजूद दलित व्यक्ति को नौकरी नहीं मिलती है। लोग उनको कुछ बोलने का मौका ही नहीं देते। काबिल व्यक्ति हर काम से वंचित हो जाता है। वह कई बार रिजर्व सीट का उम्मीदवार कहकर दुत्कारा जाता है। पूरी घटना को चौहान जी ने अपने काव्य में यों चित्रित किया है।

''अब मेरा नंबर आया
कुर्सी पर बैठा तिलकधारी गुर्राया
नाक सिकोड़ी
फिर मुँह बिचकाया
बोला– रिजर्व सीट.....
चेकोस्लाविया की स्पेलिंग बताना
जब तक मैं स्पेलिंग बताऊँ
उससे पहले
नोट फाउंड सूटेबल केंडिडेट की पर्ची
थमाते हुए बोला–
पढ़ते लिखते नहीं है चले आते है नौकरी मांगने।'[६]

प्रस्तुत कविता में नौकरी के लिए परेशान व्यक्ति की दास्तान बयान की गई है। जहाँ पर दलित को दलित होने का अहसास दिलाया जाता है। दलित उम्मीदवार के उत्तर देने से पहले ही उसे अयोग्य उम्मीदवार की पर्ची थमा दी जाती है। सूरजपाल चौहान जी ने भी अनेक संघर्ष अपनी जिंदगी में किए है। दलित समाज शोषित एवं पीड़ित जनता ही है। भूमण्डलीकरण के दौर में दलित जाति प्रताड़ित हो रही है।

दलित रचनाकारों ने भी प्रण लिया है, इस शब्द को व्यक्ति के मूल से निकालने का साहित्य के माध्यम से लगातार कोशिश कर रहे है। दलितों के साथ इस प्रकार के रवैये से साहित्यकारों ने अपनी लेखनी की धार भी पैनी कर ली है। दूसरे शब्दों में कहें तो दलित रचनाकारों अपनी कविता के माध्यम से रंग एवं नस्ल के शोषण से आगे निकलने के लिए कमर कस ली है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने भी अपने शब्दों में विचारों को व्यक्त करते हुए यूं लिखा है –––

''लोहा लंगड
ईंट पत्थर
सभी पर है
लगे हैं जो घरों में अपके
फिर भी बना दिया आपने
हमें अछूत और अंत्यज
भंगी– डोम–चमार
मॉग– पासी और महार
छूना भी जिन्हें पाप
जाति कहीं जाय जिनकी नीच
आप बता सकते हैं
यह किस सभ्यता और संस्कृति की देन है?'[७]

दलित समाज को हाशिए में रखा गया है। जब भी दलित वर्ग की बात करते है उन्हें हाशिए में स्थित साहित्य ही समझा गया है। यह तो उनके लिए अन्याय है। वह भी तो इन्सान है। जाति, रंग एवं संकीर्ण विचारधारा से जब तक समाज में व्यक्ति की सोच बाहर नहीं आएगी तब तक दलितों को केन्द्र स्थान में लाना एक सपना मात्र बनकर रह जाएगा।

'आधुनिकता के आईने में दलित' पुस्तक के अंतर्गत रजनी कोठारी जी न कहा है कि, 'भारत में जाति के संदर्भ में रंगभेदी प्रवृत्तियाँ लोगों के व्यावाहारिक चिंतन और रोजमर्रा के सामाजिक कार्य व्यापार में देखी जा सकती हैं। मनोवैज्ञानिक रुप से द्विज जातियाँ अपने आपको श्वेतांगों की तरह ही मानती हैं। वैसे भी भारतीय मानस में शास्त्रोक्त रुप से भी कई जगह वर्णों को त्वचा के रंगों का पर्याय समझा जाता रहा है। व्यावाहारिक रुप से त्वचा के रंग मिश्रित जरुर हो गए हैं लेकिन दिमागों में गोरे रंग की श्रेष्ठता की मनोग्रंथि अभी भी कायम है।'[८]

वर्णव्यवस्था के प्रति साहित्यकारों का आक्रोश अपनी चरमसीमा को छू रहा है। संस्कृति एवं वर्णव्यवस्था के बारे में 'आग और आंदोलन' काव्य संकलन में 'झाडू और कलम' कविता के द्वारा मोहन दास नैमिशराय का आक्रोश यूं प्रस्तुत हुआ है –

''तुम ब्रह्मा के मुख से
और हम उस साले ब्रह्मा की टांगों से पैदा हुए
जिसने अपनी बेटी के साथ बलात्कार किया था
मुझे मालूम नहीं
तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण हम पतित क्षुद्र
इस भ्रम से जल्द मुक्ति म्रिउलेगी ?
कल वेद ग्रंथों का सहारा ले
तुमने मेरे हाथ में झाडू पकड़ाई थी
आज परिवर्तन के लिए
तुम्हें अपने हाथ में झाडू लेना ही होगा।'[९]

विप्रजनों के प्रति आक्रोश एवं विद्रोहात्मक उत्तेजना कंवल भारती की रचना 'तुम्हारी निष्ठा क्या होती' में भी कुछ इस प्रकार झलकतीं है । जैसे :–

''यदि वेदों में लिखा होता, ब्राह्मण
ब्रह्मा के मुख से हुए हैं पैदा
तुम्हें उपनयन का अधिकार नहीं,
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ?
यदि विधान लागू हो जाता (तुम द्विजों पर)
कि तुम्हें घन संपत्ति रखने का अधिकार नहीं
तुम जिंदा रहो हमारी जूठन पर
हमारे दिए हुए वस्त्रों पर तुम्हें अधिकार न हो पढ़ने –लिखने का
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?'[१०]

कई बार प्रश्न उठता है, इन्सान माँ के गर्भ से पैदा होता है तो क्या दलित जाति का जन्म किसने किया ? क्यों लोगों को जन्म के आधार पर जाति या वर्ग में बाँटा जाता है। चलो यह भी स्वीकार कर लिया कि कर्म के आधार पर जाति का वर्गीकरण किया गया है। कर्म भी गलत ही है। वैश्वीकरण की दुनिया में आज हर व्यक्ति काबिल इन्सान ही

है। दलित जाति का इन्सान भी अक्लमंद है। वह भी ऊँचे हौदे पर काम कर रहा है। यह कुंठित मानसिकता क्यों है? इतना समझदार होने के बावजूद भी अस्पृश्यता क्यों है? यह तो किसी धर्म या महापुरुष ने नहीं कहा कि दलित वर्ग को हाशिए में रखा जाये। ऐसे व्यक्ति का बहिष्कार तो सरासर गलत धारणा है? मनुष्य में सर्वप्रथम मनुष्यता की आवश्यकता है। जो तकनीकी की दुनिया में खो चुका है। जयप्रकश लीलवान जी ने अपनी कविता के अंतर्गत जातिप्रथा की इस कुंठित अवस्थ को इंगित करते हुए कहा है कि,

''जाति प्रथा
जिस समाज का
जिया जा रहा आदर्श
तो जहिर है कि वहाँ
वेद–पुराण जैसे कुत्तों की सलामती के
इंतजाम करने में ही
शासन
और समाज के बाघ
टूटकर ढेर हो जाते रहेंगे।[११]

लीलवान जी ने प्रस्तुत कविता की पंक्तियों में वेद–पुराण को कुत्ता और शासन को बाघ के संज्ञा दी है। शासन देश के विकास की ओर न ध्यान देकर आज इन कुत्ते के पीछे अपना वक्त बरबाद कर रहा है। दलित इन्सान को व्यवस्था ने बहुत शोषित किया है। कभी शासन व्यवस्था ने इन्हें मनुष्य के रुप में अपनाया ही नहीं है। यह लोग रेगिस्तान में पानी के लिए तरसते हुए पाये जाते है। दलितों के हर अधिकार को छीन लिया गया है। दलित व्यक्ति में समाज के प्रति आक्रोश भरा पड़ा है। पूंजीवादी समाज में छोटे बच्चे भी अपने अधिकार से वंचित पाये जाते है। बच्चे का प्रश्न हर किसी के दिल में दर्द जगा जाता है। बड़े तो व्यथित है ही लेकिन बच्चे के नादान मन में भी इस व्यवस्था के प्रति प्रश्न उत्पन्न हो रहे है। जिसे जयप्रकाश कर्दम जी ने यों बताया है–

''पिताजी! क्यों नहीं बनाते तुम भी
मेरे लिए
इनके जैसे कपड़े
क्यों नहीं भेजते मुझको भी
इनके ही जैसे स्कूल?'[१२]

सारतः दलित व्यक्ति अपने ही घर में पराया हो चला है। दक्षिण आफ्रीका में रंगभेद कभी गोरो ने किया था। सदियों से काले–गोरों का भेद तो चल ही रहा हैं, फिर भी आज दलित व्यक्ति के साथ बहुत गलत हो रहा है। दलित को अमानुषिय व्यवहार झेलना पड रहा है। आखिर कब तक? मानते है कि भारत देश में चंद लोग अपने बलबूते पर आगे बढ रहे है लेकिन आम व्यक्ति का क्या होगा? क्या एक आम दलित व्यक्ति इस जाति प्रथा के नीचे दबकर रह जाएगा? क्या उसमें कभी आत्मविश्वास के साथ आगे आने का मौका मिलेगा? सामान्य नागरिक अधिकार से वंचित होते हुए घृणा एवं अमानवीय व्यवहार की त्रासद परिस्थिति से गुजर रहा है। समकालीन हिन्दी कविता के द्वारा साहित्यकारों ने समाज व्यवस्था के खिलाफ एक विद्रोह, विरोध दर्ज करते हुए समाज में समता एवं भाईचारे की लौ जगा रखी है। यह सकारात्मक विचार एवं संघर्ष में साहित्यकारों का योगदान सराहनीय है। रंगभेद एवं नस्लभेद का यह तरीका दुनिया को खत्म कर देगा। सही अर्थों में देश का विकास तभी संभव है जब हर नस्ल, जाति का व्यक्ति को समान दृष्टिकोण से देखा जाये।

भेदभाव एवं वर्ण भेद को त्यागकर इन्सान में मनुष्यता का होना जरुरी है । अपने कुछ विचारों के द्वारा अपनी लेखनी को विराम दे रही हूं।

''आखिर क्यों नहीं समझ
इंसा को इंसा होने की
आखिर कब तक
यह रंगभेद, जातिवाद
नासमझ
चाहते हो देश का विकास
समझ दलित को भी इंसा
आखिर क्यों यह अन्याय
वह नहीं कोई हाशिए का वर्ग
उन्हें केन्द्र में लाना होगा
कोई भी इसांन नहीं रहेगा
हाशिए में.....।

संदर्भ सूची :-

1. हंस, अगस्त २००४, विवेककुमार का लेख दलित समुदाय एवं सामाजिक परिवर्तन, पृ. ६५
2. गूंगा नहीं था मैं, वर्णवाद का पहाडा, जय प्रकाश कर्दम, पृ. २३
3. अब और नहीं, जाति, पृ. २०, ओमप्रकाश वाल्मीकि
4. दलित साहित्यः अवधारणा और स्वरुप, जगन्नाथ पंडित, पृ. २१
5. गूंगा नहीं था मैं, पृ. १७, जयप्रकाश कर्दम
6. कब होगी वह भोर, साजिश, सूरज पाल चौहान, पृ. ६४
7. अब और नहीं, विरासत, ओम प्रकाश वाल्मिकी, पृ. १२
8. 'आधुनिकता के आईने मे दलित', सं. अभय कुमार दुबे, पृ. ३६५
9. 'आग और आंदोलन' काव्य संकलन, 'झाडू और कलम' कविता, मोहन दास नैमिशराय, पृ. ५८
10. भारतीय दलित साहित्य, सं. मनोज कुमार आर पटेल, कविता 'तुम्हारी निष्ठा क्या होती', पृ. ३२२
11. नए क्षितिजों की ओर, जय प्रकाश लीलवान, पृ. ३६
12. गूंगा नहीं था मैं, आज का रैदास, जयप्रकाश कर्दम, पृ. ५६

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 156-157

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुनीता जैन कृत 'बोज्यू' उपन्यास का पारिवारिक आयाम

-श्रीमती राजश्री सुब्रमणयम

पीएच.डी शोधार्थी, 5/82, 4th Street, SRP Colony, Periyar Nagar, Chennai – 600082

सुनीता जैन कृत बोज्यू उपन्यास, नायिका मुक्ता और नायक चंद्रमोहन की प्रेम कहानी है। मुक्ता कायस्थ है और चंद्रमोहन पहाड़ी ब्राह्मण है। चंद्रमोहन कानपूर से अपनी बहन के घर जो दिल्ली में रहती है वह उससे मिलने आता है। जब से मुक्ता ने चंद्रमोहन को देखा वह उसको दिल दे बैठी। उसका मन हमेशा विचलित रहता हैं न दिन का चैन, न रात को नींद। हमेशा उसके ख्यालों में खोयी सी रहती है। किसी में उसका मन नहीं लगता है।

एक दिन बोज्यू चंद्रमोहन की बहन अनायास ही चंद्रमोहन और मुक्ता को आलिंगन करते हुए देख लेती है। उसे यह पसंद नहीं आया क्योंकि उसे पता था कि उसके माता–पिता मुक्ता को अपनी घर की बहू के रूप से नहीं अपनाएंगे क्योंकि वह कायस्थ है। अंत में मुक्ता की शादी रजत से हो जाती है। सभी के भाग्य में जो लिखा होता है वहीं होता है। उपन्यास के अंत में अखबार में छपा हुआ मुक्ता पढती है कि श्री चंद्रमोहन पांडे भारत सरकार की और से छात्रवृत्ति पर भौतिक विज्ञान में उच्च रिसर्च के लिए अमेरिका जाते हुए वह सांताकूज हवाई अड्डा पर फ्लाइट के लिए इंतजार कर रहा हैं। इस तरह मुक्ता का प्यार असफल रहा। उनका मिलन नहीं होता।

सफल दाम्पत्य :-

सफल दाम्पत्य वही है जो पति–पत्नी एक दूसरे से खुश है, जो एक दूसरे के सुख–दुख को एक साथ बांटकर अपना जीवन सुखमय बनाते है। प्रमिला कपूर के अनुसार– ''सुखी दाम्पत्य जीवन पति–पत्नी द्वारा आपसी मेल–मिलाप और चतुराई से उन समस्याओं को सुलझाना। कभी कबार मतभेद होते रहने के बावजूद भी यदि वैवाहिक जीवन में महत्वपूर्ण मसलों में उनमें मतैक्य रहता है तो उनका दाम्पत्य जीवन सुखदायक बना रहेगा।''

सफल दाम्पत्य बनाये रखने के लिए प्रेम की भावना, त्याग, सामंजस्य की भावना, एक दूसरे का दुख बांटने, आदर की भावना होना बहुत ही महत्वपूर्ण है। सुनीता जैन के 'बोज्यू' उपन्यास में बोज्यू और उसके पति जोशी जी के सफल दाम्पत्य को दर्शाया गया हैं बोज्यू उपन्यास मे नायक बोज्यू चंद्रमोहन की बहन हैं। चंद्रमोहन कानपुर से आया था। जोशी जी बोज्यू के पति के रूप में एक सफल दाम्पत्य के रूप में साबित होते है। उन दोनों में कभी भी झगड़ा नहीं होता था। ''उच्च विचार जीवन में सफल पाते हैं। 'सरल स्वभाव एवं उच्च विचार' ही जीवन में सफल पाते हैं। कहावत के अनुरूप जोशी जी का स्वभाव था। बोज्यू ने कभी कहा था–बाजार का वह कभी खाते नहीं। सुबह उठकर और रात को कोई अन्य पुस्तक पढ़ते जोशी जी प्रायः दिखाई दे जाते। स्वयं में रट रहने का क्रम उनका यथावत था।''

बोज्यू उपन्यास में नरेन और लता का असफल दाम्पत्य का चित्रण किया गया हैं। दोनों में हमेशा झगड़ा होते ही रहता था। उनमें अनबन होती रहती है। एक दिन दीपू खाना नहीं खा रहा था तो जबरदस्ती लता उसके मुंह में बडे निवाले ठूंस रही थी तभी माँ कहती है कि मैं उसे जबरदस्ती करके खिला दूंगी। वह कैसे नहीं खाता है। मैं उसे कैसे छोडूंगी तभी नरेन कुछ देर बाद बोला–''दो गस्से कम खा लेगा तो कौन सूख जायेगा। नरेन का खून खौल उठता

है———————————————————— ।''

बोज्यू उपन्यास में मुक्ता चंद्रमोहन के विवाह पूर्व प्रेम संबंध का वर्णन किया है। मुक्ता कायस्थ है और चंद्रमोहन पहाडी ब्राह्मण। चंद्रमोहन अपनी बहन और जीजा जी के घर आता है। बोज्यू मुक्ता के घर किराये पर रहती है। मुक्ता और चंद्रमोहन में प्रेम उपजता हैं, दोनों एक दूसरे को बहुत चाहते है। चंद्रमोहन अपना प्यार प्रकट करने के बहाने एक पत्र उसे देता हैं लेकिन मुक्ता उस पत्र को तुकडे–तुकडे कर देती है। उस तुकडे में लिखा था– ''हर और सूनापन सा छा गया है। किसी भी विषय पर ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता। कहीं कुछ छूट गया सा लगता है। इस बार घर आने पर भी देख नहीं पाया।'' इससे मुक्ता और चंद्रमोहन का सच्चा प्रेम झलकता है।

व्यक्ति विवाह के बिना कुंठित होने की संभावना हो सकती है। बोज्यू उपन्यास में सुनीता जैन जी ने विवाह को अत्यंत आवश्यक और पवित्र संस्कार माना हैं। इस उपन्यास में मुक्त कॉलेज डिबेट में प्रथम आई थी। उस डिबेट का विषय था–जीवन साथी निर्वाचन करने का अधिकार माता–पिता को हो या कन्या को। इस विषय पर मुक्ता विपक्ष में ही बोली। सभी बातें जो भी डिबेट में कहीं थी वह बोज्यू को बता रही थी। इस पर मुक्ता कहती है–तो आप क्या मानती है कि आज समय में भी माता–पिता को हो वर–वधू का निर्वाचन करना चाहिए। अंतर्जातीय विवाह नहीं होने चाहिए।''

हर स्त्री पुरुष के जीवन में विवाह बहुत ही अनिवार्य हैं। विवाह होना है तो आयु को महत्वपूर्ण देते हैं लड़की से लड़के की उम्र अधिक होनी चाहिए यह माना जाता है कि अगर लड़के की उम्र ज्यादा हो तो उसमें समझ होती है। संयुक्त परिवार में असल में घर का जो मुख्य बुजुर्ग है उसका ही चलता हैं वे जो कहते है वहीं होता है।

बोज्यू उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्या का चित्रण हुआ है। बोज्यू मुक्ता से अनमेल विवाह के बारे में कहता है– ''अनमेल विवाह के लिए दोषी सारा समाज होता है मुक्ता। माता–पिता का दोष केवल इतना होता है कि वे मजबूर होते है इतने सशक्त नहीं होते अथवा कोई भी अभिभावक अपनी संतान को दुःखी नहीं देखना चाहता।'' इस तरह बोज्यू विस्तृत जानकारी मुक्ता को देती है।

बोज्यू उपन्यास में अंतर्जातीय विवाह का वर्णन किया गया है। मुक्ता बोज्यू से प्रश्न करती है कि आपकी परंपरा में अंतर्जातीय विवाह को अपनाते है क्या? तो तब बोज्यू कहती है– ''बहुत कम नहीं के बराबर समझो। अभी तक हमारी जान पहचान में एक ही पंत परिवार के लड़के ने ऐसा किया है। लड़की बंगाली है। किंतु उस लड़के के माता–पिता जीवित नहीं थे, अन्यथा यह संभव न होता।'' बोज्यू विस्तृत जानकारी मुक्ता को देती है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. प्रमिला कपूर कामकाजी भारतीय नारी
2. सुनीता जैन बोज्यू
3. डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल भारतीय सामाजिक संस्थाएं।

Mobile : 9962663996

Email :rajirao30k@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 158-161

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी भाषा का स्वरूप

–डॉ. मधु बाला सांखला

सह आचार्य – हिन्दी विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर।

भाषा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की अस्मिता का प्रतीक है। भाषा ही राष्ट्र संबंधी वैशिष्ट्य को स्थायित्व प्रदान करती है। भारत के संदर्भ में इस दायित्व का निर्वाह हिन्दी कर रही है। इसने देश की अस्मिता की प्रतीक से ऊपर उठकर विश्वभाषा के रूप में अपनी पहचान बनाई है। हिन्दी विश्वभाषा की क्षमताओं से सम्पन्न भाषा है। हालांकि वैश्विक फलक पर अंग्रेजी, फ्रांसीसी और स्पेनिश आदि भी विश्वभाषा के रूप में व्यवहृत होती नजर आती है, पर विश्वभाषा बनने की इनकी प्रक्रिया हिन्दी से भिन्न है। इन भाषाओं ने उन्नीसवीं शताब्दी के साम्राज्यवाद के आधार पर अपना प्रचार–प्रसार कर विश्वभाषा के रूप में अपनी पहचान बनाई। इससे पहले अठारहवीं सदी में ऑस्ट्रिया और हंगरी का वर्चस्व रेखांकित रहा। बीसवीं सदी में अमेरिका और सोवियत संघ का वर्चस्व रेखांकित किया जा सकता है। पिछली शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारत गुलाम रहा और इसने भाषायी दबाव को झेला। लेकिन इस दौरान हिन्दी की 'अस्मिता' दबावों में भी प्रखर रही। हिन्दी के प्रति श्रमजीवियों की आत्मीयता ने इसे वैश्विक पहचान दिलाने में एक आधार प्रदान किया है।

किसी भी भाषा के वैश्विक होने के प्रमुख आधार हैं – प्रयोक्ता वर्ग की संख्या और भाषा की अंतःशक्ति तथा साहित्यिक कार्य। हिन्दी प्रयोक्ताओं की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। चीनी के बाद यह सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व के करोड़ों लोग हिन्दी को स्वेच्छा से अपनाए हुए हैं। मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, गुयाना, केन्या, नाइजीरिया, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैण्ड, इन्डोनेशिया, चेकोस्लावाकिया, सिंगापुर आदि देशों में हिन्दी काफी लोकप्रिय ही नहीं, बोली भी जाती है। इसके अलावा नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, म्यांमार, बांग्लादेश, मालदीव और श्रीलंका जैसे भारत के पडोसी देशों में हिन्दी बोलने, समझने वाले भारतीयों की संख्या बहुत है। वहीं, दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैण्ड, चीन, मंगोलिया, कोरिया, जापान आदि देशों में भी हिन्दी का प्रचलन है। इनके अलावा अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड, कनाड़ा, जर्मनी आदि ऐसे देश हैं, जहाँ अनेक भारतीय आजीविका और व्यापार की दृष्टि से बस गए और हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं। अमेरिका में अंग्रेजी के अलावा हिन्दी ही दूसरी सबसे लोकप्रिय भाषा का स्थान प्राप्त किए हुए है। इन देशों के अलावा अरब और अन्य इस्लामी देशों में भी हिन्दी भाषा बोलने और समझने वाले लोगों की संख्या काफी है।

वर्तमान समय में वैश्विकरण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है, उसके केन्द्र में बाजारवाद होने के कारण सारा विश्व व्यापक बाजार में परिवर्तित हो गया है। प्रायः वैश्विकरण का अर्थ और अभिप्राय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से जोड़ लिया जाता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारतीय संस्कृतिक का एक उदात्त दर्शन है। यह सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में रहने और समझने की प्रेरणा देता है। जिसमें 'सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय' की भावना निहित होती है। जबकि वैश्विकरण भूमंडलीकरण है, जिसको अंग्रेजी में 'ग्लोबलाइजेशन' के नाम से आजकल जाना जाता है।[1]

भूमण्डलीकरण के इस बाजारवाद के दौर में हिन्दी का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है। अपने उत्पादों के विज्ञापन में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हिन्दी का बड़े पैमाने पर उपयोग कर रही है। यह बाजार की सबसे शक्तिशाली भाषा के रूप में सामने आ रही है। एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व में चार भाषाओं–अंग्रेजी, स्पेनिश, चीनी और हिन्दी का भविष्य ही वैश्विक बाजार में उज्ज्वल है। बाजार वर्ग की मांग है कि उपभोक्ता वर्ग के साथ संपर्क करने के लिए उनकी भाषा में बेहतर संप्रेषण जरूरी है। इसलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का झुकाव हिन्दी की और बढ़ा है। वे आज अपने वैश्विक उत्पादों के विज्ञापन हिन्दी में देती हैं। आज अमेरिका, कोरिया, जापान और रूस ही नहीं, अन्य देश भी हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

हिन्दी के वैश्विक होने का दूसरा आधार इसकी अंतःशक्ति और साहित्यिक कार्य हैं। भारत की सभ्यता, संस्कृति, धर्म और दर्शन के रूप में भारतीय सांस्कृतिक गरिमा ने सदैव विश्व को आकर्षित किया है। विभिन्न आक्रमणों ओर विदेशी शासन के साथ उनकी भाषाओं के शब्द हिन्दी भाषा में घुलते–मिलते चले गए और इसी प्रकार से कई अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का भी प्रसार उनकी भाषाओं में होता रहा।

''भाषा की शक्ति कठिन नहीं, आसान शब्दों के प्रयोग से निखरती है। भाषा का सौन्दर्य तब बढ़ता है, जब लेखक उन सभी शब्दों को सहानुभूति से देखता है जो जनता की जबान पर चढ़े हुए हैं। कोई भी शब्द केवल इसीलिए ग्राह्य नहीं होता कि वह संस्कृत भण्डार का है, न शब्दों का अनादर केवल इसीलिए उचित है कि वे अरबी या फारसी भंडार से आए हैं। जो भी शब्द प्रचलित भाषा में चले आ रहे हैं, जो भी शब्द सुगम, सुंदर और अर्थपूर्ण हैं, साहित्यिक भाषा भी उन्हीं शब्दों को लेकर काम करती है, यह विचार आज भी समीचीन समझा जाता है।''[2]

'वैश्वीकरण के आगमन' के बाद से सूचना क्रांति के इस आक्रमण में हिन्दी भाषा और साहित्य के सामने जहाँ चुनौतियां उत्पन्न हुई है, वहीं हिन्दी के विकास हेतु उनके सुअवसर भी उपलब्ध हो रहे हैं। इस युग में औद्योगिक उत्पाद, उपभोक्ता, बाजार और तकनीक का सर्वथा नवीन संबंध बन रहा है। इसमें देशी या राष्ट्रीय कुछ नहीं है, सब कुछ बहुराष्ट्रीय है, परन्तु इस बहुराष्ट्रीय की भाषा वही है, जो हमारी–आपकी भाषा है। भारत के परिप्रेक्ष्य में यह भाषा हिन्दी है। जाहिर है कि जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वतः ही महत्त्वपूर्ण बन जाती है। ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अन्तर्राष्ट्रीय हैसियत हिन्दी के लिए वरदान सदृश है। यह सच है कि वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढ़ती उपस्थिति हिन्दी की हैसियत का भी उन्नयन कर रही है। आज हिन्दी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रक्रिया में हैं।''[3]

आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व में हो रहे तीव्र विकास के कारण नित नई संकल्पनाएं सामने आ रही है, नए–नए शब्द गढ़े जा रहे हैं, जिनके आधार पर हिन्दी अपने लचीलेपन के कारण नवीन शब्द भंडार विकसित कर रही है। शब्दों को आत्मसात करने की लचीली प्रवृत्ति के साथ–साथ उपसर्ग–प्रत्यय और संधि समास आदि की सहायता से नित नये शब्द गढ़ने में सक्षम भाषा के रूप में हिन्दी ने अपने शब्द भंडार में अतुलनीय वृद्धि की है। साहित्य सृजन की दृष्टि से भी देखें तो हिन्दी में सुदीर्घ साहित्य लेखन परम्परा रही है। हिन्दी ने विश्व को उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाएं दी हैं। इसी के चलते हिन्दी साहित्य को विश्व के श्रेष्ठतम् साहित्य के रूप में देखा जाता है। विश्व के अनेक देशों में भारतीय मूल के हिन्दी–प्रेमी साहित्यकार भी हिन्दी में साहित्य सृजन कर हिन्दी साहित्य भंडार को समृद्ध कर रहे हैं। हिन्दी को वैश्विक पटल पर पदस्थापित करने में 'गिरमिटिया' बनकर यूरोपीय उपनिवेशों में बसे भारतीयों की भी बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वहीं अनेक लोग हिन्दी में साहित्य सृजन कर हिन्दी के विकास में अपना अतुलनीय योगदान दे रहे हैं। हिन्दी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में भारतवंशियों और अप्रवासी भारतीयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

कोई भी भाषा विदेशी धरा तक अकेले यात्रा नहीं करती। उसके साथ उस देश की सभ्यता, संस्कृति, लोक विश्वास भी तरंगित होते हैं। हिन्दी के साथ भी ऐसा ही हुआ। अपनी वैश्विक यात्रा पर हमारी सभ्यता और संस्कृति ने भी अपनी पहचान विश्व पटल पर बनाई हैं।

यह सत्य है कि हिन्दी में अंग्रेजी के स्तर की विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पुस्तकें नहीं हैं। उसमें ज्ञान–विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्च स्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित और सकारात्मक प्रयास हो रहे हैं। अभी हाल ही में महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा हिन्दी माध्यम में एम.बी.ए. का पाठ्यक्रम आरम्भ किया गया।[4]

इसी तरह 'इकोनोमिक टाइम्स' तथा 'बिजनेस स्टैंडर्ड' जैसे लोकप्रिय अखबार हिन्दी में प्रकाशित होकर उसमें निहित सम्भावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह देखने में आया है कि 'स्टार न्यूज' जैसे चौनल जो अंग्रेजी में आरम्भ हुए थे, वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णतः हिन्दी चौनल में रूपान्तरित हो गए। साथ ही 'ई.एस. पी.एन' तथा 'स्टार स्पोर्टस' जैसे खेल चौनल भी हिन्दी में कमेंट्री देने लगे हैं। हिन्दी को वैश्विक संदर्भ देने में उपग्रह–चौनलों, विज्ञापन एजेन्सियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। हिन्दी जनसंचार माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है।

आज विश्व के सबसे ज्यादा पढे जाने वाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिन्दी के हैं। इसका आशय यही है कि पढ़ा लिखा वर्ग भी हिन्दी के महत्त्व को समझ रहा है।[5] विगत कुछ वर्षों में एफ.एम. रेडियो के विकास से हिन्दी कार्यक्रमों का नया श्रोता वर्ग पैदा हो गया है, हिन्दी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ़ होकर विश्वव्यापी बन रही है। उसे आज ई–मेल, ई–कॉमर्स, ई–बुक, इन्टरनेट, एस.एम.एस. एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिन्दी के अखबार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध माईक्रोसॉफ्ट, गूगल, सन, याहू, आई.बी.एम. तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कम्पनियां अत्यन्त व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। संक्षेप में, यह स्थापित सत्य है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिन्दी बहुत ही तीव्र गति से विश्वमन के सुख–दुःख, आशा–आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिन्दी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिन्दी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन को संस्पर्श कर रहे हैं। हिन्दी के शब्दकोश तथा विश्वकोष निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।[6]

आज जब 21वीं सदी में वैश्विकरण के दबावों के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियाँ एवं भाषाएं आदान–प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुजर रही हैं तो हिन्दी इस दिशा में विश्व मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर सकती है। उसके पास पहले से ही बहु–सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव है। जिससे वह अपेक्षाकृत ज्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की स्थिति में है।[7]

हिन्दी सिनेमा ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अपनी महती भूमिका निभाई है। हिन्दी सिनेमा ने भी आज अपनी वैश्विक छवि बनाई है। उसका योगदान सर्वविदित है। इसने मनोरंजन के माध्यम से जातीय एकता, प्रांतीय एकता, ध ार्मिक–सांस्कृतिक सद्भावना, व्यावहारिक शिक्षा, जनचेतना, जीवन स्तर के उत्थान आदि क्षेत्रों में जो कार्य किया है, वह आज तक कोई नेता, आंदोलन और सरकारें भी नहीं कर सकी हैं।[8]

आज एक–एक हिन्दी फिल्म करोड़ों का व्यापार कर रही है। वहीं दूसरी ओर सिनेमा के माध्यम से हिन्दी भी समृद्ध हो रही है। आज 'बालीवुड' नाम से मशहूर हिन्दी सिनेमा देश की वैश्विक पहचान बन चुका है। यह हिन्दी सिनेमा ही है, जिसने राष्ट्रभाषा हिन्दी को न सिर्फ जीवित रखा है अपितु सुदूर देशों तक इसका प्रचार–प्रसार किया है। भाषाई

सिनेमा में हिन्दी सिनेमा ही ऐसा है जिसने सभी भाषाई बंदिशों को तोड़ा और हर दिल अजीज बनकर लोगों के मन–मस्तिष्क पर छा जाने में सफल रहा है।[9]

आज हिन्दी साहित्य की विधि–विधाओं में जितने रचनाकार सृजन कर रहे हैं, उतने बहुत सारी भाषाओं के बोलने वाले भी नहीं है। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही दो सौ से अधिक रचनाकार सक्रिय हैं, जिनकी कई पुस्तकें छप चुकी है। यदि अमेरिका से 'विश्वा', हिन्दी जगत तथा श्रेष्ठतम वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' हिन्दी की दीपशिखा को जलाए हुए हैं तो मॉरीशस से विश्व हिन्दी समाचार, सौरभ, वसंत जैसी पत्रिकाएँ हिन्दी के सार्वभौम विस्तार को प्रमाणिकता प्रदान कर रही हैं, संयुक्त अरब अमीरात से वेब पर प्रकाशित होने वाली हिन्दी पत्रिकाएं 'अभिव्यक्ति' और अनुभूति पिछले ग्यारह से भी अधिक वर्षों से लोकमानस को तृप्त कर रही हैं और दिन पर दिन इनके पाठकों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।[10]

आज हिन्दी भाषा ने सम्पूर्ण विश्व में अपनी पहचान बनाई है। विदेशी धरा पर अब हिन्दी अध्ययन ओर अध्यापन हो रहा है। यह सब इस बात का द्योतक है कि हिन्दी का आज का स्वरूप वैश्विक सन्दर्भों से जुड़ा है। आज समय की माँग है कि हम सब मिलकर हिन्दी के विकास की यात्रा में शामिल हों ताकि तमाम निष्कर्षों एवं प्रतिमानों पर कसे जाने के लिए हिन्दी को सही मायने में विश्वभाषा की गरिमा प्रदान कर सकें।[11]

हिन्दी को आज हर जगह पहचान मिली है और इससे हम सभी की पहचान तथा हमारा अस्तित्व भी जुड़ा है। इसलिए यह आवश्यक है कि हिन्दी को उचित सम्मान की दृष्टि से देखा जाए क्योंकि यह न सिर्फ भारत, अपितु विश्व में उभरती एक नई पहचान है।

संदर्भ :–

1. विशाल शर्मा – भाषा अनुसंधान की सामाजिक उपादेयता, समवेत, जनवरी 2015, पृ. 117
2. रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2013, पृ. 325
3. जे. आत्माराम – भाषा का नियोजन और हिन्दी, मधुमती, फरवरी–मार्च, 2016, पृ. 325
4. भोपाल सिंह (सम्पादक) राजाभाषा भारती (त्रैमासिक, अप्रेल, जून 2013), पृ. 29
5. जी. गोपीनाथन–विश्वभाषा हिन्दी की अस्मितारू स्वप्न और यथार्थ, महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, 2008, पृ. 45
6. महिपाल सिंह – देवेन्द्र मिश्र (सम्पादक) – विश्व बाजार में हिन्दी, ब्रह्म प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 121
7. रणधीर सिंह – वैश्विकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा का भविष्य, शोध दिशा, पृ. 83
8. अनिल राही – हिन्दी फिल्म इण्डस्ट्री – दैनिक भास्कर (नवरंग), सितम्बर 2012
9. जयसिंह – सिनेमा और हिन्दी, आजकल, अक्टूबर, 2012
10. डॉ. मणिक मृगेश – भूमण्डलीकरण, निजीकरण व हिन्दी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 17
11. अच्युतानन्द मिश्र – वैश्विकरण, मीडिया और हिन्दी, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा 2007, पृ. 62

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2021 Page No. : 162-166

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मनुस्मृति में महिलाओं की स्थिति : लिंग समानता के पहलू

–डॉ. शुभमय पाहाड़ी

अध्यापक, संस्कृत विभाग (UG & PG), प्रभात कुमार कॉलेज कोंटाई।

शोधसार :–

लिंग सामाजिक और आर्थिक स्तरीकरण का एक प्राथमिक मार्कर है। लिंग असमानता का मतलब है कि पुरुष और महिला समान नहीं हैं और यह लिंग किसी व्यक्ति के जीवित अनुभवों को प्रभावित करता है। पुरुषों और महिलाओं के बीच अंतर जीव विज्ञान, मनोविज्ञान और सांस्कृतिक मानदंडों में अंतर से उत्पन्न होता है। इसे केवल लिंग के मुद्दों पर आधारित कथित मतभेदों के कारण लोगों को विभिन्न अवसरों की अनुमति देने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हमारे समाज में महिलाओं के प्रति असमान दृष्टिकोण लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण के पहलुओं पर जबरदस्त ध्यान देने का महत्व पैदा करते हैं। पवित्र वेदों ने समाज में महिलाओं को बहुत ऊंचा दर्जा दिया है। प्रसिद्ध धर्मशास्त्री मनु ने हमारे प्राचीन समाज में व्यापक रूप से महिलाओं की स्थिति पर चर्चा की। मनु का महिलाओं के प्रति बहुत सम्मान था। यहाँ मनु कहते हैं – 'न गृहम् गृहमित्याहु गृहिणी गृह्युच्यते' –एक घर तब तक घर में तब्दील नहीं होता जब तक घर बनाने वाला घोषित नहीं करता। प्राचीन में महिलाओं पर कुछ सकारात्मक प्रतिबिंब हैं। हमारे पुराणों में पुरुष देवताओं को उनके पति या पत्नी के नाम से संबोधित किया जाता है। हो यह सीता–राम, लक्ष्मी–नारायण, राधे–श्याम, या पार्वती–परमेश्वर। पत्नी है भेजा के रूप में अर्धांगिनी या बेहतर आधा। दुनियां के सबसे प्रसिद्ध महाकाव्य महाभारत में शक्तिशाली, जटिल महिला चरित्र हैं जो प्रमुख तरीकों से कुरु–पांडव की कार्रवाई को प्रभावित करते हैं। यह महाकाव्य समाज के मूल्यों और लोकाचार में एक अंतर्दृष्टि देता है। विशेष रूप से महाभारत में महिलाएं भावना और स्तर–प्रधानता के मिश्रण को प्रदर्शित करती हैं। वे अच्छी तरह से संतुलित भावनाओं का प्रदर्शन करते हैं और परिस्थितियों से निपटने के लिए बहुत मानवीय दृष्टिकोण अपनाते हैं। इस लेख में मैं यह साबित करना चाहता हूं कि प्राचीन संस्कृत साहित्य ने महिलाओं के प्रति उच्च सम्मान प्रदान किया।

प्रमुख शब्द : लिंग, संस्कृत साहित्य, असमानता, लिंग भेदभाव, वेद, पुराण, मनुस्मृति।

मनुस्मृति में महिलाओं की स्थिति : लिंग समानता के पहलू :–

लिंग सामाजिक और आर्थिक स्तरीकरण का एक प्राथमिक मार्कर है और बहिष्करण के परिणामस्वरूप। किसी के सामाजिक–आर्थिक वर्ग के बावजूद, भौतिक भलाई में व्यवस्थित लिंग अंतर हैं, हालांकि असमानता की डिग्री देशों और समय के साथ भिन्न होती है। परिणामस्वरूप लैंगिक असमानता अधिकांश समाजों की एक विशेषता है, जिसमें पुरुष सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पदानुक्रम में बेहतर औसत पर तैनात हैं। दो दशकों से अधिक समय से, लैंगिक असमानता को कम करने के लक्ष्य ने अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और राष्ट्रीय रणनीति के बयानों में प्रमुख स्थान हासिल किया है। लिंग असमानता का मतलब है कि पुरुष और महिला समान नहीं हैं और यह लिंग किसी व्यक्ति के जीवित

अनुभवों को प्रभावित करता है। पुरुषों और महिलाओं के बीच अंतर जीव विज्ञान, मनोविज्ञान और सांस्कृतिक मानदंडों में अंतर से उत्पन्न होता है। इसे केवल लिंग के मुद्दों पर आधारित कथित मतभेदों के कारण लोगों को विभिन्न अवसरों की अनुमति देने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह लिंग भेदभाव आयन से भिन्न होता है। यह लिंग के कारण किसी व्यक्ति या समूह का पूर्वाग्रही उपचार है। हमारे समाज में महिलाओं के प्रति अयोग्य योग्यताएं लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण के पहलुओं पर जबरदस्त ध्यान देने का महत्व पैदा करती हैं। विशेष रूप से आंतरिक स्त्रीत्व की प्रवृत्ति, रूढ़िवादी संस्कृति, पर्याप्त शिक्षा की कमी और आर्थिक आत्मनिर्भरता आदि महिलाओं को पुरुषों के साथ समान रूप से अपने अधिकारों का आनंद लेने और वास्तव में समान लाल होने के लिए घटना की घटना है।

पवित्र वेद ने समाज में महिलाओं के लिए बहुत ही उच्च दर्जा दिया 'तस्मै नमन्तम् जनयः सुपत्नीः' 'यजुर्वेद, १२. ३५, उन्होंने महिलाओं को माँ कहा है, माँ वह है जो सृजन करती है। मां न केवल सन्तान का उत्पादन करती है, वह दूल्हे भी बनती है और उन्हें विकसित करती है। मां बच्चे को पोषण देकर विकास पथ पर प्रेरित करती है। मां बच्चे को इस मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए बहुत कुछ बलिदान करता है, वह खुद को भूखा रहकर उस के लिए आराम देता है, बिना किसी आराम या खुशी की परवाह किए। इसिलिए ऋग्वेद कहते हैं –

जायेदासत न मघवन तेदु योनिः तदिता तवा युक्ता हय्यो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाय सोमम् अग्निष्ट्वा दुतो धन्वात् यच्छ। ऋग्वेद,३.५३.४

घरेलू सामंजस्य का मूल आधार क्या है? इसकी मूल उत्पत्ति क्या है और हमें इस मूल में क्या डालना चाहिए? यह मंत्र कहता है कि महिलाएं वह घर की मूल हैं। घर ईंट–गारे से नहीं बनता, बल्कि पत्नी गृहस्थी बनाती है। यह भी कहा जाता है कि पत्नी की अनुपस्थिति में घर को परेशान करता है। प्रसिद्ध धर्मशास्त्री मनु ने हमारे प्राचीन समाज में व्यापक रूप से महिलाओं के स्थिति की चर्चा की। मनु का महिलाओं के प्रति बहुत सम्मान था। उन्होंने महिलाओं को पहली प्राथमिकता दी 'मनुस्मृति, ३.११४। यहाँ मनु कहते हैं– 'न गृहम् गृहमित्याहु गृहिणी गृह्मुच्यतेष्' महाभारत, १२.५.१२.१३,। एक घर को तब तक घर में तब्दील नहीं किया जाता जब तक कि घर बनाने वाला घोषित न कर दे। प्राचीन में महिलाओं पर कुछ सकारात्मक प्रतिबिम्ब हैं। उनकी ताकत और मतभेद मनाया गया। शक्ति से ही शिव पूर्ण होते हैं। हमारे पुराणों में पुरुष देवताओं को उनके पति या पत्नी के नाम से संबोधित किया जाता है। हो यह सीता–राम, लक्ष्मी–नारायण, राधे–श्याम, या पार्वती–परमेश्वर। पत्नी है भेजा के रूप में अर्धांगिनी या बेहतर आधा। पति पत्नी के बीच संबंध एक साथ धर्म चलने उर्फ की है। उन्होंने कहा कि जो लोग महिलाओं की प्रशंसा करते हैं उन्हें बहुत कल्याण मिलता है। और यह भी उद्धृत किया कि ष्यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" 'मनुस्मृति,३.५५। इसका अर्थ है कि– जिस परिवार में महिलाओं की पूजा की जाती है, वहां देवता भी प्रसन्न होते हैं और जब देवता प्रसन्न होते हैं तो महान् फल मिलता है।' घर का प्राथमिक कार्य सुरक्षा, संगठन, प्रबंधन, निरीक्षण और प्रगति है। उन्होंने महिलाओं को नुकसान पहुंचाने की सख्त सजा की पेशकश की। 'मनुस्मृति, ६.२३, दहेज प्रथा से वह नफरत करते थे। केवल स्त्री नियंत्रित करता है और उनके पहलुओं को देखता है 'मनुस्मृति, ३.५१–५२,। घरेलू आश्रमों में, हालांकि, धर्म, पैसा और वासना ये तीन श्रेणियां महिलाओं के अधीन हैं। पति आम तौर पर घर के बाहर रहकर पैसा कमाता है। इसलिए वह इन कार्यों को नहीं कर सकता। इन कार्यों को करने के लिए एक समर्पित समय के लिए वहाँ रहने की आवश्यकता है और पत्नी पति की अनुपस्थिति में इनकी देखभाल करती है। वहां सुधार के इच्छुक लोगों को महिलाओं को कई तरह से संतुष्ट करना चाहिए। यहाँ यह देखा गया है कि मनु ने परिवार में महिलाओं के प्रति उच्च सम्मान प्रदान

किया। वह महिलाओं के अधिकार को लेकर बहुत सचेत थीं।' मनुस्मृति,९.१२९–१४०, दोनों आदमी और औरत सबसे अच्छे दोस्त पूरी समझ के साथ के रूप में रहना चाहिए एक दूसरे की भावनाओं की और दोनों अर्पण की भावना होनी चाहिए और सहयोग भावना चाहिए 'अथर्व वेद२०.१२६.१०,। यहाँ हम दंपति को उनके ज्ञान में कह सकते हैं, कि परिवार की सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा एक रथ के रूप में और पुरुष और महिला को इसके दो पहियों के रूप में माना जाता है। नीतिसार पुस्तक में 13वीं शताब्दी के प्रसिद्ध तेलुगु कवि बद्देन्ना ने एक पत्नी के छह महान गुणों का वर्णन किया है–

'कार्येषु दासी करणेषु मन्त्रीरू भोजेषु माता शयनेषु रंभा।
रूपेशु लक्ष्मी क्षमयेषु धरित्री षट् धर्मयुक्ता कुलधर्मा पत्नी।।'

महाभारत दुनिया के सबसे प्रसिद्ध महाकाव्य में शक्तिशाली, जटिल महिलाओं अक्षर हैं जो की कार्रवाई प्रभावित है कुरु–पाण्डव में प्रमुख तरीके। यह महाकाव्य समाज के मूल्यों और लोकाचार में एक अंतर्दृष्टि देता है। महिलाओं पर युगानुकूल रवैया अतीत की बात नहीं है, लेकिन आज भी इसी तरह का रवैया जारी है। 'महाभारत, १२,२. ३६, द्रौपदी था शक्ति और, होगा कठोर उपचार है कि वह के अधीन था के बावजूद कारण एक ठीक से बाहर है और क्या जरूरत थी है। अम्बा इस बात का एक बड़ा उदाहरण है कि महिलाएँ किस तरह से एक संकल्प ले सकती हैं और बाधाओं के बावजूद इसे पूरा कर सकती हैं। महाभारत में महिलाओं की कामुकता को संभालने में भ्रम की स्थिति रही है। चूंकि पारंपरिक रूप से पुरुषों का खेल पर वर्चस्व रहा है, वे हमेशा मनुष्य के पक्ष में रहे हैं। अगर एक महिला एक आदमी को संसाधित करने की कोशिश कर रही है, तो यह उनके अहंकार को चोट पहुंचाती है। यह भी स्पष्ट है कि सांवली रंगत वाली महिलाओं के प्रति पारंपरिक भेदभाव। विशेष रूप से महाभारत में महिलाएं भावना और स्तर–प्रधानता के मिश्रण को प्रदर्शित करती हैं। वे अच्छी तरह से संतुलित भावनाओं का प्रदर्शन करते हैं और परिस्थितियों से निपटने के लिए बहुत मानवीय दृष्टिकोण अपनाते हैं।

लिंग भेद के कई रूप हैं। लिंगभेद, निहित पक्षपात, और यौन उत्पीड़न। यौन उत्पीड़न लिंग भेदभाव के सामान्य रूप हैं। सबसे पहले सेक्सिज्म सेक्स पर आधारित पूर्वाग्रह या भेदभाव है, खासकर महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के रूप में। इसका मतलब उनके लिंग या लिंग के आधार पर लोगों के साथ अनुचित व्यवहार भी हो सकता है। सेक्सिज्म इस विचार पर आधारित है कि महिलाएं पुरुषों से नीच हैं, और समाज में महिलाओं को प्रदर्शित करने के लिए कार्य करती हैं। पूर्वाग्रह और भेदभाव को अंतरग्रही पूर्वाग्रह के रूप में वर्णित किया जा सकता है।

लिंग पूर्वाग्रह हैं :–

1. महिलाओं और पुरुषों की प्रकृति और भूमिकाओं के बारे में रूढ़ीवादी सोच।
2. महिलाओं के काम' के रूप में माना जाता है।
3. महिलाओं और पुरुषों के जीवन की सामाजिक और आर्थिक वास्तविकताओं के ज्ञान का अभाव। यह सामान्य शब्द है जो एक यौन प्रकृति के अवांछित मौखिक या शारीरिक व्यवहार को संदर्भित करता है। इसमें कोई भी यौन प्रेरक व्यवहार शामिल है जिसे प्राप्तकर्ता आक्रामक पाता है। महिलाएँ और लड़कियाँ घर में, काम करने की जगह पर, स्कूल में और दूसरी जगहों पर बड़े पैमाने पर होने वाली यौन उत्पीड़न की शिकार हो सकती हैं। अनचाहे स्पर्श करने वाली टिप्पणियाँ, एक यौन विचारोत्तेजक प्रकृति, किसी की लिंग पहचान या लिंग अभिव्यक्ति के बारे में आपत्तिजनक टिप्पणी। लड़के भी यौन उत्पीड़न के शिकार हो सकते हैं। ऐसा लगता है कि समुदाय के नजरिए को बदल रहे हैं और कमजोर लोगों को और अधिक आत्मविश्वास और सहज महसूस बोल बाहर के दुरुपयोग और भेदभाव समाज में अधिक शक्तिशाली स्थिति

वाले की वजह से के खिलाफ।

महान धर्मशास्त्री मनु मनुस्मृति में हमारे भारतीय समाज और संस्कृति में महिलाओं की माननीय और समान चित्र दर्शाया। मनु की दृष्टि में पुरुष और स्त्री ईश्वर के दो अंग हैं। तो वे संबंधित बराबर स्थिति परिवार में अच्छी तरह से एक ही रोल निभाते हैं। उन्होंने कहा कि महिलाएं परिवार की रोशनी हैं। भारत की आदर्श महिलाओं ने अपने कुली निस्म और निष्ठा, शुद्धता, अपने पति और अपने परिवार के प्रति उदारता, आज्ञाकारिता, गैर चंचल मन व्यवहार, ईमानदारी, पवित्रता और बहुत कुछ जैसे चरित्रों के आधार पर फिर से सराहना की। भारतीय मर्दाना अहंकार ने महिलाओं को एक मवेशी से ढके हुए मवेशियों को गर्भ में डाल दिया। इसलिए उन्होंने लोककथाओं, एपिक्स, पुराणों और स्मित्रिटिस की मदद से कई आदर्शों का उपयोग और निर्माण किया। मिथक और पौराणिक कथाएं महिलाओं के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये संभवतः सती–हिंदू विधवा प्रथा है–यह वह प्रथा है जहाँ विधवा अपने पति की चिता में विसर्जित होती है। लेकिन हमारी शुरुआती स्क्रिप्ट वेद इस बारे में चुप थीं। लेकिन महिलाओं में क्रमिक वृद्धि के बारे में कई विशाल क्षेत्र हैं स्मित्रिटिस और अन्य नैतिक शास्त्र। वे संतान पैदा करते हैं और परिवार के संरक्षण में भी बहुत भाग्यशाली हैं। तो घर में महिमा और पत्नी मे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए महिला बच्चे उत्पादन, बच्चे के पालन, और अतिथि साक्षात्कार, आदि तो प्रदर्शन में मुख्य सहायक है। आचार्य मनु कहते हैं – 'स्त्रीयः श्रीयश्च गेहेषु न विशेषो अस्ति कश्चन" मनुस्मृति,९. २६। यह मुझे बाकी सब चीजों से स्पष्ट है कि उन्होंने कभी भी एक महिला को समाज की नजर में एक महिला के रूप में नजरअंदाज किए बिना नहीं देखा। उन्होंने बार–बार कहा कि महिलाओं को विभिन्न परिस्थितियों में यौन अनैतिकता से बचाया जाना चाहिए।

'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।। 'मनुस्मृति,९.३,'

अर्थात कुंवारी अवस्था में बेटी की रक्षा करना पिता का कर्तव्य है, युवा अवस्था में पति का कर्तव्य और वृद्धावस्था में जिम्मेदारी पुत्र की है। अन्य जगहों पर, विपरीत महिलाओं को देखा जाता है जो अपनी रक्षा करने में सक्षम हैं, समान रूप से सुरक्षित हैं। मनु ने महिलाओं की प्राथमिकता के बारे में एक कविता का उल्लेख किया 'मनुस्मृति,३.११४। महिलाओं की सुरक्षा को बहुत महत्व के साथ माना जाता है। उनके विचारों में महिलाएं स्वतंत्रता के लिए फिट नहीं हैं। इससे यह पूरी तरह स्पष्ट है कि उन्होंने महिलाओं की स्वायत्तता और उनकी खुद की भौतिक इकाई की रक्षा करने की क्षमता को स्वीकार नहीं किया, इसलिए उन्होंने महिलाओं को अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने की स्वतंत्रता की नारीवादी मांग को खारिज कर दिया। इसलिए परिवार के पुरुष के कुल नियंत्रण में, महिलाओं के लिए अपने स्वयं के निर्णय लेने की पूर्ण स्वतंत्रता का आनंद लेना संभव नहीं है और इस तरह से सशक्तिकरण प्राप्त करने की संभावना से इनकार किया जाता है। रोमीला थापर के अनुसार इस अवधि के दौरान महिलाओं के उत्पीड़न का मुख्य कारण जाति के संरक्षण के विचार का विकास था।

मनु ने कई छंदों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व किया और उनकी तुलना देवी के रूप में की लेकिन कुछ अन्य छंदों में उन्होंने अपनी स्थिति को बहुत ही खराब कर लिया। भारतीय हिंदू संस्कार न केवल पुरुष देवताओं की पूजा करते हैं, बल्कि देवी–देवताओं के साथ–साथ पूरे देश में समान उपकार करते हैं। लेकिन जो क्रिस्टल स्पष्ट है कि प्राचीन काल से कई मिथकों के आधार पर वार्डों में भारतीय महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण रवैया है। उनके छंदों में पुरुष वरीयता और लैंगिक असमानता इसका प्रमाण है। मनु ने बालिका के जन्म पर अधिक महत्व नहीं जताया 'मनुस्मृति,९.११,। प्राचीन काल

से भारत की महिलाएं कई मिथकों पर आधारित वार्डों में हैं और जिन्होंने विश्व के बाकी हिस्सों की तुलना में भारत में महिलाओं के कब्जे में बहुत अधिक वृद्धि दी है। भारतीय महिलाओं को मुक्ति तथापि के कारण समाज के एक छोटे खंड तक सीमित है संयुक्त राष्ट्र के नाम पर, पौराणिक कथाओं के नाम से, धार्मिक, सामाजिक रीति–रिवाजों अनोमोदित है। प्राचीन पुरातत्व अभिलेखों में कहा गया है कि भारतीय महिलाओं का समाज में पुरुषों के साथ समान स्थान था। यह समाज बहुत अधिक मातृसत्तात्मक था और उसके बाद इस समाज ने कई सामाजिक बुराइयों को देखा जो कि पुराणों और महाकाव्यों के नाम से जारी है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने भारत की प्राचीन स्थिति को प्रभावित किया। फिर पुरुष सबसे आगे आए और महिलाओं को पीछे धकेला गया।

उपरोक्त चर्चा के अंत में यह स्पष्ट है कि मनु घर में महिलाओं को उच्च सम्मान प्रदान की गई। दूसरी ओर महिलाओं को मोहक बताया जाता है और वह महिलाओं पर पुरुष वर्चस्व का समर्थन करती हैं। इस पुरुष वर्चस्व के साथ–साथ पुरुष वरीयता ने लैंगिक समानता सुनिश्चित करने के दायरे को सीमित कर दिया है। सारांश में, पुरुषों और महिलाओं की शैक्षिक पृष्ठभूमि और जनसांख्यिकी में समान रूप से वृद्धि हुई है, जो कैरियर के परिणामों को कम करते हैं। बहरहाल, महिलाओं को श्रम शक्ति भागीदारी, पूर्णकालिक स्थिति और करियर पर बच्चों के प्रभाव में व्यवस्थित अंतर दिखाना जारी है। ये अंतर कैरियर के परिणामों को महत्वपूर्ण रूप देते है।

मोबाइल – 8967315585
ईमेल – subhamoy.pahari13@gmail.com